मरु बागवाणी

राजभाषा पत्रिका-2020-21

15वां अंक

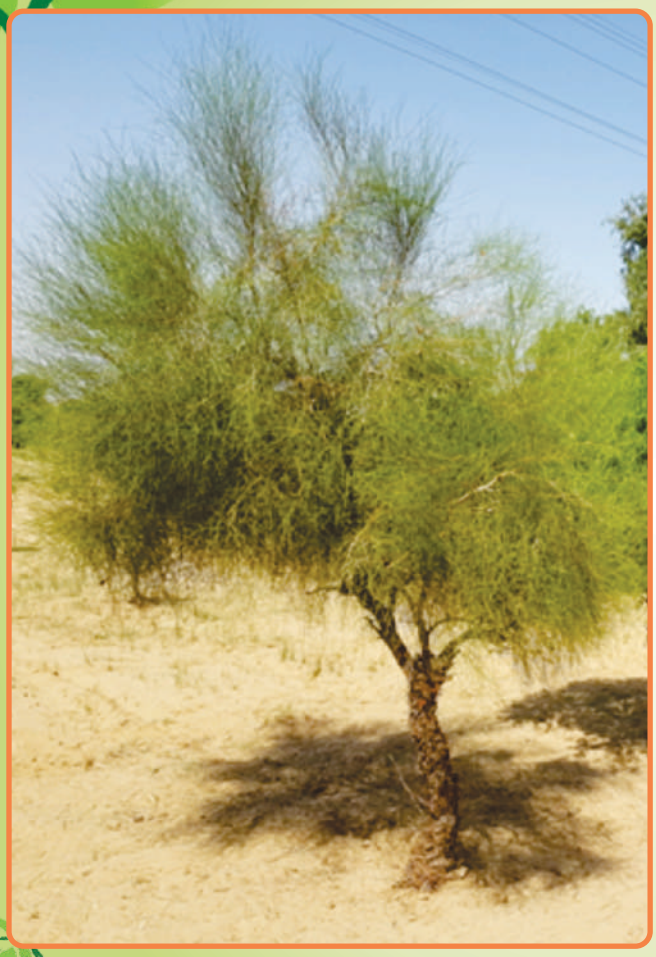

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

बीछवाल, बीकानेर-334 006, (राजस्थान)

15 वां अंक

आईएसओ 9001:2008 प्रमाणित संस्थान

मरु बागवानी

राजभाषा पत्रिका

(2020-21)

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

बीछवाल, बीकानेर-334 006, (राजस्थान)

पंचदशम् अंक

वर्ष 2020-21

प्रकाशक

डॉ. बी. डी. शर्मा

निदेशक

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

बीकानेर-334006 (राज.)

दूरभाष - 0151-2250147, 2250960, फैक्स - 0151-2250145

ईमेल - ciah@nic.in वेब साइट - www.ciah.icar.gov.in

प्रधान सम्पादक

डॉ. बी. डी. शर्मा

कार्यकारी सम्पादक

प्रेम प्रकाश पारीक

सह-सम्पादक

श्री रूप चंद बलाई

डॉ. अनिता मीणा

डॉ. अजय कुमार वर्मा

शब्द संधारण/परिकल्पना और छायांकन

भोजराज खत्री

संजय पाटिल

मुद्रक

आर.जी. एसोसिएट्स

बीकानेर (राज.)

मो. 9414603856

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में विचार लेखकों के अपने हैं। इन विचारों के लिए प्रकाशक अथवा सम्पादक मण्डल किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं हैं।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	शीर्षक	लेखक	
1	संस्थान की प्रमुख राजभाषा गतिविधियां	डॉ. बी. डी. शर्मा एवं श्री पी. पी. पारीक	7
2	गर्मी में अपनी सेहत का ध्यान रखें: कुछ सुझाव	सुश्री श्रद्धा सरोज	11
3	भारतीय संस्कृति में पेड़-पौधों एवं पर्यावरण का महत्व	डॉ. कमलेश कुमार	15
4	थार रेगिस्तान में खजूर की वैज्ञानिक खेती	डॉ. रामकेश मीना, डॉ. आर. एस. सिंह, डॉ. पवन सिंह गुर्जर एवं डॉ. पवन पारीक	19
5	बेर एवं सेब फल की तुलनात्मक विशेषतायें	डॉ. पी. एल. सरोज एवं डॉ. कमलेश कुमार	25
6	मरुधरा के कल्पवृक्ष खेजड़ी की उपयोगिता	डॉ. पवन सिंह गुर्जर एवं डॉ. कमलेश कुमार	28
7	बदलते जलवायु परिदृश्य में सतत फल उत्पादन: वर्तमान समय की आश्यकता	डॉ. पवन कुमार, डॉ. महेंद्र कुमार चौधरी एवं डॉ. धुरेंद्र सिंह	31
8	गर्म-शुष्क जलवायु में अनार की उपयुक्त किस्म का मूल्यांकन	डॉ. आर. के. मीणा, डॉ. दीपक कुमार सरोलिया एवं डॉ. पवन पारीक	35
9	पंचकूटा -मरुधरा की बहुगुणी एवं औषधीय सब्जी का उत्पादन	डॉ. दिलीप कुमार समादिया एवं पी.पी. पारीक	38
10	ग्वारपाठा से स्वास्थ्य सौंदर्य एवं स्वादिष्ट व्यंजन	डॉ. पी एल सरोज एवं डॉ. धुरेन्द्र सिंह	42
11	केर : मरुस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र की एक बहुउद्देशीय झाड़ी	डॉ. कमलेश कुमार एवं डॉ. डी.के. समादिया	45
12	फोग: थार मरुस्थल की एक बहुपयोगी दुर्लभ वनस्पति	डॉ. मुकेश कुमार बेरवाल, डॉ. जगन सिंह गोरा, डॉ. चेतराम एवं डॉ. रमेश कुमार	47
13	शुष्क क्षेत्र में सब्जी हेतु ग्वारफली की उत्पादन तकनीक	डॉ. ए.के. वर्मा, डॉ. डी.के. समादिया, डॉ. पी.एस. गुर्जर, डॉ. हनुमान राम एवं डॉ. गंगाधरा के.	50
14	शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में प्याज की खेती	डॉ. आर. सी. साँवल, डॉ. शीश राम यादव और श्री सी. एल. मीना	53
15	सब्जी उत्पादन में प्लास्टिक का उपयोग	डॉ. पंकज कुमार कसवाँ, सोहनी देवी बाज्याँ, भुवनेश डीड़ल, रामधन जाट एवं एल. के. जाट	58
16	केंचुआ खाद का उत्पादन एवं उपयोग	डॉ. ए.के. राय, डॉ. शक्तिखजुरिया, डॉ. कनक लता, डॉ. राज कुमार एवं डॉ. बी.एस. खद्दा	61
17	नीम के उत्पादों से प्राकृतिक कीटनाशक बनाना	सुश्री प्रियंका कुमारी जाट, मुरारी लाल चोपड़ा एवं मनोज कुमार मीना	64

क्रमांक	शीर्षक	लेखक	
18	नींबू वर्गीय फलों में लगने वाले प्रमुख कीट तथा उनका नियंत्रण	डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव एवं डॉ. सुशील कुमार	66
19	नींबू वर्गीय पौधों की प्रमुख बीमारियों का प्रबंधन	डॉ. सुशील कुमार माहेश्वरी, डॉ. रमेश कुमार, डॉ. जगन सिंह गोरा एवं डॉ. पी. एल. सरोज	69
20	बैंगन फसल के कीटों का एकीकृत प्रबंधन	योगेन्द्र कुमार मिश्रा, अमित कुमार शर्मा, डॉ. ए. के. वर्मा एवं पलक दुबे	73
21	ड्रैगन फ्रूट: शुष्क क्षेत्र हेतु एक विदेशी फल	डॉ. अकिंत सिंह, डॉ. शिवराज कुमार वर्मा एवं डॉ. कमलेश कुमार	75
22	राजस्थान में जैतून की खेती व इसका महत्व	श्री अनिल कुमार, सुश्री कोमल शेखावत एवं सुश्री स्वर्णलता कुमावत	78
23	कलौंजी की खेती और उसका औषधीय महत्व	डॉ. रोहताश सिंह भदौरिया, डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप तिवारी, डॉ. सर्वेश त्रिपाठी एवं डॉ. ए.के. वर्मा	81
24	पोषण वाटिका : मरु भूमि में आजीविका का एक बेहतर विकल्प	डॉ. रेखा रानी, डॉ. एस.आर. मीना, श्री आर.सी. बलाई एवं डॉ. अनीता मीणा	85
25	ग्रामीण महिलाओं का बागवानी के माध्यम से सशक्तिकरण	डॉ. अनीता मीणा, सुश्री नीरूपमा सिंह, सुश्री माधुरी मीना एवं सुश्री नीतू मीना	89
26	विटामिन 'सी' का महत्व एवं शुष्क क्षेत्रीय फलों में इसकी उपलब्धता	श्री नरेन्द्र सिंह, श्री के.पी. सुहाना एवं भानुश्री एन.	92
27	मेथी के पोषक मूल्य एवं औषधीय गुण	डॉ. प्रज्ञा सिंह, डॉ. अंकिता शर्मा, डॉ. वेंकटेश्वर जल्लारफएवं डॉ. ए.के. वर्मा	95
28	शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में बेल की आधुनिक खेती	डॉ. राजेश जाटव, डॉ. पी.के.एस. गुर्जर, डॉ. राजेश लेखी एवं डॉ. प्रज्ञा सिंह	98
29	ई-नाम पोर्टल : राष्ट्रीय कृषि बाजार योजना	श्री मांगी लाल जाट एवं श्री अमित स्वामी	103

डॉ. बी. डी. शर्मा

निदेशक
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीछवाल, बीकानेर (राजस्थान)
bZ esy% **ciah@nic.in,** njHkk"k **: 0151 2250147** QSD l **: 0151-2250145**

प्राक्कथन

भारत जैसे वृहद् और अनेकानेक संस्कृतियों वाले देश में किसी एक भाषा का राजभाषा के रूप में प्रस्थापित होना बहुत ही सुखद स्थिति है। हिन्दी भाषा को यह गौरव प्राप्त है। यद्धपि हिंदी किसी राज्य की मातृभाषा न होकर यह वृहद् रूप में पूरे देश की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। यही कारण है कि संविधान निर्माताओं ने इसके महत्व और उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए इसे पूरे देश की राजभाषा बनाया। सरकारी क्षेत्र में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न नियमों और अधिनियमों के उपधानों के आधार कार्य किया जाता है। हिन्दी में साहित्य प्रकाशन का कार्य भी इसकी प्रगति का सूचक होता है। यह भाषा सरल एवं सुग्राह है। हिन्दी में अब विश्व स्तर के साहित्य की रचनाएं भी बहुत की जाने लगी है। इसी कड़ी में इस संस्थान के द्वारा वैज्ञानिक उपलब्धियों को सबके लिए और विशेषकर किसानों के लिए सुलभ करने हेतु सरल व सहज हिन्दी भाषा में लेख लिखे जाकर उन्हें 'मरु बागवाणी' नाम से प्रकाशित की जाने वाली राजभाषा पत्रिका में प्रकाशित किया जाता है।

संस्थान में राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' का प्रकाशन पिछले एक दशक से भी अधिक समय से निरंतर किया जा रहा है। पत्रिका का पंद्रहवां अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में पिछले अंकों के अनुभवों और पाठकों के समालोचनात्मक सुझावों को समाहित किया गया है ताकि लेखों की गुणवत्ता को उत्कृष्टता के शिखर की ओर ले जाया जा सके।

किसान भाईयों और प्रबुद्ध नागरिकों को प्रस्तुत इस अंक में एक ओर जहां शुष्क बागवानी के विकास के विविध आयामों को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तो, दूसरी ओर साहित्यक रचनाएं संकलित की गयी हैं। भारतीय संस्कृति में पेड़–पौधों के महत्व को सर्वोपरि रखा जाता था और एक लेख के माध्यम से इस अंक में भी इसे अहम स्थान दिया गया है। थार के रेगिस्थान में खजूर के उत्पादन से लेकर नयी प्रवेशित फल–फसलों को भी इस अंक का आभूषण बनाया गया है। बेर फलों की सेब फलों से तुलना और शुष्क क्षेत्रों से उत्पादित सामग्री से पांच सितारा होटलों में बनने वाली 'पंचकुटा' सब्जी को भी इस अंक में महत्व दिया गया है।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि संस्थान की राजभाषा पत्रिका में प्रकाशित लेखों का स्तर दिनों–दिन अधिक रूचिकर और ज्ञानवर्धक होता जा रहा है। हिन्दी भाषा में पूर्ण वैज्ञानिक व सुदृढ़ शब्द भण्डार होने से इसमें वैज्ञानिक साहित्य का सृजन सरलता से किया जाने लगा है। समग्ररूप में यह अंक वृहद् भावों को समेटे हुए हमारे दिन–प्रति दिन के सभी कलेवरों को एक साथ प्रस्तुत करने एक प्रयास मात्र है। आशा है कि इसके पूर्ववर्ती अंकों की भांति ही रूचिकर लगेगा। इस अंक को यह स्वरूप प्रदान करने में लगे सभी कार्मिकों का मैं हृदय से आभार व्यक्त करते हुए उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

(ch-Mh- 'kek)

सम्पादकीय

मानव जीवन में भाषा का अत्यंत महत्व है। वैचारिक आदान-प्रदान, व्यापार व्यवहार का आधार भाषा ही है। भाषा सम्प्रेषण का सरल माध्यम है, भाषा के बिना न तो एक दूसरे को समझा जा सकता है और न पारस्परिक संबंधों को प्रगाढ बनाया जा सकता है। भाषा ही मनुष्यों को एक-दूसरे से जोडे रखती है। भाषा एक प्रवाहमान सरिता है जिसमें हमारा जीवन बहता है। भाषा से ही समाज बनता है और भाषा के द्वारा ही उसे एक सूत्र में बांधकर रखा जा सकता है। राजभाषा हिन्दी का भारत सरकार के कार्यालयों में प्रयोग करने हेतु भारत सरकार ने विभिन्न अधिनियमों-नियमों का सृजन कर इसे प्रभावशाली ढंग से लागू किया है। अब यह प्रत्येक कार्यालय की जिम्मेदारी है कि वह राजभाषा को उस प्रभावशाली ढंग से लागू करे जिसकी यह अधिकारिणी है। प्रत्येक कार्यालय विभिन्न प्रकार से हिंदी का प्रगामि प्रयोग बढाने का प्रयास करता आ रहा है।

इस संस्थान के द्वारा हिंदी का प्रयोग बढाने के लिए किए गये कार्यों में एक कार्य इस राजभाषा पत्रिका 'मरु बागवाणी' का प्रकाशन भी है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य राजभाषा हिंदी की प्रगति के साथ शुष्क बागवानी के नित नए अनुसंधान कार्यों को किसानों एवं जन साधारण तक पहुँचाना भी है क्योंकि हिंदी एक बहुत बडे वर्ग की भाषा भी है।

प्रस्तुत अंक में हमने इस संस्थान में इस वर्ष की गयी हिन्दी भाषा के प्रगामि प्रगति की रिपोर्ट को दर्शाया है। इसके साथ ही, फलों एवं सब्जियों के फटने एवं उनमें लगने वाले कीट-रोगों के संबंधित लेखों को इसमें शामिल किया है। पोषण से संबंधित विषयों पर आजकल अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इस अंक में पोषण-वाटिका के गठन और उस से उत्पादन पर आधारित लेख को भी स्थान दिया है। इसके अतिरिक्त बागवानी के विकास में महिलाओं की भागीदारी के साथ-साथ अवप्रयोगी फलों की खेती पर भी इस अंक में प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

आशा है इस अंक को भी आपका उतना ही प्यार और भरोसा प्राप्त होगा जितना इससे पूर्व को अंकों को प्राप्त हुआ है। आपकी सक्रिय प्रतिक्रियाओं की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

सम्पादक मण्डल

संस्थान की प्रमुख राजभाषा गतिविधियां

ch- Mh- 'kekZ ,oa izse izdk'k ikjhd

jktHkk"kk dk;kZUo;u lfefr dh cSBd ,oa =Sekfld fgUnh dk;Z'kkyk

राजभाषा कार्यन्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन कोविड–19 महामारी के लॉकडाऊन एवं अन्य बंधनों के कारण समय पर एवं तिमाही आधार पर नहीं हुआ। य़द्धपि संस्थान ने वर्ष 2020 के दौरान चार बैठक आयोजन की प्रतिबद्धता को पुरा किया है। इस क्रम में प्रथम एवं द्वितीय बैठक एक साथ 15 जुलाई को ऑनलाईन माध्यम से आयोजित की गयी, जिनमें जनवरी–मार्च 2020 और अप्रैल–जून 2020 के बिंदुओं पर चर्चा की गयी। जुलाई–सितम्बर की बैठक का आयोजन भी ऑनलाईन माध्यम से दिनांक 24 जुलाई, 2020 को किया गया था। अक्टूबर–दिसम्बर, 2020 तिमाही की बैठक का आयोजन 8 दिसम्बर, 2020 को किया गया था। इन सभी बैठकों में संस्थान की राजभाषा गतिविधियों की समीक्षा की गयी एवं हिन्दी की प्रगति को संस्थान के दैनिक कार्यों में सुनिश्चित किया गया। इन बैठकों का कार्यवत्त तैयार कर उसी अनुसार कार्रवाई की गयी।

संस्थान में कार्यरत अधिकारियों/कर्मचारियों को हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा के लिए दिनांक 19 सितम्बर, 2020 को हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया था।

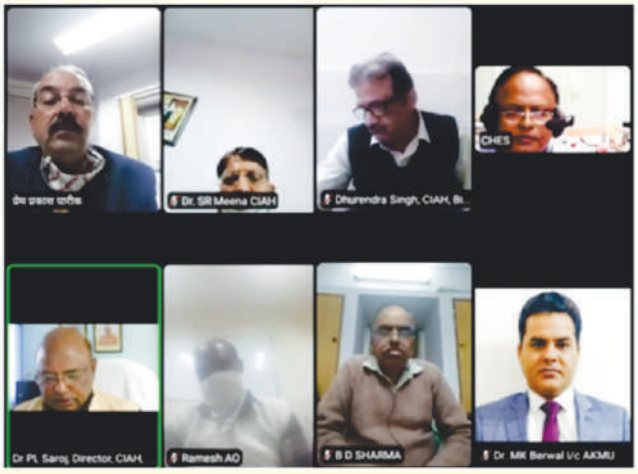

संराकास की ऑनलाईन बैठक की झलक

fgUnh lIrkg dk vk;kstu

भाकृअनुप.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में हिंदी सप्ताह के दौरान दिनांक 14 सितम्बर 2020 को हिंदी दिवस का आयोजन किया गया। इसमें हिंदी सप्ताह के उद्घाटन के साथ सप्ताहभर चलने वाले कार्यक्रमों की रूपरेखा को भी प्रस्तुत किया गया।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर की पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. कैलाश कौशल थी। श्रीमती कौशल ने ऑनलाईन माध्यम से बोलते हुए हिंदी की उत्पति से लेकर उसके वर्तमान प्रसार का विहंगम् दृश्य प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि आधुनिक हिंदी के जनक और प्रेरणास्त्रोत भारतेन्दु हरिशचंद्र थे। भाषा के साथ संस्कृति के जुड़ाव को बताते हुए उन्होंने कहा कि भाषा है तो संस्कृति है और संस्कृति है तो देश का अस्तित्व है। भारत में 50 प्रतिशत के लगभग जनसंख्या हिंदी बोलती है। यह वर्तमान में विश्व में सर्वाधिक बोले जाने वाली भाषा है। महात्मा गांधी ने देश आजाद होने के बाद अंग्रेजी में बोलना छोड़ दिया था। हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार के लिए केवल सरकार के प्रयासों के उपर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

संस्थान के निदेशक प्रो (डॉ.) पी.एल. सरोज ने इस अवसर पर अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में संस्थान में हिंदी की प्रगामि प्रगति पर बोलते हुए कहा कि संस्थान ने पिछले कुछ वर्षों में हिंदी के कार्यालयीन कार्य में उल्लेखनीय प्रगति की है। उन्होंने संस्थान की राजभाषा पत्रिका को इस वर्ष भाकृअनुप, नई दिल्ली द्वारा प्रथम स्थान का पुरस्कार दिए जाने की चर्चा करते हुए कहा कि इस बार की तरह दो वर्ष पूर्व हमें हिंदी कार्य के लिए भाकृअनुप का ही प्रतिष्ठित पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। संस्थान के कार्मिकों से उन्होंने इस प्रगति को निरंतर बढ़ाते रहने की अपील की।

इस अवसर पर केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री नरेन्द्र सिंह तोमर एवं राज्यमंत्री श्री कैलाश चौधरी के संदेशों का वाचन किया गया। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के महानिदेशक डॉ. त्रिलोचन महापात्र का संदेश भी इस अवसर पर प्रसारित किया गया। इसी के साथ हिंदी सप्ताह का प्रारंभ हुआ जिसमें सप्तााहभर संस्थान में हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए विभिन्नि प्रतियोगिताएं आयोजित की गयी।

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

एक सप्ताह तक चले इस आयोजन में विभिन्न प्रतियोगिताएं रखी गयी थी, जिनमें संस्थांन के वैज्ञानिकों सहित सभी कार्मिकों ने भाग लिया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में ऑनलाईन बोलते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के कृषि ज्ञान प्रबंधन निदेशालय के हिंदी संपादकीय एकक के प्रभारी श्री अशोक सिंह ने हिंदी भाषा के महत्व को समझाते हुए "हिंदी में लोकप्रिय कृषि लेखन" विषय पर अपना संबोधन दिया। उन्होंने कहा कि लेख लिखने से पूर्व उसके विषय पर मनन करना चाहिए। विषय स्पष्ट और रोचक हो। लेख में शोध से प्राप्त नव तकनीकियों की जानकारी सरल और सुपाठ्य भाषा में होनी चाहिए। आलेख के वाक्य छोटे–छोटे हों तथा उनके शब्दों में विविधता होनी चाहिए। शब्दों् के बार–बार प्रयोग से बचना चाहिए। लेख में ताजा जानकारी दी जाए और आंकड़े नए होने चाहिए। श्री सिहं ने कहा कि किसानों को आम प्रचलन की भाषा में ही साहित्य दिया जाना चाहिए।

संस्थान के निदेशक प्रो (डॉ.) पी. एल. सरोज ने इस अवसर पर अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि भाषा संस्कृति की संवाहक होती है। भाषा से किसी देश की संस्कृति की झलक प्राप्त होती है। अतः भाषा का स्थान बहुत ही महत्व का होता है। प्रत्येक देश को अपनी राजभाषा अथवा राष्ट्र भाषा पर गर्व होना चाहिए। उन्होंने हिंदी में कार्य को बढ़ावा देने की अपील करते हुए सभी कार्मिकों से आग्रह किया कि हिंदी में कार्य करना हमारा संवैधानिक दायित्व है। हिंदी में कार्य करने से मन की झिझक दूर होगी। संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष प्रकाशित की जाने वाली राजभाषा पत्रिका में अधिक से अधिक लेख देने का आग्रह भी निदेशक महोदय ने किया।

fgnh i[kokMk d nkjku vk;kftr ifr;kfxrk,a ,o mue ijLdr ifrHkkxh

fgnh okn&fookn çfr;kfxrk

	वैज्ञानिक समूह
प्रथम	डॉ. दीपक कुमार सरोलिया
द्वितीय	डॉ. अजय कुमार वर्मा एवं डॉ. हनुमान राम (संयुक्त रूप से)
तृतीय	डॉ. मुकेश कुमार बेरवाल और डॉ. अनीता मीणा (संयुक्त रूप से)

fgnh 'kCn y[ku çfr;kfxrk

	वैज्ञानिक समूह	तकनीकी समूह	प्रशासनिक समूह	एसएसएस एवं वाईपी समूह
प्रथम	डॉ. कमलेश कुमार एवं डॉ. सुशील कुमार माहेश्वरी	श्री भोजराज खत्री	श्री स्वरूप चंद राठौड़	श्री लोकेश कुमार
द्वितीय	डॉ. अजय कुमार वर्मा	श्री पृथ्वीराज सिंह	श्री कुलदीप पान्डे	श्री पवन कुमार पारीक
तृतीय	डॉ. पवन कुमार गुर्जर	श्री छुट्टन लाल मीणा	श्रीमती पूजा जोशी	श्री मुकेश कुमार नागर

fgnh fVli.k y[ku çfr;kfxrk ¼i'kklfud oxZ d fy,½

प्रथम	श्रीमती पूजा जोशी
द्वितीय	श्री राजैश दैया
तृतीय	श्री राकेश कुमार स्वामी

fgnh lIrkkg d nkjku vk;kftr fofHkUu ifr;kfxrkvk e Hkkx yr ifrHkkxh

हिंदी सप्ताह एवं हिन्दी कार्यशाला का आयोजन

lLFkku }kjk idkf'kr fgnh d idk'ku

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर ने इस वर्ष के दौरान वार्षिक प्रतिवेदन तथा द्विभाषी छःमाही समाचार पत्र प्रकाशित किए।

वर्ष के दौरान प्राप्त पुरस्कार/सम्मान का संक्षिप्त परिचय

संस्थान की राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' को दिनांक 16 जुलाई 2020 को वर्ष 2018–19 का गणेश शंकर विद्यार्थी हिंदी पत्रिका पुरस्कार प्रदान किया। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के स्थापना दिवस के अवसर पर आयोजित समारोह में माननीय कृषि एवं किसान कल्याण

मंत्री, भारत सरकार, नई दिल्ली के द्वारा ऑनलाईन माध्यम से यह पुरस्कार दिया गया।

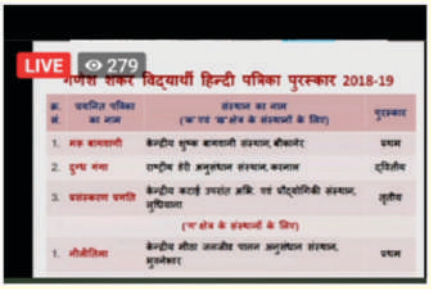

{k=h; dUæ] otyiqj ¼xk/kjk½ e jktHkk"kk dk;kUo;u grq vk;kftr xfrfof/k;k

jktHkk"kk dk;Uo;u lfefr

राजभाषा कार्यन्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन क्रमशः दिनांक 27.06.2020, 15.09.2020, 17.12. 2020 को आयोजित किया गया। जिसमें केन्द्र की राजभाषा की प्रगति की समीक्षा की गई एवं कार्यान्वयन में आ रही कठिनाईयों को दूर करने के लिए विचार विमर्श करके हिन्दी की प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाये गये।

fgUnh dk;'kkyk

केन्द्र में कार्यरत अधिकारियों को हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा के लिए राजभाषा विभाग के निर्देशानुसार

दिनांक 15.09.2020 को "संर्पक भाषा के रुप में हिंदी की भूमिका" कार्यक्रम की शुरूआत में श्री मकवाणा ने बताया सदभावना, प्रेंरणा, पोत्साहन तीन सूत्र पर राजभाषा चलती है। देश की एकता और अखंडता में राजभाषा हिन्दी का योगदान प्रमुख रहा है। देश की एकता के लिए अंतर की एकता परमावश्यक है और वह राजनीति से नही, भारत की रत्नगर्भा भाषाओं के उपयोग द्वारा स्थापित हो सकती है।

कार्यशाला दौरान प्रश्नोंतरी का भी आयोजन किया गया था जिसमें निम्नलिखित प्रश्नों की चर्चा की गईः–

(1) देश की राष्ट्रभाषा से संबंधित सूचना व अभिलेख कहां से प्राप्त हो सकते है।

उतरः देश की राष्ट्रभाषा से संबंधित सूचना व अभिलेख मानव संसाधन विकास एवं संस्कृति मंत्रालय से प्राप्त हो सकते है।

(2) भाषाओं के बारे में अनुदान दिलवाने का मामला किस मंत्रालय से संबंधित है।

उतरः भाषाओं के बारे में अनुदान दिलवाने का मामला मानव संसाधन विकास मंत्रालय के भाषा विभाग से संबंधित है।

(3) हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार–प्रसार के संबंध में किए जा रहे कार्यो की जानकारी कहाँ से प्राप्त की जा सकती है।

उतरः हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार–प्रसार के संबंध में किए जा रहे कार्यो की जानकारी मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से प्राप्त की जा सकती है।

fgUnh lIrkg dk vk;kstu

केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र, वेजलपुर (गोधरा) में दिनांक 14.09.20 से 19.09.20 तक हिन्दी सप्ताह मनाने का आयोजन किया गया था। हिन्दी सप्ताह दौरान यह निर्णय लिया गया की सभी कर्मचारी एवं अधिकरियों अपना अधिकांश कार्य हिंदी में ही करने का प्रयास करें।

fgUnh fno l

प्रत्येक वर्ष की तरह 14 सितम्बर 2020 को हिंदी दिवस मनाया गया। इस अवसर पर डा. ए. के. सिंह, प्रधान वैज्ञानिक ने कहा कि हिंदी में कार्य करना हमारा संविधानिक दायित्व है।

fd lku çf'k{k.k

केन्द्र द्वारा समय–समय पर आयोजित किए जाने वाले किसान प्रशिक्षणों में केवल हिन्दी भाषा का ही प्रयोग किया जाता है। इस व र्ा आत्मा के सहयोग से आणंद, खेडा, महीसागर, पंचमहल, दाहोद जिलों के महिला और पुरूष किसानों को 'ग्रामिण विकास के लिए अर्ध–शुष्क बागवानी' विषय पर प्रशिक्षण दिया गया था।

हिन्दी खेतों–खलिहानों में पली है, सारे देश के तीर्थ स्थान में खेली है, राज सिंहासन की अपेक्षा जनता के सिंहासन पर बैठी है। प्रेम, राष्ट्र–सेवा व कुर्बानी के उसने गीत गाए है। हिन्दी को हिन्दुस्तान की प्रतिध्वनि बनाना पड़ेगा।

–महादेवी वर्मा

गर्मी में अपनी सेहत का ध्यान रखें: कुछ सुझाव

J)k ljkt] 'kk/k Nk=k

गर्मी का मौसम दस्तक दे रहा है, दिन का तापमान धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है। आगे गर्म हवाओं का झोंका लू के रूप में चलने लगेगा। साधारणतया बसन्त ऋतु के बाद गर्मी के मौसम का शुभारम्भ होता है। बसन्त ऋतु से पूर्व ठंडक का मौसम रहता है, ठंडक की समाप्ति एव गर्मी के शुरूआत से पूर्व बसन्त ऋतु होती है जो अति सुवाहना मौसम माना जाता है जिसमें शाम सुबह हल्की ठंडक तथा दिन में सामान्य मौसम रहता है। इसी मौसम में पतझड़ के साथ पेड़ पौधों में नई कोपले निकलना शुरू हो जाती है। किन्तु इस मौसम के बाद ही प्रचण्ड गर्मी का मौसम शुरू हो जाता है। वैसे तो अपनी सेहत का ख्याल हमेशा ही रखना चाहिए क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा वास करती है। यदि आप स्वयं शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं रहेंगे तो आप विभिन्न प्रकार की बीमारियों से घिर जायेंगे और आपकी कार्यक्षमता भी घटती जायेगी। मनु य कई बार ऊपर से शारीरिक तौर पर देखने में स्वस्थ नजर आता है किन्तु आन्तरिक रूप से वह स्वस्थ नहीं रहता है। यही कारण है कि उसका मन कार्य करने में नहीं लगता है। चाहे वह घर का कार्य हो या आफिस का। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि धीरे–धीरे चिड़चिड़ा स्वभाव हो जाता है और घर के सदस्यों से भी उसका व्यवहार असामान्य होने लगता है। इस प्रकार के लक्षण प्रौढ़ एवं उम्र दराज लोगों में ज्यादा पाया जाता है। जबकि युवाओं की प्रधिरोधक क्षमता ज्यादा होने से यह समस्या कम होती है। वैसे भी आजकल की दौड़ भाग भरी जिंदगी में लोग अपने स्वास्थ्य का ध्यान कम रख पाते हैं। क्या आपने कभी इस बात पर विचार किया कि भारत में खाद्यान्न, तेल, दाल, दूध, फल, सब्जी, अण्डा, मांस, मछली आदि का उत्पादन निरंतर बढ़ रहा है तथा मनु यों की आय भी बढ़ रही है, किन्तु दूसरी तरफ लोगों में तनाव, मधुमेह, रक्तचाप, त्वचा सम्बंधी बीमारियां आदि बढ़ती जा रही है। यहीं नहीं चिकित्सा सुविधाएं भी बढ़ी हैं, फिर भी ये समस्यायें कम नहीं हो रही हैं।

गर्मी के मौसम में स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें ज्यादा बढ़ जाती है क्योंकि जहां तापमान बढ़ने से बाह्य त्वचा को नुकसान होता है वहीं श्वास सम्बन्धी बीमारियां भी ज्यादा होती हैं। श्वास सम्बन्धी समस्याओं का मुख्य कारण वातावरण में नमी की कमी, धूल उडना, फूलों के परागणों का बहुतायत में पाया जाना आदि। यही कारण है कि लोगों में खांसी जुकाम एवं बुखार की समस्यायें बढ़ जाती है। तापमान बढ़ने के साथ एकाएक मौसम में बदलाव आता है जिससे वैक्टरिया एवं विषाणु जनित रोग भी बढ़ते हैं। यदि ध्यान न दिया जाय तो वायरल फीवर, फ्लू, चेचक आदि की समस्या भी बढ़ जाती है। ज्यादातर लोगों को पेट विकार संबंधी समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। पाचन गड़बड़ा जाता है, कभी–कभी डकारें आने लगती है, पेट साफ नहीं होता है, गैस बनने लगती है, सिर में दर्द होने लगता है आदि। पाचन असामान्य होने से पेट फूलने लगता है एवं बार बार मल त्याग के लिए जाना पड़ता है। कभी–कभी संक्रमण बढ़ने से पेचिस होने लगती है। विशे ाकर जब दू ित खान–पान या पानी का प्रयोग किया जाता है। अपच के कारण गैस एवं एसिडिटि एक आम समस्या होती जा रही है। कभी– कभी सुपाच्य भोजन न करने, ज्यादा खाने या पेट को ज्यादा देर तक खाली रखने से भी यह समस्या बढ़ती है। ऐसा भी देखा गया है कि लोग शादी विवाह या किसी पार्टी कार्यक्रम में ज्यादा लजीज भोजन खाने के चक्कर में इस प्रकार की समस्याओं को बढ़ा लेते है, क्योंकि जहां ज्यादा मात्रा में ठेके पर कार्य कराया जाता है वहां पर स्वच्छता में अक्सर कमी देखी गयी है और यदि स्वच्छता में कमी हो तथा उपर से गर्मी भी पड़ रही हो तो समझो कि बीमारियों को दावत दिया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त त्वचा सम्बन्धी बीमारियां भी गर्मी के मौसम में ज्यादा होती हैं। गर्मी बढ़ने से शरीर से ज्यादा पसीना आता है। वैसे शरीर से पसीना आना अच्छा होता है क्योंकि यह आन्तरिक एवं बाहय तापक्रम में संतुलन बनाता है तथा हानिकारक लवण को भी निकलता है। किन्तु पसीना आने के साथ धूल के कण भी त्वचा पर जमते रहते है और यदि ठीक से बाह्य त्वचा की साफ सफाई नहीं किया गया तो शरीर पर दाने निकल आते है। कहीं कहीं त्वचा पर लाल धब्बे पड़ जाते हैं, खुजली होने लगती है और शरीर में जलन की समस्या बढ़ जाती है। इस तरह ऑख की बीमारियां भी गर्मी के मौसम में ज्यादा होती है। ऑख में जलन होना, खुजली होना, आंख का लाल हो जाना, ऑख से पानी आना आदि। यह सब प्रदू ाण, उच्च तापक्रम एवं संक्रमण के कारण होता है। तेज गर्मी से लू

गृह विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

लग जाना, विशे ाकर मेहनतकश मजदूर किसान या अचानक बिना किसी सुरक्षा कवच के बाहर धूप में निकलने से यह समस्या आती है जिससे सिर दर्द, चक्कर आना, उल्टी होना, बुखार लगना आदि। ज्यादा धूप लगने से कभी कभी नाक से खून आना एवं मूर्छित होना भी देखा गया है। तेज धूप में गला सूखना एवं प्यास अधिक लगना सामान्यतया गर्मी के दिनों के लक्षण हैं।

यदि थोड़ा सावधानी बरते तो उक्त समस्याओं से आसानी से छुटकारा मिल सकता है और आपकी सेहत गर्मी के मौसम में भी विपरित परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होगी। आमतौर पर हम बचाव के बारे में कम ध्यान देते हैं और जब समस्या गम्भीर हो जाती है तब उसके निदान के लिए सोचते है। इसलिए गर्मी के मौसम में अपनी सेहत का ध्यान कैसे रखें इसके बारे में कुछ सरल किन्तु उपयोगी सुझाव दे रही हूँ जो निम्नवत हैंय

i:dfr d: lkFk py:

प्रकृति ने हमें छः ऋतुएं यथा व ार्, ग्री म, शरद, हेमंत, शिशिर एवं बसंत प्रदान की है जिनका अपना महत्व है, विशे ाकर वातावरण में संतुलन बनाने में, जिससे जीव जन्तु एवं वनस्पतियों की जीविका एवं निरंतरता बनी रहती है। यदि गर्मी नहीं हागी तो व ार् कम होगी यदि व ार् कम होगी तो वनस्पतियों पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा जिससे खाद्यान्न उत्पादन भी प्रभावित होगा। इसके विपरित यह भी स्मरण करना चाहिए कि ज्यादा गर्मी पड़ने से प्रकृति में पनप रहे हानिकारक जीवाणु भी कम हो जाते हैं और धरती का स्वतः विसंक्रमण होता रहता है। इसी तरह अधिक ठंडक का मौसम भी शीतो ण क्षेत्रीय वनस्पतियों के लिए आवश्यक होता है जैसे सेब, आड़ू, नासपती, आलूचा, खुबानी, अखरोट आदि के लिए। यदि ठंड नहीं होगी तो बर्फ भी नहीं पड़ेगी जो पहाड़ी क्षेत्रो में सिंचाई हेतु आवश्यक है। इसलिए मौसम का बदलाव प्रकृति का विधान है उससे डरने नहीं अपितु उसका सामना करना चाहिए। आप कछुए का उदाहरण लें, जो गर्मी में मिट्टी में शुसुप्ता अवस्था में चला जाता है और व ार् ऋतु आने पर पुनः बाहर आ जाता है। इसी तरह अत्यधिक गर्मी या ठंडक बढ़ने से पौधे की पत्तियां गिर जाती हैं किन्तु फिर जब उचित दशा मिलती है तो यही पेड़ पौध नई नई कोपलों से लहलहाने लगते हैं। आपने देखा होगा कि मरुस्थलीय क्षेत्रों की वनस्पतियां अपने आप को विपरीत परिस्थितियों से लड़ने के लिए अपना रूप परिवर्तित कर लेती है जैसे वनस्पतियों में काटें पाया जाना, पत्तियां छोटी एवं रोयेंदार द्वारा होना, स्टोमेटा का कम एवं रन्ध्रावकास छोटा होना, जड़े गहरी होना, नमी की उपलब्धता होने पर पु पन एवं फलन की प्रकिया पूरी करना आदि। यही कारण है कि कैक्टस मरूस्थल में आसानी से जीवित रहता है। इसलिए गर्मी के मौसम से चिन्तित होने के अतिरिक्त उसका खुशी–खशी स्वागत करना चाहिए एवं आवश्यक सावधनियों की तरफ ध्यान देना चाहिए जिससे आपके स्वास्थ्य पर विपरीत असर न पड़े। यदि सम्भव हो तो आप भी कुछ पौधे लगाकर प्रकृति प्रेमी बने एवं पर्यावरण विकास में अपना योगदान दें।

vk'kkoknh cu:

गर्मी शुरू नहीं हुई कि निराशावादी लोग हाय गर्मी हाय गर्मी करने लगते हैं, उफ कितना पसीना आ रहा है, धरती जल रही है, जीना मुश्किल हो गया है आदि–आदि। हॉ गर्मी है, यह मानती हूँ लेकिन ऐसे लोगों ने कभी उन मजदूरी करने वालों के बारे में भी सोचा जो भरी दुपहरी में मिट्टी की खुदाई कर रहे हैं, ईंट की ढुलाई कर रहे हैं, खेत खलिहान में काम कर रहे हैं, किसान तपती धूप में फसल काट रहे हैं, मंडाई कर रहे हैं, मवेशियों को चारा पानी डाल रहे हैं आदि–आदि। दो वक्त की रोटी के लिए मजदूर कहॉ–कहॉ नहीं भटक रहे हैं। रिक्शा चला रहे है मण्डी में पल्लेदारी कर रहे, नंगे पांव टहल रहे है, क्या उन्हें गर्मी नहीं लगती है। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि आप भी गर्मी में टहलना शुरू कर दें अपितु यह रेखांकित करना चाह रही हूँ कि जीवन का आवश्यकतायें मनु य को कठोर बना देती हैं। आप जितना ही सुख सुविधा भोगी बनते जायेंगे, उतना ही आपकी अवरोधक क्षमता घटती जायेगी। यही कारण है कि नौकरी करने वाले जो आफिस में गर्मी के मौसम में एअर कन्डीसनर में कार्य करते हैं वे अब बाहर के वातावरण में अचानक निकलते हैं तो जल्दी बीमार पड़ जाते हैं जबकि आपने मरुस्थलीय क्षेत्रों में देखा होगा। वहां गर्मी में भी लोग काम करते हैं ¼fd lku [kr e: pjokgk jr e: फिर भी वे स्वस्थ कुशल रहते है। ऐसे लोग गर्मी को प्रकृति का उपहार मानकर चलते हैं न कि अभिशाप। मैंने बहुत से आशावादी लोगों को कहते सुना है कि दिन में तो गर्मी हो रही है लेकिन शाम–सुबह मौसम अच्छा रहता है और रात तो बड़ी सुहावनी हो जाती है। अतः प्रत्येक मनु य को आशावादी होना चाहिए कि ये गर्मी भी कुछ दिन की है उसके बाद व ार् ऋतु का सुहाना मौसम आयेगा फिर शीत ऋतु का पदार्पण होगा और प्रकृति इसी तरह अपने आयाम बदलती रहेगी।

ikuh [kc fi;:

जल के बिना मनु य के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। पानी दुनियां के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है। केवल जीव–जन्तु ही नहीं अपितु फसलों के लिए भी आवश्यक है। मानव शरीर के वजन का 55–60

प्रतिशत हिस्सा पानी ही होता है। पानी पीने से शरीर का तापमान संतुलित रहता है। पानी भोजन के साथ मिलकर पाचन को ठीक करता है। जो लोग कम पानी पीते हैं उन्हें अपच की समस्या रहती है। और भोजन का ठीक से पाचन नहीं होगा तो उदर सम्बन्धी अनेक बीमारियां हो जाती है एवं त्वचा सूखी हो जाती है गर्मी के मौसम में शरीर से पानी का उत्सर्जन ज्यादा होता है क्योंकि वातावरण का तापमान अधिक रहता है इसलिए गर्मी में शरीर को पानी की ज्यादा आवश्यकता पड़ती है। इसलिए थोड़ी–थोड़ी देर में पानी पीते रहना चाहिए किन्तु ध्यान रहे कि शुद्ध पानी ही पीना चाहिए। इसके अतिरिक्त पानी पीते समय यह भी सावधानी बरतनी चाहिए कि पानी बैठ कर गिलास से घूंट घूंट कर पीयें। जल्दी–जल्दी पानी नहीं पीना चाहिए। इण्डियन काउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च की गाइडलाइन के अनुसार एक सामान्य स्वस्थ व्यक्ति को एक दिन में आठ गिलास पानी (लगभग 2 लीटर) पानी चाहिए। गर्मी मे यदि एक–दो गिलास बढ़ जाय तो और अच्छा है। साधारणतया खाना खाने के आधे घण्टे बाद पानी पीना चाहिए। घर से बाहर जाते समय भी एक गिलास पानी पीकर जायें और यदि बाहर से घर आयें हैं तो भी एक गिलास पानी अवश्य पीयें किन्तु थोड़ा रूक कर। आमतौर पर गला सूखना एवं प्यास लगना गर्मी में एक सामान्य प्रक्रिया है, जिसके बाद लोग अत्यधिक ठंडा पेय या रेफ्रिजरेटर का पानी या साधारण जल में बर्फ डालकर पीते हैं जिससे कभी कभी गला खराब हो जाता है इसलिए अत्यधिक ठंडा पेय या जल न पीयें। ताज एवं सामान्य तापक्रम का पानी पीना हमेशा अच्छा रहता है। यही कारण है कि गर्मी में मिट्टी के पात्र या सुराही में रखा जल पीना ज्यादा अच्छा होता है। यह भी सलाह दी जाती है कि लम्बी दूरी की यात्रा करें तो भी पानी अपने साथ अवश्य रखें।

xehZ ds fo'ks"k [kk| ,oa is;

गर्मी से बचने के लिए कुछ विशे ा प्रकार के पेय का प्रचलन है। जैसे फलों का जूस जिनमें मौसमी, सन्तरा, नींबू पानी, बेल का शर्बत आदि। आजकल बाजार में विभिन्न प्रकार के पेय/शर्बत उपलब्ध हैं, जहां तक सम्भव हो इनका सेवन कम से कम करें। आप सभी देखते होंगे कि गर्मी आते ही गन्ने का जूस, जलजीरा की ठेली, आइसक्रीम की दुकान सज जाती हैं। इनका सेवन करें किन्तु स्वच्छता को ध्यान में रखते हुए। अपने घर में तैयार किया जलजीरा, नींबू पानी एवं बेल के शर्बत तथा पुदीना के शर्बत की पीने की विशे ा रूप से सलाह दी जाती है। इसी तरह से घर पर तैयार किया गया छाछ, लस्सी, दही का प्रयोग गर्मी में विशे ा लाभदायक होता है।

कुछ धनाढ्य लोग पानी की जगह कोल्डड्रिंक एवं फलों के ज्यूस का ज्यादा सेवन करते है। यहां तक कि खाना खाते समय भी इसे पीते रहते हैं। ध्यान रहे कि कोल्डड्रिंक एवं फूलों के ज्यूस में सर्करा की मात्रा अधिक होती है अतः इसका ज्यादा सेवन करना कभी–कभी नुकसानदायक भी हो जाता है। कुछ लोगों को डायबिटिज की समस्या भी हो जाती है। गर्मी के मौसम में अँगूर, अनार, सन्तरा, तरबूज, खरबूज, पपीता, जामुन, आड़ू, आलूचा, स्ट्राबेरी आदि फलों को खाना चाहिए जिनमें विटामिन मिनरल के साथ साथ पर्याप्त मात्रा में एन्टीआक्सीडेंट एवं पानी विद्यमान होता है। आम को भी खायें, किन्तु सावधानी यह रखनी चाहिए कि कार्बाइड द्वारा पकाये गये आम खाना हानिकारक होता है। इसी प्रकार फलों को बाजार से लाने के बाद तुरन्त न खायें अपितु इसे थोड़ी देर रख कर अच्छी तरह धोने के बाद उपयोग करें। ग्रामीण क्षेत्रों में गर्मी के मौसम मे जौ का सत्तू बनाकर प्रयोग करने का प्रचलन है। जो शरीर में तरावट रखता है। ग्रामीण हाट में विशे ाकर तरबूज को काटकर बेचा जाता है जिस पर मक्खियां बैठी रहती हैं, इसे खाने से अपच एवं पेट गड़बड़ होने की आशंका रहती है। आजकल बाजार में विभिन्न प्रकार की ठंढई मिलती है जिसमें मुख्य रूप से सौंफ, धनिया, गुलाब आदि की ठंढई, उसका भी सेवन करें। सौंफ की ठंढई जिसमें सौंफ, पुदीना व मिश्री मिलाकर आप स्वयं घर पर भी बना सकते हैं। मेरे हिसाब से गर्मी में नींबू के ज्यूस में थोडा पुदीना एवं काला नमक मिलाकर पीना सबसे सस्ता एवं लाभदायक पेय है। इसी तरह बेल के शर्बत का विशे ा महत्व है जो न केवल पानी की कमी पूरा करता है अपितु स्फूर्ति, ताजगी एवं पाचन को भी ठीक रखता है। ए.सी. एवं कूलर का सीमित उपयोग करे, इससे बिजली की भी बचत होती है एवं स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। कभी कभी पेड़ की छांव में जैसे नीम, पीपल, बरगद, पिलखन, खेजडी आदि के नीचे बैठकर भी आनंद लें।

lqikP; Hkkstu djsa

गर्मी में भोजन की विशे ा सावधानी बरतनी चाहिए। ज्यादा गरिष्ठ एवं मसालेदार भोजन की सलाह नहीं दी जाती है। गर्मियों में शादी विवाह का विशेष समय होने से लजीज पकवान जिसमें अधिक तेल एवं मसाले रहते हैं, बनाये जाते हैं। साथ ही मिठाईयां भी खूब बनती

है। जिनका अधिक सेवन करने से पेट खराब होने की समस्या गर्मी में अधिक रहती हैं। बाजार की पकोड़ी, कचौड़ी, समोसा, टिक्की या अन्य तले भुने खाद्य यदि अच्छे तेल या स्वच्छता से नहीं बने हैं तो उनका भी सेवन नहीं करना चाहिए। बासी खाना भी नहीं खाना चाहिए। शहरी क्षेत्रों में घर पर रेफ्रिजरेटर में रख कर खाना कई दिनों तक खाया जाता है जो ठीक नहीं है। इसी प्रकार फलों द्वारा बनाया गया चाट यदि ताजा नहीं है तो उसे भी नहीं खाना चाहिए। खाने में दही एवं उससे बने खाद्य जैसे छाछ, लस्सी, रायता को अवश्य शामिल करना चाहिए। गर्मी में सलाद का प्रयोग बहुत अच्छा होता है जिसमें पानी की प्रचुर मात्रा होती है, सलाद में अन्य तत्वों के साथ–साथ रेशा भी होता है जो पाचन में सहायक होता है। सलाद में मुख्य रूप से खीरा, ककड़ी, प्याज, टमाटर, नींबू, हरी मिर्च आदि का प्रयोग लाभदायक होता है। कच्ची प्याज, खीरा, टमाटर, चुकन्दर के छोटे–छोटे टुकड़े एवं अनार के दाने का रायता गर्मी में बहुत उपयोगी होता है। बेसन की बूंदी का रायता भी प्रयोग करना चाहिए। हरी साग सब्जियों जैसे पालक, धनिया, चौलाई आदि को भोजन में प्रमुखता देनी चाहिए। वैसे गर्मीयों में हरा कद्दू, हरा कटहल, शिमला मिर्च, भिण्डी, बैंगन भी उपलब्ध रहते हैं जो थोड़ा गरि ठ होते हैं किन्तु स्वाद बदलने के लिए कभी कभी इनका प्रयोग करना चाहिए। भोजन में विभिन्नता भी आवश्यक है अतः रोटी, दाल, चावल के साथ कभी कभी सोया बड़ी, बेसन का गट्टा, काला चना एवं पंचकुटा को भी समाहित कर सकते है किन्तु प्राथमिकता सुपाच्य भोजन की होनी चाहिए जिसमें लौकी, धारीदार एवं चिकनी तोरी, करेला, कच्चा पपीता, टिण्डा, काचर, लोइया आदि प्रमुख हैं। धनियां, पुदीना एवं हरी मिर्च की चटनी का भी सेवन करना चाहिए। फलों जैसे पपीता, केला, अंगूर, अनार, आलू बुखारा, तरबूज, खरबूज, बेल, सहतूत, सन्तरा आदि का भी प्रयोग करें। इस प्रकार यदि उचित खान पान पर आप ध्यान देंगे तो गर्मी की समस्या से अवश्य लाभ होगा।

ruko de dj

मौसम कोई भी हो तनाव कम करें न कि तनाव मुक्त रहें। मनु य कभी भी तनाव मुक्त नहीं हो सकता, केवल महापुरू ा या सिद्ध पुरू ा/स्त्री ही तनाव रहित रह सकते हैं। मनु य के जीवन में अनेक जिम्मेदारियां होती हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए वह हमेशा प्रयासरत रहता है अतः थोड़ा बहुत तनाव सभी के लिए स्वाभाविक है। जितना सम्भव हो तनाव कम करना चाहिए। गर्मी के दिनों में भी कार्य की व्यस्तता चाहे वो खेती का कार्य हो, कार्यालय का कार्य हो, व्यवसाय का कार्य हो या अन्य किसी तरह का कार्य हो, व्यस्तता को और बढ़ा देता है। रात्रि में निन्द्रा की कमी, मक्खी–मच्छर की अधिकता, विद्युत कटौती, खान–पान में गड़बड़ी आदि से भी तनाव बढ़ता है। इसलिए तनाव कम करने के लिए यथा सम्भव नींद ले, सुपाच्य भोजन करें एवं हल्का आसन–व्यायाम को अपनी दिनचर्या का हिस्सा बना लें। सुबह–सुबह मौसम सुहावना रहता है उस समय बाहर निकलकर थोड़ा टहलना विशे ा लाभदायक रहता है। यदि आप अस्थमा, मधुमेह, रक्तचाप या अन्य किसी प्रकार की समस्या से प्रभावित हैं तो चिकित्सक की अवश्य सलाह लें। तेज धूप में ज्यादा बाहर न निकलें। यदि कार्यवश निकलना भी है तो पूरी आस्तीन के कपड़े पहने एवं चेहरे को सूती कपड़े से ढक कर निकलें। सिर को ढकने के लिए टोपी या गमछे का प्रयोग करें। ऑखों की सुरक्षा हेतु धूप का चश्मा भी लगा सकते हैं। पैदल चलना है तो छाता का भी उपयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त शारीरिक सफाई भी अति आवश्यक है प्रतिदिन स्नान करें और यदि सम्भव है तो शाम को भी स्नान करें। बार– बार ठंडे पानी से हाथ मुंह भी धोते रहना चाहिए। ऑखों को भी नित्य प्रति ठंडे पानी से धोया करें। रात को सोने से पूर्व यदि हाथ पैर धोकर सोयें तो निन्द्रा अच्छी आती है। एक और बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि गर्मी के मौसम में बच्चों की स्कूल की छुट्टियां हो जाती है, कभी कभी रिश्तेदार भी आ जाते हैं ऐसी स्थिति में समय बिताना तो आसान हो जाता है किन्तु फिर भी खान पान का विशे ा ध्यान रखना चाहिए। कभी कभी ज्यादा गर्मी पड़ने पर लोग समय बिताने के लिए ताश के पत्ते खेलते हैं उससे अच्छा होगा कि आप परिवार के साथ ज्यादा समय बितायें, घरेलू कार्यों में हाथ बटायें और यदि सम्भव हो तो अध्ययन करने या कुछ लिखने में अपना समय लगायें तो और अच्छा रहेगा तथा गर्मी से निजात मिलेगी एवं तनाव भी कम होगा। पास–पड़ोस में मेल जोल रखें, गरीबों की मदद करें एवं समाज के सामूहिक कार्यों में अपनी सक्रियता बढ़ायें तो भी तनाव कम

भारतीय संस्कृति में पेड़-पौधों एवं पर्यावरण का महत्व

dey'k dqekj

भारतीय संस्कृति में पेड़–पौधों की पूजा की परंपरा सदियों पुरानी रही है। हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में भी वृक्षों की महिमा का वर्णन मिलता है। वृक्षों की पूजा और प्रार्थना के नियम बनाए गए है। 'औषधयः शांति वनस्पतयः शांतिः' जैसे वैदिक मंत्रों से वृक्षों और वनस्पतियों की पूजा की जाती है। संपूर्ण आयुर्वेद विज्ञान प्रकृति की इसी देन पर आधारित है। हमारे ऋषियों द्वारा वन में रहते हुए धर्मग्रंथों की रचना करने का यही कारण है, कि वहां का शांत और सुरम्य वातावरण उनके अनुकूल था, जो उनके मन को एकाग्र रखने में सहायक होता था। वृक्षों द्वारा उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। धान व कंद–मूल–फल उनके आहार के साधन होते थे। वे फूलों या लताओं के रस से स्याही व लकड़ी सेकलम बनाकर भोजपत्र पर अपनी रचनाएं लिपिबद्ध करते थे। प्राचीन औषधीय गुणों वाले पौधों और वृक्षों को आज सदियों बाद भी पूजनीय माना जाता है और उनकी विधिवत पूजा–अर्चना की जाती है। विशिष्ट धार्मिक महत्व रखने वाले कुछ प्रमुख पेड़– पौधे इस प्रकार है :–

rqylh% हिंदू धर्म में तुलसी का स्थान सर्वोपरि माना गया है। तुलसी ही एक ऐसा पौधा है जो अनवरत रूप से वायुमंडल में ऑक्सीजन छोड़ता है। तुलसी के पत्ते, बीज, तना, जड़ और यहां तक कि उसके आस पास की मिट्टी भी विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने में सहायक होती है। चरणामृत में तुलसी दल का प्रयोग किया जाता है।

oVo`{k ¼cjxn½% भारतीय संस्कृति में वटवृक्ष को समस्त मनोकामनाएं पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष माना जाता है। औषधीय गुणों से युक्त इस विशालकाय और छायादार वृक्ष का उल्लेख कई धार्मिक ग्रंथों में है। ऐसी कथा प्रचलित है कि वटवृक्ष के नीचे ही सावित्री ने यमराज से सत्यवान के पुनर्जीवन का वरदान मांगा था। इसी दिन की स्मृति में प्रतिवर्ष ज्येष्ठ माह की अमावस्या के दिन सौभाग्यवती स्त्रियां वट सावित्री का व्रत रखती है। इस दिन वे वटवृक्ष की पूजा–अर्चना और परिक्रमा करते हुए अपने पति की लंबी आयु के लिए प्रार्थना करती है। इसके अलावा प्राचीन हिंदू तीर्थ प्रयागराज में स्थित सदियों पुराने वटवृक्ष अक्षय वट को अमरत्व के वृक्ष की संज्ञा दी जाती है और ऐसा माना जाता है कि इस वृक्ष का अस्तित्व आदि काल से धरती पर है और सृष्टि के समाप्त हो जाने के बाद भी यह वटवृक्ष नष्ट नहीं होगा।

ihiy% पीपल के वृक्ष के विषय में भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि पीपल का वृक्ष ब्रह्म स्वरूप है। हिंदू धर्म में ऐसी मान्यता है कि पीपल के वृक्ष की जड़ से लेकर पत्तियों तक में तैंतीस कोटि देवताओं का वास होता है और इसलिए पीपल का वृक्ष प्रातः पूजनीय माना गया है। लोग इसे देव स्वरूप पवित्र मान कर इसकी पूजा करते है। ऐसा माना जाता कि गौतम बुद्ध की तपस्या पीपल के वृक्ष के नीचे ही पूर्ण हुई थी। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा भी पीपल के औषधीय गुणों की पुष्टि की गई है।

uhe% आयुर्वेद में नीम के वृक्ष का विशेष महत्व बताया गया है, इसे 'कृमिःहरः' भी कहा जाता है। इसके पत्तों व छाल से विभिन्न रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि विषैले जीवों के काटने पर यदि, इसकी कोपलों का सेवन किया जाए तो शरीर में विष नहीं फैलता है। खसरा और छोटी चेचक जैसी त्वचा संबंधी बीमारियों में नीम की पत्तियों को उबाल कर उसके पानी से स्नान करना बहुत

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

फायदेमंद साबित होता है। माना जाता है कि नीम के वृक्ष पर देवी शीतला माता का निवास होता है, जो सारे दुखों को दूर कर देती है।

dyk सुस्वादु और स्वास्थ्यवर्धक फल केले के वृक्ष को भारतीय संस्कृति में अत्यंत शुभ माना जाता है। विवाह और पूजा–पाठ जैसे शुभ अवसरों पर केले के पत्तों या कदली स्तंभ से मुख्य द्वार और मंडप को सजाया जाता है। भगवान जगन्नाथ को केले के पत्ते पर भोग लगाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि केले के वृक्ष में भगवान विष्णु का वास होता है और बृहस्पतिवार के दिन केले के वृक्ष की पूजा करने से परिवार में सुख–समृद्धि बनी रहती है।

हिंदू धर्म और संस्कृति में स्वास्थ्यवर्धक और उपयोगी पेड़–पौधों का सम्मान और उनका पूजन करने की परंपरा सदैव से रही है क्योंकि वृक्षों के जीवन का उद्देश्य ही परोपकार है। वृक्ष अपने पत्ते, फूल और फल दूसरों के सुख के लिए देते है और अंत समय में अपना शरीर भी दूसरों की आवश्यकताओं के लिए समर्पित कर देते है।

वेदों का संदेश है कि मानव शुद्ध वायु में श्वास ले, शुद्ध जलपान करे, शुद्ध अन्न–फल का भोजन करे, शुद्ध मिट्टी में खेले–कूदें और कृषि करे, तब ही वेद प्रतिपादित उसकी आयु ''शं जीवेम् शरदः शतम्'' हो सकती है। वृक्ष वनस्पति भगवान नीलकंठ का रूप हैं क्योंकि वे विषेली गैसों को पीकर अमृतमयी गैस निकालते हैं। अतः वृक्षों को सींचना भगवान शिव को जल चढ़ाने के समान हैं। वेदों में इस बात का संकेत हैं कि पीपल के नीचे बैठना स्वास्थ्यप्रद हैं तथा पलाश (ढाक) के पेड़ दिन–रात सुगन्ध और प्राणवायु छोड़ते हैं। वृक्ष हमारी संस्कृति की धरोहर हैं। इसीलिए अनेक वृक्ष पूज्य माने जाते हैं। तुलसी को विष्णुप्रिया माना गया हैं। विष्णु पुराण में सौ पुत्रों की प्राप्ति से बढ़कर एक वृक्ष लगाना माना गया हैं। भक्त व भगवान के तिलक लगवाने के लिए चन्दन सर्वमान्य हैं। मत्स्य पुराण में दस कुओं, बावडियो, व तालाबो से भी बढ़कर वृक्ष लगाने को विशेष मान्य किया गया हैं। पुराकाल में यदि अपरिहार्य कारणों से किसी वृक्ष को काटना पड़ता था तो वृक्ष से क्षमा माँगने का प्रावधान था। राजस्थान में विश्नोई समाज द्वारा जोधपुर जिले में खेजड़ी के वृक्ष को बचाने हेतु लोगों ने बलिदान दिए हैं। पीपल और बरगद के पेड़ो को तो ब्राह्मण माना गया हैं। अतः उन्हें काटना ब्रह्म हत्या के समान है। तुलसी का पौधा तो इतना पवित्र माना गया हैं कि हर भारतीय उसे घर में लगाता है तथा उसके विवाह की भी परम्परा भारतीय समाज में रही है। हमारे ऋषि महात्माओं के आश्रम वन खण्डों में स्थित है। अनेक पेड़ों के संबंध देवी देवताओं से संलग्न किये गये हैं। पीपल में विष्णु वास, नीम को नारायण कहा गया है। बरगद को भगवान शंकर से संबद्ध माना और तुलसी को सालिगराम की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया है। वैसाख में पीपल पूजा, कार्तिक में आँवला व तूलसी पूजा, मिगसर मास में कदम्ब के वृक्ष को पूजने की परम्परा रही है। पेड़ों की स्थिति पर भी विचार किया जाता है। नीम का पेड़ गाँव की चौपाल पर और पीपल का पेड़ गाँव के बाहर जलाशय के किनारे शोभायमान होता है। हमारे धार्मिक ग्रंथों में यह भी उल्लेख हैं कि पीपल, बरगद को ब्राह्मण माना जाता था और उन्हें काटना ब्रह्म हत्या के समान माना जाता है। जिस वृक्ष पर पक्षियों के घौसलें हों तथा देवालय और शमशान भूमि पर खड़े पेड़ों को नहीं काटना चाहिए जैसे बड़ ,पीपल, आक, नीम आदि। भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व सिंधु घाटी की सभ्यता में प्राप्त मुहरों पर अंकित चित्रों से स्पष्ट हैं कि सिन्धु घाटी के निवासी वृक्षों की पूजा किया करते थे। प्राचीनकाल से ही पेड़ो को सीचनें की परम्परा चली आ रही है। वैसाख महीने में भारतीय नारियाँ व बालिकाएं पीपल के पेड़ को सींचती हैं। इसके पीछे यही धारणा हैं कि ज्येष्ठ मास की भीषण गर्मी से इन पेड़ों को बचाया जा सकें। पेड़ों के बचाव व संरक्षण हेतु गोचर भूमि, डोली और ओरण आदि व्यवस्थाओं को क्रियान्वित किया गया। मंदिरों के पुजारी वन संरक्षण में अपनी भागीदारी का निर्वहन कर सके।

वन्य जीव जन्तु भी हमारे पर्यावरण के प्रमुख अंग माने जाते हैं। इनका सही सन्तुलन होने पर पर्यावरण शुद्ध तथा स्वच्छ रहता है। इनकी सुरक्षा के लिए वन्य जीवों को पूज्य मानकर इनकी पूजा का भी प्रावधान हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं में रखा गया है। भारतीय संस्कृति में दस अवतारों में चार अवतार पशुओं व जन्तुओं से संबद्ध हैं जैसे मत्स्य अवतार, वराह अवतार, कच्छप अवतार तथा नृसिंह अवतार आदि। विशेषतः गणेश, हनुमान और नागपूजा की व्यवस्था की गई हैं ताकि लोगों में पशु प्राणियों के लिए आस्था अक्षुण्य बनी रहे। गायों की महत्ता को प्रकट करने हेतु गोपाष्टमी, बछबारस का त्योहार मनाया जाता हैं। गाय किसानों की जीवन धारा है। कृषि भूमि में उत्पादन को हानि पँहुचाने वाले चूहों पर नियन्त्रण रखने वाले सांपों के प्रति श्रद्धा सूचक नाग पंचमी व गोगानवमी का त्यौहार मनाया जाने लगा। पशु पक्षियों के संरक्षण हेतु अनेक परम्पराएं भारतीय समाज में प्रचलित है। शनिवार के दिन

'कीड़ी नगरा'' सींचने की परम्परा में उन चींटिंयों की सुरक्षा की व्यवस्था दी गई है जो हानिकारक उदई तथा बर नियन्त्रण करती है, जो नई मिट्टी बाहर निकालते है। मरे हुए जानवरों की गंदगी को दूर करने वाले कौओं के प्रति श्रद्धा स्वरूप श्राद्व पक्ष में उनको भोजन खिलाने की परम्परा है। विवाह के समय तोरण लगाने की परम्परा में भी पक्षियों को याद किया है। तोरण पर प्रतीकात्मक रूप से पक्षियों की आकृतियाँ बनाई जाती है। भोजन से पहले एक रोटी अथवा पाँच ग्रास चींटी, कौए, कुत्ते आदि के लिए निकालकर उन्हे जीवित रखने की व्यवस्था प्रकट की गई है। ''जल ही जीवन है'', अतः जल के शुद्धीकरण एवं पवित्रता बनाये रखने का प्रयत्न प्राचीन काल से चला आ रहा है। जल को भारतीय समाज में देवता माना गया है। जल संरक्षण की परम्परा से नदियों को ''माता'' का स्थान दिया गया है। इनकी पूजा की जाती है। गंगाजल को समस्त संस्कारों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कुंआ, बावड़ी, तालाब तथा झीलों के निर्माण की धार्मिक प्रथाएं रही है। गाँवों में आज भी जल स्त्रोतों को गंदा करने पर सामाजिक प्रतिबन्ध रहता है। लोग शिवरात्रि पर हरिद्वार से कावड़ में गंगाजल लेकर कई मीलों तक यात्रा करते हुए घर पहुंचने की प्रथा चली आ रही है। नदियाँ भूमिगत जल का स्तर ऊँचा उठाती हैं और प्राकृतिक सौन्दर्य में वृद्धि करती है। पृथ्वी पर जल का तीन चौथाई हिस्सा होते हुए भी पीने योग्य जल का हिस्सा 0.33 प्रतिशत हैं। जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ जल संकट बढ़ता जा रहा हैं। अतः जल संरक्षण आवश्यक हो गया है। संसार में पर्यावरण संरक्षण का कार्य सर्वप्रथम ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में सम्राट अशोक ने किया था। प्रकृति की महत्ता को स्वीकारते हुए वन्य जीव जन्तुओं के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया जो आज भी अशोक के शिलालेखों में अंकित है। जल को आदि काल से शुद्ध व पवित्र बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। पवित्र नदियों के जल को बड़ी धूमधाम से गृह प्रवेश कराया जाता है। गंगा प्रसादी के रूप में भोज का आयोजन होता है। पुरातन जल संसाधनों के रख रखाव पर बड़ा ध्यान था। कुए, बावड़ी, झालरों का निर्माण कराना धार्मिक कृत्य माना जाता है। जल स्त्रोंतों को गंदा करने पर दण्ड का विधान था। प्राचीन काल में ऋषि आश्रमों में शिक्षा प्राप्ति के साथ साथ विभिन्न प्रकार के पेड़ लगाने तथा उन्हें सिंचित करने का पुनीत कर्म करना आवश्यक था। यदि कोई दंपति निसंतान होता तो पेड़ लगाने या कुआं या बावड़ी बनवाने से उससे मुक्ति मिलने की मान्यता थी। धर्म परायण व्यक्ति जलाशय बनाकर, वृक्षारोपण कर, देवालय बनवाकर धर्म में संवर्धन करते थे।

हमारे पुरातन साहित्य में पर्यावरण की महत्ता को विभिन्न प्रकरणों एवं तरीकों से समझाने का प्रयास हुआ है। पर्यावरण सुरक्षा व संवर्धन ने विभिन्न उपायों का उल्लेख हुआ है। तत्कालीन साहित्य में पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के अनेक सुझाव प्रस्तुत हुए है। ज्ञान और नीतिपरक पंचतंत्र की कहानियों तथा जातक कथाओं में वन्य जीवन सें संबंधित अनेकानेक प्रसंगों को उद्घाटित किया गया है। सभी ग्रहों नक्षत्रों के साथ पंचतत्वों पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश तथा प्रकृति पर्वत तथा नदी, वन को देवता मानकर उनकी पूजा अर्चना का प्रावधान है। यजुर्वेद में भूमि प्रदुषण पर नियंत्रण हेतु उल्लेख है कि– ''पृथिवी मातर्मा मा हिंसीर्मो अहं त्वाम'' – यजुर्वेद 10/23, अर्थात् हे! माता तुम हमारा पालन पोषण उत्तम रीति से करती हो। हम कभी भी तुम्हारी हिंसा (दुरुपयोग) न करें। रासायनिकों व कीट नाशकों के अति प्रयोग से तुम्हारा कुपोषण न करें बल्कि फसल हेर–फेरकर बोने तथा गोबर, जल आदि से तुम्हें पोषित करें। क्षरण की रोक हेतु वृक्ष लगाये क्योंकि तुम्हारे पोषण पर ही हमारा पोषण निर्भर है। भूमि की उपजाऊ क्षमता न्यून व क्षीण हो गई है तो इस भूमि पर कुछ समय खेती बाड़ी नहीं करे, जिससे प्रकृति, वायु, सूर्य, रश्मि वर्ष भर में उन्हें उर्वरा बना देगें, ऐसे निर्देश वेदों में प्रकट हुए है। इस संबंध में इन सराहनीय सुझावों की क्रियान्विति से पर्यावरण संरक्षण की व्यवस्था को बल मिलेगा। सूखी पहाड़ियों पर तरुपुत्र यज्ञों के माध्यम से वृक्षारोपण द्वारा स्मृति उपवन बनाना। मंदिरों और उद्यानों में वृक्ष वाटिकाओं का निर्माण करना। नदी किनारे खेतों की मेंड़ो आदि पर भूमि कटाव को रोकने हेतु छायादार वृक्ष लगाना। मंदिर व धार्मिक स्थलों पर त्रिवेणी– (पीपल, बरगद, नीम), पंचवटी (नीम, पीपल, बरगद, जामुन, आँवला), हरिशंकरी– (बरगद, पीपल, पाकड़) का वृक्षारोपण करना। प्रत्येक गाँव में देवालयों व गोचर भूमि तथा बंजर भूमि में वृक्षारोपण करना। शिक्षण संस्थानों में तरुमित्र योजनान्तर्गत विद्यार्थियों से वृक्षारोपण कराना। श्मशान घाटों पर धार्मिक महत्व के छायादार पेड़ लगाना। राजमार्गों के किनारों पर छायादार वृक्ष लगाना।

आज हमारी पुरातन परम्पराएं और रीति रिवाज समाप्त प्रायः हो गये है। वर्तमान सभ्यता और भौतिकता विषबैल इतनी फलित हो गई हैं कि समग्र संस्कृति को पाला मार गया है।

तुलनात्मक दृष्टि से यह देखा जाए तो आज के इस भौतिक युग में मनुष्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में अंधा हो गया हैं और हमारी प्राचीन धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की मान मर्यादाओं और भावनाओं को जीवन से तिरोहित करता जा रहा है। पूर्व की हमारी प्रकृति–उपासना की आस्थाएं समाप्त हो गई है। जिस

श्रद्धा और आस्था के साथ हम प्रकृति की पूजा करते थे, आज वह भावना समाप्त हो गई है। प्रकृति के दोहन से अधिकाधिक अर्थलाभ की भावना में वृद्धि हो गई हैं। वृक्ष पूजा केवल प्रतीकात्मक रह गई है। आज बरगद, पीपल, नीम, आंवला आदि का महत्व कम होता जा रहा है। गोचर भूमि पर अत्यधिक अतिक्रमण हो रहे है। वहां आवासीय भवन खड़े किए जा रहे है। पशु पक्षियों की जातियाँ लुप्त होती जा रही हैं। हमारे जल स्त्रोत अब बस्ती के कचरादान बनते जा रहे है। जिन नदियों को हम मातृवत् पूजते रहे हैं, अब उनमें कल–कारखानों का प्रदूषित जल प्रवाहित हो रहा है। आज भी हमारी पुरातन पर्यावरण संरक्षण की प्रथाओं को सामाजिक स्तर पर प्रधानता देते हुए, इन परम्पराओं का अनुगमन दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ किया जाए तो पर्यावरण संतुलन तथा संरक्षण को प्रगाढ़ता मिलेगी।

dukVd d: gEih fLFkr cjxn dk ,d ikphu o{k

थार रेगिस्तान में खजूर की वैज्ञानिक खेती

jked'k ehuk] vkj- ,l- flag] iou flag xqtj ,oa iou ikjhd

çLrkouk

खजूर गर्म–शुष्क जलवायु में उगाया जाने वाला एरीकेसी कुल का फल वृक्ष है, जिसका वानस्पतिक नाम फीनिक्स डेक्टीलीफेरा है। ऐसा माना जाता है कि फलों की खेती में खजूर की खेती सबसे पहले शुरू हुई थी। ईराक में 'उर' नामक जगह इसकी उत्पत्ति के साक्ष्य मिलते है वैसे उत्पत्ति स्थान फारस की खाड़ी माना जाता है। आजादी से पूर्व हमारे देश के पंजाब प्रांत में इसकी खेती बहुतायत में होती थी। अब गुजरात के कच्छ क्षेत्र में अधिकाशतः खजूर उगाया जाता है। इसके अलावा पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा, पंजाब एवं तमिलनाडू के कुछ भू–भाग में भी खेती होती है। खजूर के पौधे एक बीज पत्रीय होने के कारण मूसला जड़ें नहीं होती है, लेकिन जड़ें एक से दो मीटर की गहराई तक जमीन में जाती है। इसके पौधों में सूखा, लवणता तथा अत्यधिक शुष्क गर्म वातावरण सहने की क्षमता होती है। अच्छी गुणवत्ता के फल उत्पादन के लिए समुचित सिंचाई व्यवस्था आवश्यक होती है। खजूर पौधों मे सिंचाई के लिए लवणीय पानी भी उपयोग में लिया जा सकता है।

राज्य	क्षेत्रफल	उत्पादन (मैट्रिक टन)	उत्पादकता (मैट्रिक टन/हे.)
गुजरात	21000	173997.6	9.23
राजस्थान	1090	800	–––
हरियाणा	2.0	–	–
तमिलनाडू	809		

L=kr% ,Q-,-vks-] 2017

खजूर के फल बहुत पौष्टिक व शक्तिवर्धक होते हैं। फलों के गूदे में लगभग 20 प्रतिशत नमी के अतिरिक्त 60–65 प्रतिशत शर्करा, लगभग 2.5 प्रतिशत रेशा, 2.5 प्रतिशत प्रोटीन, 2 प्रतिशत से कम वसा व खनिज तत्व तथा विटामिन ए, विटामिन बी–1 (थायमीन), विटामिन सी, नियासिन तथा विटामिन बी–2 (राइबोफ्लेविन) पाए जाते हैं। एक किलोग्राम खजूर के फलों से लगभग 3100 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। खजूर के फलों का सेवन रक्तवर्धक तथा कब्ज दूर करने में सहायक होता है। पौष्टिकता के अलावा इसमें औषधीय गुण भी पाये जाते है। इसके फल प्रायः पूर्ण परिपक्व अवस्था (पिण्ड) में खाए जाते हैं। कुछ किस्मों जैसे हलावी, बरही, खलास, खुनेजी इत्यादि के फलों को अधपकी अवस्था (डोका) में सर्वाधिक मिठास होने के कारण ताजे फल के रूप में प्रयोग किये जाते है। डोका अवस्था के फलों से अच्छी गुणवत्ता के छुहारे व अन्य मूल्य संवंधित उत्पाद बनाये जाते हैं। चटनी, स्क्वैस, आर.टी.एस. व अचार, जैम, सीरप बनाया जा सकता है। परन्तु खजूर के पिंड तथा छुहारा अत्यंत स्वास्थ्यवर्धक तथा प्रसिद्ध उत्पाद हैं। पूर्ण पके फलों से शर्करा, स्टार्च, सिरका, अर्क, रस, टाफियाँ, मदिरा इत्यादि अनेक उत्पाद बनाए जाते है। फलों की गुठली का उपयोग पशु, पक्षी, मत्स्य आहार बनाने के रूप में होता है तथा खजूर की पत्तियों से टोकरी, पखें, झाडू व रस्सी इत्यादि बनाने के काम में आती हैं।

पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर व जोधपुर क्षेत्र खजूर उत्पादन के लिए उपयुक्त माने जाते है। इन जिलों के अतिरिक्त चूरू, श्री गंगानगर, हनुमानगढ़ व नागौर जिलों के कुछ भाग, पंजाब में अबोहर, फाजिल्का, भंटिडा, हरियाणा में सिरसा, भिवानी, हिसार व गुजरात के कच्छ क्षेत्र में इसकी खेती की व्यापक संभावनाएं हैं। इसकी महत्वता को देखते हुए अभी विदेश से आयातित एवं देश मे विकसित उत्तक सवंर्धित पौधे शुष्क क्षेत्र के कई जिलों में लगभग 833 हेक्टेयर क्षेत्र में पौध रोपण किया गया है। जिनमें राजस्थान राज्य के बीकानेर जिले में लगभग 300 हेक्टेयर क्षेत्र में खजूर की बरही, मेडजूल, खुनैजी, जामली, सगाई व खलास किस्मों के पौधों का रोपण किया गया है, जिनमें फलत भी आरम्भ हो चुकी है। तमिलनाडू राज्य के कुछ क्षेत्र जैसे डिंडिगुल, रामनाथपुरम, धरमापुरी में खजूर का पौधे रोपण किया गया है जो फलत में है। गुजरात के कच्छ क्षेत्र में उत्तक संवर्धित अधिकतर बरही किस्म के पौधो का रोपण किया गया है जो फल उत्पादन अवस्था में हैं। देश के गुजरात राज्य मे खजूर का सबसे अधिक क्षेत्रफल लगभग 21000 हेक्टेयर है। वर्तमान समय भारत में खजूर फल की मांग के अनुसार पैदावर कम होने के कारण इसका आयात अरब देशों से किया जाता है वहीं विश्व में सबसे अधिक खजूर का उत्पादन करने वाला देश मिस्र है। देश में खजूर की अगेती, मध्यम तथा पछेती पकने वाली किस्में उपलब्ध हैं, जो ताजा फल खाने एवं फलोत्पाद बनाने के

भाकृअनुप. – केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर–334006

लिए प्रयुक्त की जाती है। खजूर की अधिकांश किस्में, सउदी अरब, ओमान, ईराक, इरान, मिस्र देशों से आयात की गई हैं।

jktLFkku e ftyokj [ktj dk {k=Qy ¼2020½

जिले	क्षेत्रफल (हेक्टेयर.)
बीकानेर	300
श्रीगंगानगर	170
हनुमानगढ़	130
बाड़मेर	205
नागौर	42
जौधपुर	37
पाली	22
जालोर	40
चुरु	14
झुंझुनू	12
सिरोही	13
जयपुर	1.5
कुल क्षेत्रफल	981

L=kr% ,Q-,-vk-] 2017

of'od ifj–';

खजूर का उत्पादन मुख्यतः खाड़ी देशों, मध्य पूर्वी तथा कुछ अफ्रीकी देशों में होता है। खजूर उत्पादन में 10 शीर्ष देशों के नाम तालिका में दिए गए हैं। एफ.ए.ओ. की वर्ष 2017 की रिपोर्ट के अनुसार ट्यूनिसिया का खजूर निर्यात में प्रथम स्थान है इसके पश्चात क्रमशः इजराइल, सऊदी अरब, यूनाइटेड अरब एमिरात तथा पाकिस्तान का स्थान आता है। आयात की दृष्टि से भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। इसके पश्चात क्रमशः मोरक्को, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका का स्थान है।

क्रम संख्या	खजूर उत्पादक देश	उत्पादन (टन)
1	मिश्र (इजिप्ट)	1542111
2	सऊदी अरेबिया	1,224,192
3	ईरान	1,202,200
4	अल्जीरिया	1,058,559
5	ईराक	618,818
6	पाकिस्तान	440,606
7	सूडान	439,355
8	ओमान	360,917
9	संयुक्त अरब अमीरात	344,714
10	ट्यूनिसिया	260,000
	विश्व का कुल उत्पादन	8,384,286

L=kr% ,Q-,-vk-] 2017

Hkkjr e [ktj dh ekx

भारत में खजूर की मांग वर्ष भर रहती है। परन्तु रामदान के महीने में इसकी मांग अत्यधिक बढ़ जाती है। खजूर आयात करने वाले देशों में भारत का प्रथम स्थान है। विश्व के कुल निर्यात का 18 प्रतिशत भारत में आयात किया जाता है। देश में लगभग 75 प्रतिशत खजूर पकिस्तान तथा इराक से आता है। भारत के दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, हैदराबाद, लखनऊ, बंगलौर, इत्यादि, शहर खजूर के लिए अच्छे बाजार हैं। भारत में खजूर के दो उत्पाद– पिंड खजूर तथा छुहारे को पसंद किया जाता है। दक्षिणी भारतीय राज्यों में पिंड खजूर तथा उत्तरी भारत में छुहारे की अधिक मांग होती है।

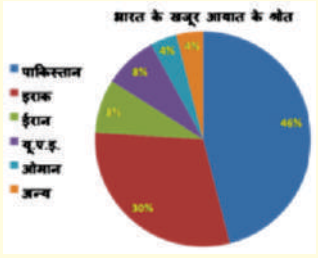

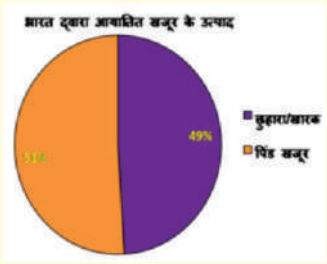

tyok;q

खजूर की खेती अधिक गर्मी, कम वर्षा तथा आर्द्रता वाले शुष्क क्षेत्रों में सरलता से की जा सकती है। खजूर के लिये कहावत है कि खजूर के पैर पानी में एवं सिर आग में हो, जब ही खजूर से अच्छी गुणवता के फल एवं क्षमता के अनुरुप उपज प्राप्त की जा सकती है। खजूर के फूलों एवं फलों के समुचित विकास के लिये गर्म एवं शुष्क जलवायु आवश्यक है। इसके पौधों में गर्मियां में 50 डिग्री सेल्सियस व सर्दियों में 5 डिग्री सेल्सियस से भी कम तापमान को सहन करने की क्षमता होती है। खजूर के फलों के पकने के लिये ऊष्मा उर्जा का संचयन 1950 से 3650 की आवश्यकता होती है। इन क्षेत्रों में फल डोका अवस्था तक पक पाते हैं, इसके बाद वर्षा प्रारम्भ हो जाने से फलों को इसी अवस्था में तुडाई की जाती है।

Hkfe

खजूर की खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है। लेकिन अच्छी गुणवता का उत्पादन लेने के लिये गहरी रेतीली दोमट मिट्टी, जिसका पीएच मान 7–8

एवं अच्छी जल निकास वाली उपयुक्त मानी जाती है। इसकी खेती 10 पीएच मान वाली जमीन में भी की जा सकती है, परन्तु उपज एव फल गुणवता अच्छी नही होती है। ध्यान रहे कि जमीन की 2 मीटर गहराई तक सख्त सतह नही होनी चाहिए।

ik/k ço/ku

खजूर का प्रवर्धन सकर्स (अंतःभूस्तारी), उत्तक संवर्धन एवं बीज द्वारा किया जा सकता है। वांछित किस्म के अच्छी गुणवत्ता वाले मादा मातृ वृक्षों के सकर्स (अंतःभूस्तारी) द्वारा नव विकसित पेड़ भी मातृ वृक्षों जैसी गुणवता वाले ही होंते है। इसी प्रकार उत्तक संवर्धन से तैयार पौधे भी मातृ वृक्ष के समान गुणवत्ता पूर्ण फल देते हैं। उत्तक संवर्धन से तैयार पौधों में रोपण के समय प्रर्याप्त जड़े होने के कारण बागान में आसानी से स्थापित हो जाते हैं तथा उत्तक संवर्धन से तैयार पौधों में चौथे वर्ष से फल आना शुरु हो जाते हैं। प्रारंभ के वर्षों में फलों की उपज कम होती है। वृक्षों की आयु में वृद्धि के साथ उपज में भी बढ़ोतरी होती जाती है। खजूर का प्रवर्धन बीज द्वारा भी होता है, लेकिन पौधों की छोटी अवस्था में नर व मादा की पहचान नही हो पाती है। इसलिये व्यवसायिक तौर पर बीजू पौधो से प्रवर्धन नही किया जाता है। बीजू पौधें में नर व मादा पौध लगभग 50 प्रतिशत अनुपात में होते है तथा देरी से फलन तथा उपज व गुणवता में भिन्नता होती है। बाग के किनारे बीजू पौधों की रोपाई का उपयोग फसल सुधार, किस्म चयन तथा पराग कण उत्पादन के लिए किया जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में खजूर के पौधों पर कम तापमान व पाला का प्रभाव नहीं देखा गया हैं।

[ktj dh ie[k fdLe:

भारत में विदेशों से आयातित 45 किस्मों का भाकृअनुप.– केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर एवं 35 किस्मों का स्वामी केशवानन्द कृषि विश्वविद्यालय के खजूर अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर, गुजरात के मुंद्रा (कच्छ), पंजाब में अबोहर, हरियाणा के हिसार में संग्रह, मूल्यांकन एव अनुरक्षण किया जा रहा है। इनमें से कुछ किस्में ताजा फलों के लिए तथा कुछ किस्में छुहारा बनाने के लिए उपयुक्त हैं। मुख्य किस्मों और उनके गुणों का वर्णन निम्न प्रकार से है।

1- gykoh% यह किस्म राजस्थान में खेती के लिये उपयुक्त मानी जाती है। फल डोका अवस्था में पीले, मीठे, औसत वजन 9.6 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 36 प्रतिशत होता है। किस्म की फल परिपक्वता अगेती हैं। औसत उपज 60–80 किग्रा. प्रति वृक्ष होता है। फल ताजा खाने एवं मूल्य संर्वधित उत्पाद बनाने के लिए प्रयोग होता है।

2. cjgh% इस किस्म का उत्पति स्थल ईराक में बसरा माना जाता है। फल डोका अवस्था में सुनहरे पीले रंग के मीठे एवं स्वादिष्ट होते हैं, जिसके के कारण अंतर्राष्ट्रीय बाजार में इस किस्म के फलों की मांग अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक होती है। औसत वजन 7.5 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 31.5 प्रतिशत होता है। फल जुलाई के अंत व अगस्त के प्रारम्भ से मध्य तक पकते हैं। उपज 80–100 किग्रा. प्रति वृक्ष है।

3- eMtwy% किस्म का उद्‌गम स्थल मोरक्को माना जाता है। विश्व में खजूर की सर्वश्रेष्ठ किस्म मानी जाती है। जिसका उपयोग छुहारे बनाने में ज्यादा किया जाता है। फल डोका अवस्था में पीला नांरगीपन लिए हुए, कसैले, बहुत बड़े एवं आकर्षक होते है। औसत वजन 15.7 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 34.5 प्रतिशत तथा फल देरी से पकते हैं। औसत उपज 70–80 किग्रा. प्रति वृक्ष है।

4- tkfgnh% फल डोका अवस्था में पीले एवं कसैले, काफी ठोस तथा उनका छिलका काफी चिकना एवं सख्त होता है। फल वर्षा होने पर आसानी से खराब नहीं होते हैं। पिंड अच्छे बनते हैं। औसत वजन 9.0 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 35.5 प्रतिशत होता हैं। फल देरी से पककर तैयार होते हैं। औसत उपज 100–125 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष।

5- [kykl% फल डोका अवस्था में पीले एवं मीठे औसत वजन 11.2 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 25 प्रतिशत तथा परिपक्वता की अवधि मघ्यम होती है। औसत उपज 75 किग्रा. प्रति वृक्ष।

6- [kuSth% फल डोका अवस्था में गहरा लाल, मीठे, गूदा कुरकुरा एवं स्वादिष्ट होता है। औसत वजन 10.2 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 43 प्रतिशत होता है। फल जल्दी पककर तैयार हो जाते हैं। औसत उपज 50–60 किग्रा. प्रति वृक्ष होती है।

7- [knjkoh% फल डोका अवस्था में पीला–हरापन लिए हुए कसैले, औसत वजन 12.9 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 36 प्रतिशत होती है। परिपक्वता अवधि मघ्यम होती है। डोका अवस्था व उसके बाद की अवस्था में फलों को वर्षा व अधिक वातावरणीय नमी से बहुत अधिक हानि होती है। छुहारा व पिंड खजूर के लिए उपयुक्त, वृक्ष बौना एवं औसत उपज 50–60 किग्रा प्रति वृक्ष होती है।

खजूर फलों की वृद्धि एवं विकास अत्यधिक गर्मी वाले अप्रैल–मई माह में होता है। इसके पश्चात जून–जुलाई में फल परिपक्व होकर किस्मानुसार तुड़ाई के लिए तैयार होते है। हमारे देश में अधिकांशतः फलों के गुच्छों को अधिकतर डोका (खलाल) अवस्था में ही वृक्षों से काट लिया जाता है। कम वर्षा वाले क्षेत्र में प्रायः डंग

अवस्था में कटाई की जाती है। जबकि अरब देशों में खजूर के फल पूर्ण परिपक्व (पिंड अथवा 'तमर') होने पर वृक्ष से काटकर उतारे जाते हैं। उन देशों की भूमध्य सागरीय जलवायु में वर्षा अक्टूबर–नवम्बर के बाद शुरु होती है अतः वृक्ष पर ही पूर्ण फल पकने की क्रिया पूरी होकर पिण्ड अवस्था (तमर) आ जाती है। जबकि भारत में फल पकने के समय (जुलाई माह) वर्षा प्रारंभ हो जाने से वृक्ष पर पूर्ण परिपक्वता प्राप्त करना संभव नहीं हो पाता हैं। कभी–कभी वर्षा देरी से होने पर जैसलमेर क्षेत्र में वृक्ष पर ही पिण्ड अवस्था आ जाती हैं। कुछ किस्मों के फल डोका अवस्था पर कसैले होते हैं। जिनका उपयोग मूल्य सवंर्धित उत्पाद बनाने में किया जाता है। वैसे भी डोका फल थोड़ा कठोर होने के कारण ताजे फल के रूप में अधिक मात्रा में नहीं खाये जा सकते हैं। फल गुणवत्ता तथा उपयोग के आधार पर किस्मों का वर्गीकरण निम्नांकित तालिका में दिया गया है।

mUur fdLe	vko';d vif{kr x.k	mi;kx
हलावी, बरही, खलास, खुनैजी, सेवी, ब्रेम, चिपचेप	डोका अवस्था में मिठास का होना।	ताजे फल खाने व उत्पाद बनाने के लिए
हलावी, जैहिदी, शामरान, खलास	फल तुड़ाई के समय पूर्ण डोका / डंग अवस्था में होंना।	पिण्ड खजूर बनाने के लिए
मेडजूल, खदरावी, दयारी	फलों में गूदे की मात्रा अधिक हो।	छुहारा के लिए
जगलूल, हयानी, अमसोक, ब्रेम, सदामी, सूरिया, अन्य स्थानीय किस्में	आकर्षक रंग, रसीला, महक वाले लाल पीले व हरे रंग के फल (सब्जी व अचार के लिए)	खजूर के पेय एवं परिरक्षित उत्पाद जैम, चटनी अचार बनाने के लिए

uj fdLe %

1. एल.एन.सी.टी (मदारसी)
2. घनामी

[kr dh r;kjh ,o jkikb

खजूर के पौध रोपण का सर्वोतम समय जुलाई –अगस्त का महीना माना जाता है। अपितु खजूर पौध रोपण के लिये अगस्त/सितम्बर माह भी उपयुक्त पाये गये है। खजूर के पौधों की रोपाई से पहले जून माह में 1 ग 1 ग 1 मीटर आकर के गढ़ढे 8 ग 8 की दूरी पर खोदना चाहिए। गड्डों को 20–30 दिनों तक खुल्ला छोड़ कर 20–25 किग्रा सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाकर भर देना चाहिए। पौध रोपण के समय पौधे के निचले भाग को दीमक से बचाने के लिये उपचारित करना चहिये। वैसे खजूर में पौधें से पौधे की दूरी दस मीटर तक रखी जा सकती है। जिससे पौधों का समुचित फैलाव तथा कतारों के बीच में की जाने वाले कृषि क्रियाएं आसानी से की जा सके। इस प्रकार एक हेक्टेयर खेत में लगभग 156 पौधें लगाये जा सकते हैं। खेत में परागण हेतु नर किस्मों के पौधों का होना अतिआवश्यक है इसके लिए बाग में लगभग 5 प्रतिशत नर पौधे अवश्य लगाये जाने चाहिए। पौधों की रोपाई, सिंचाई सुविधा होने पर फरवरी–मार्च माह में भी किया जा सकता है। नव रोपित पौधों का समय–समय पर सिंचाई, निराई गुड़ाई करने से पौधे अच्छे प्रकार से पनपते है।

[kkn ,o moZjd

खजूर के वृक्षों से उचित उपज एवं गुणवत्ता युक्त फल प्राप्त करने हेतु समुचित पोषण की अत्यधिक आवश्यकता होती है। इस हेतु पूर्ण फलत में आए हुए 10 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के वृक्षों को प्रति वर्ष भूमि में बने थालों में 1.5 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 0.75 कि.ग्रा. फास्फेट, 0.5 कि.ग्रा. पोटेशियम, 50–60 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद देना चाहिए । नाइट्रोजन हेतु यूरिया, फॉस्फोरस हेतु सिंगल सुपर फास्फेट, पोटेशियम हेतु म्यूरेट आफ पोटाश प्रयोग में लाया जा सकता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं अन्य उर्वरकों, गोबर की खाद एवं कल्चर मिश्रण की पूरी मात्रा अक्टूबर–नवम्बर माह में देनी चाहिए, तथा शेष नाइट्रोजन की आधी मात्रा फरवरी/मार्च के महीने में देनी चाहिए । उर्वरक एवं गोबर की खाद मुख्य तने से 1–1.5 मीटर दूरी पर 30 सेमी. गहरी खाई खोदकर मिट्टी में मिलाकर देनी चाहिए।

fl apkbZ

खजूर के वृक्षों की समय–समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। सर्दियों में सप्ताह में 1 बार तथा गर्मियों में सप्ताह में 2 बार सिंचाई करनी चाहिए। पुष्पन से 15 दिन पहले सिंचाई बहुत आवश्यक है तथा फल बनने से फल पकने तक नियमित रूप से सिंचाई ड्रिप प्रणाली द्वारा करनी चाहिए अन्यथा फलों के आकार, वजन एवं गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पोलिथिन अथवा पलवार (मल्च)

बिछाने से भूमि में मृदा नमी संरक्षण के साथ–साथ फलों की गुणवत्ता में सुधार देखा गया है।

i jkx.k

उत्पादन की दृष्टि से खजूर में परागण अतिमहत्वपूर्ण कार्य है। खजूर में नर तथा मादा पुष्प भिन्न–भिन्न पौधों पर लगते हैं तथा नर व मादा पुष्प अलग–अलग समय पर परिपक्व होते हैं, जिसके कारण खजूर में प्राकृतिक परागण संभव नही हो पाता है। इसलिए गुणवत्ता पूर्ण फलों के उत्पादन हेतु कृत्रिम परागण करना परम आवश्यक होता है। पौधों में फरवरी – मार्च में नर व मादा पुष्पगुच्छ अलग–अलग पौधों पर आते हैं। परागकण के लिए नर किस्म जैसे घनामी, एल इन सिटी (मदारसी) या बीजू नर पौधे बाग में लगभग पांच प्रतिशत होने चाहिए। नर पुष्प मादा पुष्प से पहले परिपक्व होते हैं, इसलिए नर पुष्प से परागकण एकत्रित कर लिये जाते हैं।

i jkx.k dl l dj

कृत्रिम परागण मादा पौधे के स्पेथ खुलने के पश्चात किया जाता है। मादा पुष्प खुलने से 24 घंटे तक परागण किया जा सकता है। इसके लिए परागकणों को रूई के फाहों की सहायता से मादा पुष्प क्रमों पर पुष्पों के खिलने के तुरन्त पश्चात प्रातःकाल छिडक कर अथवा नर पुष्प क्रमों की लड़ियां को मादा के खुले पुष्पक्रम के साथ उल्टा बांध कर किया जाता है। स्पेथ को लिफाफे से ढक भी सकते हैं। इस प्रकार धीरे–धीरे परागकण मादा पुष्पक्रम पर गिरते रहते हैं, जिससे परागण होता है। परागणों का छिड़काव मादा पौधे का स्पैथ खिलने पर एक दो दिन के अंदर अवश्य करना चाहिये।

o{kk dh l/kkbZ ,o dkV&NkV

खजूर के पौधो में प्रायः सधाई की आवश्यकता नहीं होती है। इसमें तना सीधा बढ़ता है तथा शाखाएं भी नहीं निकलती हैं। समय–समय पर आवश्यकतानुसार पुरानी अथवा सूखी, रोग व कीट ग्रसित पत्तियों को काटकर निकालते रहना चाहिए। पुरानी पत्तियों में प्रकाश संशलेषण क्षमता कम हो जाती है। अच्छी फलत हेतु एक वृक्ष पर लगभग 80–100 पत्तियां होनी चाहिए। जैसे –जैसे पौधे की आयु बढ़ती है, मुख्य तने से निचली पत्तियां काट देनी चाहिए, जिससे कि उद्यान में विभिन्न अन्तःसस्य क्रियाओं में बाधा न हो। पत्तियों की कटाई, फलों की तुडाई के पश्चात अक्टूबर तक करनी चाहिये। पत्तियों की कटाई के अलावा वृक्ष के समुचित विकास हेतु उसमें से निकलने वाले अन्तः भूस्तारी (सकर्स) को पूर्ण रूप से विकसित होने के पश्चात निकालकर नये उद्यान विकसित करने में उपयोग करना चाहिए। ऐसा करने से खजूर का वृक्ष उनके द्वारा लिए अतिरिक्त आवश्यक तत्वों के पोषण से मुक्त हो जाता है। खजूर में पुष्प गुच्छों के विकसित होने के पश्चात पत्तियों के डठलों से कांटे निकालना आवश्यक है इससे उनके आस–पास के विभिन्न कार्य जैसे परागण, फल गुच्छों की छटाई, डंठल मोडना, छिड़काव, थेलियां लगाना, फल कटाई इत्यादि सुगमता की जा सके।

vUr% Qly mxkuk

खजूर के पौधों के कतारों के बीच में दलहनी/तिलहनी, मसाला, फूल, सब्जियां इत्यादि उगाई जा सकती है। शुष्क क्षेत्र में वर्षा आधारित फसलें जैसे ग्वार, मोठ, आदि, उगाकर भूमि कि उर्वरकता बढाने के साथ ही अतिरिक्त आय भी प्राप्त की जा सकती है।

dhV ,o 0;kf/k fu;U=.k

खजूर के वृक्षों को दीमक, स्केल कीट, इत्यादि से हानि पहुंचती है। स्केल कीट पत्तियों का रस चूसकर हानि पुहंचाते हैं। इनके नियंत्रण हेतु अधिक प्रभावित पत्तियों को काट कर हटा देना चाहिए तथा डाई मिथोएट 1.5 मि.ली. प्रति लीटर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। दीमक के नियन्त्रण हेतु इमिडाक्लोरोपिड एव फिपरोनिल 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से थालों में देना चाहिए। फल पकने के समय गिलहरी, तोता, मैना, बुलबुल, इत्यादि पक्षी बहुत हानि पहुंचाते हैं। इनके नियन्त्रण हेतु फल गुच्छों को डोका अवस्था प्रारम्भ होने पर लोहे से बनी 3 ग 3 मिली मीटर छेद वाली जलियों, ग्रो–कवर /नेट अथवा प्लास्टिक की थैलियों से ढककर नुकसान को कम किया जा सकता है।

बीमारियों में, ग्रेफियोला लीफ स्पाट या स्मट बीमारी अधिक आर्द्रता वाली स्थिति उत्पन्न होने पर होती है। पत्तियों के दोनों सतह पर अंसख्य भूरे रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं तथा धीरे–धीरे पत्तियां सूख जाती है। प्रभावित पत्तियों को काट कर नष्ट कर देना चाहिए तथा कापर आक्सी क्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का 2–3 छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

Qyk dh rqMkbZ ,o mit

खजूर फल वृक्ष को पूर्णफलत में आने में 5–6 वर्ष का समय लग जाता हैं। इसके पौधों से 40–50 वर्षों से अधिक समय तक उत्पादन लिया जा सकता है। खजूर के फल पूर्ण डोका अवस्था अथवा उसके पश्चात तुड़ाई योग्य होते हैं। जब पूरा गुच्छा परिपक्व हो जाता है तो उसे डंठल समेत काट लिया जाता है। अपरिपक्व फल तुड़ाई के पश्चात नहीं पकते हैं। पूर्ण रूप से फलत में आए वृक्ष से (10 वर्ष अथवा अधिक आयु) औसत प्रति वृक्ष /वर्ष 60–120 किग्रा. ताजे फलों की उपज प्राप्त की जा सकती

है। उपज की मात्रा व गुणवत्ता किस्म, जलवायु तथा बाग–प्रबधंन पर निर्भर करती है।

तुड़ाई का समय फलों की उपयुक्तता पर निर्भर करता है। वे किस्में जिनके फल ताजा उपयोग के लिए उपयुक्त होते हैं, उनकी तुड़ाई डोका अवस्था पर की जाती है। यह अवस्था फल लगने के 100–105 दिन के पश्चात आती है। पिंड के लिए उपयुक्त किस्मों की तुड़ाई डंग अवस्था पर की जाती है। यह अवस्था फल लगने के 120–135 दिन उपरांत आती है। छुहारे के लिए उपयुक्त किस्मों की तुड़ाई भी डोका अवस्था पर ही की जाती है ।

Qyk dk eY; lo/ku

खजूर के फलों से जैम, स्क्वैश, आर.टी.एस, चटनी, पिंड एवं छुहारा, इत्यादि मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाये जा सकते हैं। डोका फल के गूदे से स्वादिष्ट चटनी, जैम, स्क्वैस (पेय) अचार, आदि परिरक्षित पदार्थ तैयार कर अधिक समय तक भण्डारित कर रख सकते हैं। डोका फल दो–तीन दिन में ही अधिक नमी के कारण खराब होने लगते हैं। शर्करा की अधिक मात्रा होने के कारण पिण्ड खजूर और छुहारा को लम्बे समय तक सुरक्षित रख कर उपयोग में लाया जाता है। खजूर के फलों से मदिरा भी बनाई जाती है। फल गूदे को सूखाकर इससे बेकरी उत्पाद, स्वादिष्ट एवं पौष्टिक बिस्कुट भी बनाए जा सकते हैं। इस प्रकार उन्नत तकनीक से खजूर की खेती कर बागवानी विकास, पर्यावरण संरक्षण के साथ ही अच्छा लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

भाषा की सरलता, सहजता और शालीनता अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करती है, हिन्दी ने इन पहलुओं को खूबसूरती से समाहित किया है।

– नरेन्द्र मोदी माननीय प्रधानमंत्री

बेर एवं सेब फल की तुलनात्मक विशेषतायें

ih- ,y- ljkt ,oa dey'k dekj

फल हमारे आसपास के स्थान की सुंदरता बढ़ाने, भू–क्षरण रोकने, भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने, प्रति इकाई अधिक उपज लेने, अधिक आमदनी, प्रदूषण दूर करने, मानव रोजगार सृजित करने के अतिरिक्त स्वास्थ्य लाभ एवं औषधीय गुणों हेतु तथा अन्य महत्वपूर्ण लाभों के लिए उगाये जाते हैं। वैसे तो सभी फल महत्वपूर्ण हैं किंतु यहाँ हम जिन दो फलों के महत्व का तुलनात्मक वर्णन कर रहे हैं, वो बेर एवं सेब हैं। भारत में बेर की खेती बहुत प्राचीन काल से ही होती चली आ रही है। इसका एक उदाहरण अपने देश के महानतम ग्रंथ 'रामचरितमानस' में वर्णित मिलता है कि जब श्री राम सबरी माता के आश्रम में पहुँचे तो भक्त सबरी ने उन्हें चख–चख कर अनेकों किस्मों के मीठे बेर फल खिलाकर उनका स्वागत किया था। इसीलिए माता सबरी को विश्व का प्रथम फल प्रजनक (फ्रूट ब्रीडर) कहा जाता है। इसी प्रकार 'बाइबिल' में सेब के पुरातन होने का वर्णन मिलता है, उत्पत्ति की पुस्तक में ईडन में हव्वा ने आदम को सेब फल अपने साथ बांटकर खाने के लिए सहमत किया था। उत्पत्ति की पुस्तक में सेब फल को 'अच्छे और बुरे के ज्ञान का वृक्ष' कहा जाता है। अतः यह कहा जा सकता है की दोनों फलों की खेती बहुत प्राचीन काल से होती आ रही है और यह इस बात को प्रमाणित करता है कि इनमें बहुत से औषधीय एवं स्वास्थ्य संबंधी गुण पाए जाते हैं। एक तरफ बेर के महत्व को दर्शाते हुये इसे 'शुष्क क्षेत्रीय फलों का राजा' कहा जाता है। यह आय का एक अच्छा स्रोत है, कम लागत पर पोषण प्रदान करता है। गरीब लोगों की आर्थिक स्थिति के अनुसार आसानी से कम लागत में बेर बागवानी की जा सकती है और इसलिए बेर 'गरीबों का फल' के रूप में जाना जाता है। वहीं दूसरी ओर सेब के विषय में मनुष्य पर स्वास्थ्य लाभ पर एक कहावत है कि 'प्रतिदिन एक सेब खाने से चिकित्सक की आवश्यकता नहीं पड़ती' क्योंकि सेब में खनिज तत्व व विटामिन्स प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। बेर को बहुउद्देशीय पौधा माना जाता है। हालांकि इसका उपयोग अधिकतर ताजे फल के रूप में ही किया जाता है। फल उपयोग के अतिरिक्त, बेर कृषि–वानिकी के रूप में बखूबी उपयोग हो रहा है।

बेर की खेती अनेकों जलवायु क्षेत्रों जैसे उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय, शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल आदि) में सफलतापूर्वक की जा सकती है। बेर अलग–अलग जलवायु परिस्थितियों में समुद्र स्तर से 1000 मीटर तक की ऊंचाई में अच्छी तरह से उगाया जा सकता है, हालांकि यह 600 मीटर से नीचे की ऊंचाई में सबसे अच्छा उत्पादन देता है। इसे 1500 मीटर की ऊंचाई तक भी उगाया जा सकता है। बेर अत्यधिक तापमान का सामना कर सकने के लिए अनुकूलित होते हैं और अधिकतम तापमान 39 से 42 डिग्री सेल्सियस वाले क्षेत्रों में बहुतायत में पाए जाते हैं तथा 49–50 डिग्री सेल्सियस तक उच्च तापमान को सहन कर सकता है। यद्धपि, 35 डिग्री सेल्सियस से ऊपर के तापमान होने पर फलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पेड़ अत्यधिक गर्म ग्रीष्मकाल के दौरान पत्तियों को गिरा देता है और सुप्तावस्था में चला जाता है। व्यावसायिक बेर बगीचे न्यूनतम 4 से 12 डिग्री सेल्सियस वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इन क्षेत्रों में कभी–कभी कुछ समय के लिए तापमान 2–3 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है।, यद्धपि, इससे नई टहनियाँ एवं फल बुरी तरह से प्रभावित होते हैं। प्राक्रतिक रूप से बेर उपोष्णकटिबंधीय और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में जहाँ 400 मिमी से अधिक वार्षिक वर्षा होती है, अच्छी तरह से उत्पादन देते हैं। कम वर्षा वाले शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में कुछ सिंचाई का प्रबंधन करने की आवश्यकता होती है। इन क्षेत्रों मे आर्द्र क्षेत्रों की अपेक्षा उच्च वायुमंडलीय वाष्प दबाव की स्थितियां होने से अधिक गुणवत्ता वाले (मीठे और बड़े आकार के) फलों का उत्पादन होता है साथ ही साथ कीटों और बीमारियों का प्रकोप भी इन क्षेत्रों में कम होता है।

सामान्य रूप से सेब को केवल समशीतोष्ण क्षेत्रों (जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड की पहाड़ियों पर तथा एक सीमा तक अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, पंजाब एवं सिक्किम) में ही उगाया जा सकता है तथा सेब की बागवानी उन्हीं ठण्डे क्षेत्रों में सम्भव है जहां शीत ऋतु में लगभग 7^{0} सेल्सियस या इससे कम तापमान 600 से 1000 घण्टे तक रहता हो और पौधे की वृद्धि के समय तापक्रम 21 से 24^{0} सेल्सियस के आस पास रहता

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

हो। ऐसे क्षेत्र समुद्रतल से 1000 से 2700 मीटर ऊँचाई तक स्थित होते हैं। सेब के अच्छे उत्पादन के लिए औसतन 100 से 125 सेमी. वार्षिक वर्षा उपयुक्त होती है, जो सालभर एक समान रूप से वितरित होनी आवश्यक है। ऐसे क्षेत्र जहां तीव्र गति से हवाएं चलती हों, सेब उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। हवा के कारण सेब का पौध एक तरफ झुक जाता है और एक समान वृद्धि नहीं हो पाती है। फूल खिलने के समय शुष्क तथा तेज हवाएं फूलों को हानि पहुँचाती हैं और मधुमक्खियों की परागण गतिविधि में भी बाधा डालती हैं, जिससे उत्पादन में भारी कमी हो जाती है। सेब उत्पादन के लिए बसंत ऋतु में पाला, ठण्ड या ओला पड़ने वाले स्थान भी उपयुक्त नहीं होते हैं। फूल आने के बाद यदि तापमान –2.2° सेल्सियस से नीचे चला जाता है तो फूल मर जाते हैं। परागण क्रिया और फल बनने के लिए 21.1 से 26.7° सेल्सियस तापमान का होना वांछनीय होता है।

पोषक तत्वों में बेर गूदे को व्यापक रूप से समृद्ध पाया जाता है। सेब की तुलना में बेर में प्रोटीन (1.03–1.18 प्रतिशत), फास्फोरस (0.01–0.02 प्रतिशत), कैल्शियम (0.03–0.04 प्रतिशत), कैरोटीन (75–80 मिग्रा) और विटामिन सी (70–165 मिग्रा) अधिक होता है। फास्फोरस, लोहा (0.5–1.0 मिग्रा), विटामिन सी, कार्बोहाइड्रेट और कैलोरी मान संतरे से अधिक होता है। बेर के पके फल के प्रति 100 ग्राम गूदे से 20.9 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट 12.8–13.6 प्रतिशत पाया जाता है जिसमें से 5.6 प्रतिशत सुक्रोज, 1.5 प्रतिशत ग्लूकोज, 2.1 प्रतिशत फ्रुक्टोज और 1 प्रतिशत स्टार्च होता है। गूदे में विटामिन ए लगभग 70 आइ.यू./100 ग्राम, कैरोटीन की मात्रा 75 से 80 मिलीग्राम/100 ग्राम से अधिक और कुल शर्करा 5.40–12.40 प्रतिशत होती है। बेर के गूदे को विटामिन सी, थायमिन और राइबोफ्लेविन, विटामिन पी (बायोफ्लेवोनॉइड) का एक समृद्ध स्रोत माना जाता है। प्रति 100 ग्राम गूदे से 70–165 मिलीग्राम विटामिन सी मिलती है। एफएओ और डब्ल्यूएचओ की विटामिन सी संस्तुति अनुसार एक वयस्क के लिए 30 मिलीग्राम विटामिन सी की दैनिक आवश्यकता होती है, जो आहार में बेर के महत्व को दर्शाता है। एक वयस्क व्यक्ति का विटामिन सी और विटामिन बी कॉम्प्लेक्स की आवश्यकता आहार में प्रति दिन एक बेर फल के खाने से पूर्ति हो जाती है, जो कि एफ.ए.ओ./डब्ल्यू.एच.ओ. द्वारा अनुशंसित है। विटामिन पी में जीवाणुरोधी, सूजनरोधी और एंटीऑक्सीडेंट के गुण होते हैं और इसको पित्त उत्पादन को प्रोत्साहित करने, परिसंचरण को बढ़ावा देने और एलर्जी को रोकने लिए जाना जाता है। इसके अतिरिक्त बेर गूदे में अमीनो अम्लों में, ऐस्परेजिन, एसपारटिक अम्ल, ग्लाइसिन, ग्लूटामिक अम्ल, सेरीन एवं थ्रेओनिन आदि पाये जाते हैं। इसी प्रकार सेब से 52 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रति 100 ग्राम गूदे से प्राप्त होती है। कार्बोहाइड्रेट 13.81 ग्राम, प्रोटीन 0.26 ग्राम, रेशा 2.4 ग्राम और शर्करा 10.39 ग्राम पायी जाती है। गूदे में विटामिन ए लगभग 54 आइ.यू., विटामिन सी 4.6 मिलीग्राम/100, थायमिन 0.01 मिग्रा., राइबोफ्लेविन 0.02 मिग्रा. विटामिन ई 0.18 मिग्रा. व विटामिन के 2.20 मिग्रा होती है।

हालांकि बेर पौधे के विभिन्न भागों का औषधीय महत्व है लेकिन फल तथा फल से बने विभिन्न उत्पाद ही अधिकतर उपयोग में लिए जाते हैं। बेर से दो व्यावसायिक उत्पाद 'जोशंदा टॉनिक' एवं 'बेर कुटा' भी बनाए जाते हैं, जिनमें 'जोशंदा टॉनिक' पुरुष, स्त्री व बच्चों में अनेक प्रकार के रोग तथा बीमारियों के उपचार में उपयोगी पाया गया है, जबकि 'बेर कुटा' हड्डियों को मजबूती देने में, कब्ज में, दिमाग शांत रखने, बेहतर नींद में सहायक, आंख दर्द को कम करने तथा रक्त चाप नियंत्रण, इत्यादि में लाभकारी होने के साथ ही साथ मानव स्वास्थ्य के लिए बेहद लाभकारी होता है। आयुर्वेद के अनुसार बेर की जड़ कड़वी और शीतल होती है, जो खांसी, पित्त और सिरदर्द को ठीक करने में काम आती है। तने की छाल फोड़े को ठीक करती है और पेचिश, दस्त के इलाज के लिए अच्छी होती है। बेर की पत्तियां ज्वरनाशक तथा मोटापा कम करने में सहायक होती हैं। फल ठंडा, सुपाच्य, टॉनिक, कामोत्तेजक, रेचक, पित्त, जलन, प्यास, वमन को दूर करने और तपेदिक एवं रक्त सम्बंधी विकार के इलाज में भी लाभदायक होता है। बीज नेत्र रोगों को ठीक करने और प्रदर रोग में भी उपयोगी पाये गये हैं। इसके अतिरिक्त बेर के बहुउद्देशीय होने के कारण इससे अनेकों प्रकार से मनुष्य, पशुओं, भूमि तथा पर्यावरण को लाभ मिलता है और इसीलिए इसको 'पाँच एफ' (फूड, फॉडर, फाइबर, फ्यूल, फेंसिंग) पौधे के श्रेणी में गिना जाता है। स्थानीय लोगों द्वारा बेर फलों को ताजे व सुखाकर अनेक रूपों में उपयोग में लिया जाता है। पत्तियों को पशु–चारे के रूप में लेते हैं। भेड़–बकरी इसकी पत्तियों को बड़े चाव से खाती हैं। इसकी लकड़ी ईंधन के साथ–साथ कृषि उपकरण बनाने, चारपाई के पाये बनाने, नाव बनाने, घर की छत के पोल बनाने, हत्थे बनाने, गोल्फ क्लब में, घरेलू बर्तन बनाने, खिलौने और सामान्य शिल्प कार्य के रूप में उपयोग होती है। इसके पौधे पर लाख कीट पालन, मधुमक्खी पालन एवं रेशम कीट पालन किया जाता है जिससे अतिरिक्त आमदनी प्राप्त होती है।

सेब के सेवन के भी अनेकों मानव स्वास्थ्य लाभ पाए गये हैं। जब भी स्वास्थ्य के लिए फल की बात होती है, तो सर्वप्रथम सेब का नाम आता है, क्योंकि इसमें लगभग

वह सभी पौष्टिक तत्व उपलब्ध होते हैं जो हमारे संपूर्ण स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माने जाते हैं। अधिकतर सेब को ताजे फल के रूप में खाया जाता है। इसके अतिरिक्त सेब से भी अनेकों मूल्य–संवर्धित पदार्थ (ऐपल साइडर, जैम, जैली, चटनी तथा जूस आदि) बनाये जाते हैं जिनमें 'ऐपल साइडर' एवं 'जूस' व्यावसायिक स्तर पर तैयार किये जाते हैं। सेब दांत मजबूत करनें, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, मोटापा व वजन ठीक करने, कैंसर ठीक करने, मधुमेह, कोलेस्टराल कम करने, अस्थमा, अल्जाइमर, आंत से जुड़ी समस्याओं, स्वस्थ्य लीवर के लिये, बेहतर पाचन शक्ति में, आँखों की रोशनी बेहतर करने, ह्रदय रोग, रक्त परिसंचरण में, हड्डियों को मजबूत करने, त्वचा को स्वस्थ्य रखने, मुहांसों व चेहरे के धब्बे हटाने, बालों को सुन्दर व मजबूत बनाने, रूसी दूर करने, इत्यादि में लाभप्रद होता है।

बेर के बगीचे से 20–25 वर्षों तक आर्थिकरूप से फलत प्राप्त होती रहती है। वैज्ञानिक खेती करने पर यह 80–100 क्विंटल/हेक्टेयर तक उपज दे देता है, जिसे तुड़ाई उपरांत बाजार में 20–25 रुपये प्रति किलोग्राम के हिसाब से बेचकर 80000 से 100000/ हेक्टेयर रुपये खर्चा निकालकर 1: 1.75 लागत–लाभ अनुपात के हिसाब से शुद्ध लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

बेर में रोग तथा कीट जो आर्थिक नुकसान पहुँचाते हैं इस प्रकार हैं– फल मक्खी, स्टोन वीविल और चुर्निल आसिता इत्यादि, इसी प्रकार सेब भी बेर की तुलना में अधिक वर्षों तक व्यावसायिक फलत (35–40 वर्षों तक) देता है जिसे 40–50 रुपये/किग्रा. बाजार मूल्य में प्रति वर्ष 3.0–3.5 लाख / हेक्टेयर शुद्ध लाभ लिया जा सकता है।

सेब को अनेक प्रकार के रोग तथा कीट नुकसान पहुँचाते हैं, जिनमें ऊनी एफिड, स्केल, स्कैब, अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग प्रमुख हैं। इनके रोकथाम हेतु काफी मात्रा में रोग एवं कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है, जिससे सेब की खेती में लागत अधिक हो जाती है। जबकि बेर को कम से कम लागत में एक साधारण किसान किसी भी जलवायु में सरलता से उगा सकता है।

cj ,oa lsc Qy dk rqyukRed fooj.k

क्र. सं.	तुलना का आधार	बेर	सेब
1	जलवायु क्षेत्र	उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय, शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि)	केवल समशीतोष्ण क्षेत्र (जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड)
2	बगीचे का व्यावसायिक जीवन काल	20–25 वर्षों तक	35–40 वर्षों तक
3	औसत बाजार मूल्य/ किग्रा. फल	20–25 रुपये/किग्रा.	40–50 रु./ किग्रा.
4	उपज (क्विंटल/हेक्टेयर)	80–100	100–150
5	शुद्ध लाभ/ हेक्टेयर	0.80–1.00 लाख	3.0–3.5 लाख
6	लागत–लाभ अनुपात	1 : 1.75	1 : 3.0
7	मूल्य संवर्धित उत्पाद	जोसंदा टॉनिक, बेर कुटा, अचार, चूरन, जैम, जेली, केक, इत्यादि	एप्पल साइडर, जूस, जैम, जेली, और चटनी, आदि
8	आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण कीट और रोग	फल मक्खी, स्टोन वीविल और चूर्णी फफूंद	ऊली एफिड, स्केल, स्कैब, अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग

मरुधरा के कल्पवृक्ष खेजड़ी की उपयोगिता

iou fl g xt j vkj dey 'k dekj]

çLrkouk

भारत का थार रेगिस्तान कम और अनिश्चित वर्षा, उच्च वाष्पोत्सर्जन दर, कम सापेक्षिक आर्द्रता, सूखा, दैनिक और वार्षिक तापमान की चरम सीमा, तीव्र वायु की गति, हल्की बनावट की बलुई मृदा और कम उर्वरा शक्ति इत्यादि, के लिए जाना जाता है। लोगों को इस प्रकार की स्थितियों में जीवित रहना है तो उनकी फसलों को ऐसी कठोर आपदाओं का सामना करने वाली होनी चाहिए। थार रेगिस्तान की शुष्क फसलों में, खेजड़ी को इसके अनोखे अनुकूलन की विशेषताओं के कारण उपरोक्त कठोर पारिस्थितिक स्थितियों के लिए लचीलापन प्रदान करने के लिये जाना जाता है। इसमें सूखारोधी गुण होने के साथ ही साथ गर्मियों में उच्च तापक्रम एवं सर्दियों में पड़ने वाले पाले को आसानी से सहन कर सकने की क्षमता होती है। खेजड़ी सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय एवं पौष्टिक रूप से बहुत ही महत्वपूर्ण वृक्ष है। खेजड़ी एक बहुउपयोगी वृक्ष है क्योंकि इसका प्रत्येक भाग किसी न किसी रूप में उपयोगी होता है।

यह वृक्ष ग्रामीण लोगों की अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करता है क्योंकि इसकी सांगरी से सब्जी व अचार, पत्तियों से पशु चारा, लकड़ी से फर्नीचर तथा ईंधन एवं लगभग सभी भागों का औषधीय रूप में महत्व होता है। अतः इन्हीं गुणों के कारण इसको 'कल्पतरू' व 'रेगिस्तान का राजा' कहा जाता हैप् यह थार मरुस्थल के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी पाया जाता है। इसको अलग–अलग अन्य स्थानों पर अनेक नामों से जाना जाता है जैसे ' खेजड़ी', 'जांट/जांटी', 'सांगरी', 'राजस्थान का कल्प वृक्ष', 'राज्य वृक्ष', 'थार रेगिस्तान का जीवन रक्षक पेड़' (राजस्थान), 'जंड' (पंजाब व हरियाणा), 'कांडी' (सिंध), 'छोंकरा' (उत्तर प्रदेश), 'बनी' (कर्नाटक) 'वण्णि' या 'बन्नी' (तमिलनाडु), 'शमी', 'सुमरी' (गुजराती) इत्यादि। इस वृक्ष की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह गर्मियों के दिनों में भी हरा–भरा होने के साथ–साथ अप्रैल–मई महीने में उच्च गुणवत्ता की सांगरी भी देता है जिनका ताजी तथा सुखाकर अनेक प्रकार से उपयोग होता है। एक जनश्रुति के अनुसार सन 1899 में जब अकाल पड़ा था, जिसको 'छपनिया अकाल' कहा जाता है, उस समय रेगिस्तान के लोग इस पेड़ के तनों के छिलके खाकर जिन्दा रहे थे। रेगिस्तान में जब खाने को कुछ नहीं होता, तब खेजड़ी चारा देता है, जो 'लूंग' (लूम) कहलाता है। इसका फूल 'मींझर' तथा फल 'सांगरी' कहलाता है।

[kt Mh dh 'k"d {k=k e mi;kfxrk% खेजड़ी एक बहुउपयोगी वृक्ष हैं इसकी पारिस्थितिकी, सामाजिक, पोषण एवं आर्थिक उपयोगिता है।

ikfjfLFkfrdh dh mi;kfxrk% खेजड़ी एक नत्रजन स्थरीकरण करने वाला वृक्ष है जिससे मृदा की उर्वरता उन्नत होती है तथा वर्षा आधारित फसलें जैसे बाजरा, ज्वार, मूंग, ग्वार इत्यादि की पैदावार अच्छी होती है। खेजड़ी को खेत की मेड पर लगाने से वायु अवरोधक का कार्य करता है तथा यह फसलों को रेगिस्तानी गर्म हवाओं से बचाता है। यह पत्तियां गिराकर मृदा में कार्बनिक जीवांश भी बढाता है जिसके कारण मृदा की संरचना तथा बनावट में सुधार होता है। खेजड़ी का गोल तथा घना छत्रक पशुओं तथा रेगिस्तानी जंगली जीव जंतुओं को छाया तथा आश्रय प्रदान करता है। पुष्पन काल के दौरान मधुमक्खी तथा अन्य कीड़ों को आश्रय देता है। खेजड़ी वृक्ष वायु अपरदन रोकता है तथा रेतीले टिब्बों का स्थरीकरण करने में सहायक होता है।

ik"k.k mi;kfxrk% खेजड़ी की अपरिपक्व हरी फली को सांगरी कहते हैं। सांगरी प्रोटीन, रेशा, एंटी ऑक्सीडेंट, एलकेलोइड्स, सैपोनिन, फेनोल्स, खनिज तत्व तथा टैनिन का अच्छा स्त्रोत होता है। सैपोनिन शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है तथा कोलेस्ट्रॉल की मात्रा और आंत के कैंसर के जोखिम को कम करता है। खेजड़ी की पकी व सूखी फली को खोखा कहते हैं। खोखा को पीसकर आटा बनाया जाता है जिससे विभिन्न प्रकार के उत्पाद जैसे ब्रेड, केक, कुकी तथा गेहूं आटा के साथ मिलाकर रोटी भी बनाई जाती है। खोखा के आटे में अपरिष्कृत प्रोटीन, रेशा प्रचुर मात्रा में तथा कुल कार्बोहायड्रेट व वसा कम मात्रा में होती है इसके अलावा मुक्त पोलिफेनोल व कैरोटीनोइड्स प्रचुर होते है। खोखा का आटा ग्लूटेन मुक्त होता है एवं कैल्शियम, मैग्नेशियम, जिंक और लोहा का अच्छा श्रोत होता है इसके अलावा लाइसीन एमिनो अम्ल की मात्रा भी गेहूं के आटे की तुलना में अधिक होती है। खोखा तथा गेहूं

भाकृअनुप.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर

के आटे के पोषण मूल्य का तुलनात्मक विवरण तालिका में दिया गया है।

क्र.सं.	पोषक तत्व	खोखा आटा	गेहूं आटा
1.	ऊर्जा (किलो कैलोरी प्रति 100 ग्राम)	361	338
2.	कार्बोहायड्रेट (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	69.2	72.2
3.	कुल शर्करा (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	13.0	1.5
4.	रेशा (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	47.8	3.2
5.	प्रोटीन (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	16.2	9.4
6.	वसा (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	2.12	1.3
7	संत्रप्त वसा अम्ल (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	0.6	0.2

खेजड़ी की पत्ती जिसे लूँग भी कहते हैं, तथा हरी फली पशुओं के लिए पोषण युक्त चारे के रूप में काम आती है। लूँग सुपाच्य व पोषण युक्त चारा है जिसमें 12.1 प्रतिशत अपरिस्कृत प्रोटीन एवं 20.1 प्रतिशत अपरिष्कृत रेशा होता है। लूँग ऊंट, भेड़, बकरी तथा अन्य दुधारू पशुओं के लिये भीषण गर्मी में हरे चारे के रूप में उपयोग होता है।

vkfFkd mi;ksfxrk% खेजड़ी की अपरिपक्व हरी फली सांगरी के नाम से जानी जाती है। यह सब्जी तथा अचार बनाने के उपयोग में ली जाती है। इसका बाजार मूल्य 70–100 प्रति किलो मिलता है। गैर मौसम उपयोग के लिए सांगरी को सुखाकर भंडारित किया जाता है सूखी सांगरी का बाजार में उच्च मूल्य 500–800 प्रति किलो प्राप्त होता है। सूखी सांगरी विश्व प्रसिद्ध राजस्थानी व्यंजन पंचकुटा का मुख्या घटक है। खेजड़ी की पकी व सूखी फली को खोखा कहते है। खोखा को पीसकर आटा बनाया जाता है, जिससे विभिन्न प्रकार के उत्पाद जैसे ब्रेड, केक, कुकी तथा गेहूं आटा के साथ मिलाकर रोटी भी बनाई जाती है। सूखी सांगरी का बाजार मूल्य तथा बाजार में मांग हमेशा अधिक रहती है, इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में सांगरी का प्रसंकरण एवं मूल्य संवर्धन किसानों विशेषकर महिला किसानों के लिए आजीविका का साधन बन सकता है।

d`l`dj`gjh lkxjh dk eY; lo/kZu

हरी सांगरी का मुख्य मूल्य संवर्धित उत्पाद सूखी सांगरी है। सूखी सांगरी बनाने के लिए सांगरी के तोड़ने की अवस्था एवं ब्लान्चिंग की प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है। हरी सांगरी के प्रसंकरण की विधि विस्तार से उल्लेखित है, जिसमें निम्नलिखित प्रक्रियाएं सम्मिलित है।

lkxjh dh rqMkbZ% हरी सांगरी की तुड़ाई सब्जी बनाने तथा सुखाने के प्रयोजन से अप्रैल महीने के तीसरे तथा चौथे सप्ताह में की जाती है। फली लगने से 10–20 दिन तक की आयु की फली सुखाने के लिए उपयुक्त होती है । 15 दिन के बाद जैसे जैसे फली की आयु बढती है, वैसे वैसे वह सुखाने के लिए अनुपयुक्त होती जाती है। बीस दिनों से अधिक पुरानी फली सुखाने के प्रयोजन के लिए कतई उपयुक्त नहीं होती है। अतः उत्तम गुणवत्ता की सुखी सांगरी प्राप्त करने के लिए 10–15 दिन आयु वाली फली की तुड़ाई करनी चाहिए।

Js.khdj.k ,oa lQkbZ% खेजड़ी के एक ही पैनिकल में फली की आयु तथा आकर में भिन्नता होती है। इसलिए वे फली जिनमें बीज बन गया है तथा कड़ी हो गई है उनको पृथक किया जाता है। इसके अलावा बीमारी तथा कीटों से प्रभावित फलियों को भी हटा दिया जाता है। तुड़ाई के समय डंठल व् पत्तियां भी साथ आ जाती है, उनको भी हटा देना चाहिए। इसके पश्चात फलियों को साफ पानी से धोना चाहिए।

CykfUpax% फलियों को उबलते हुए पानी में डुबाकर उपचारित करने की प्रक्रिया को ब्लान्चिंग कहते हैं। अनुसंधान में पाया कि सांगरी को 5 मिनट तक उबलते हुए पानी में उपचारित करने से उत्तम गुणवत्ता की सूखी सांगरी प्राप्त होती है। ब्लान्चिंग के अनेक लाभ हैं, जैसे एंजाइम क्रियाशीलता को निष्क्रिय करना, फली को सूक्ष्मजीव मुक्त करना तथा

फली के ऊतक को मुलायम करना जिससे फली सरलता से एवं शीघ्र सूख जाये। उबलते हुए पानी से निकलने के पश्चात फलियों को ठन्डे पानी में 5 मिनट तक डुबाकर रखना चाहिए, जिससे अधिक उबलने के प्रभाव को कम किया जा सके।

l[kkuk% फलियों को धूप में या कमरे में पंखे की हवा में या सौर शुष्कन यंत्र में सुखाया जा सकता है। यदि धूप में सुखाना हो तो साफ कपड़े पर फैलाकर हवादार स्थान पर सुखाना चाहिए। सुखाते समय फलियों को धूल, पत्तियां, रेत तथा पक्षियों से बचाना चाहिए। यदि व्यावसायिक स्तर पर अधिक मात्रा में सांगरी का प्रसंस्करण करना हो तो सौर शुष्कन यन्त्र का उपयोग करना चाहिए। सौर शुष्कन यंत्र में सांगरी 8 घंटे में सूखती है तथा धूप में 12–14 घंटे लगते है। सूखी फली की उपज हरी फली के वजन की 20–25 प्रतिशत प्राप्त होती है।

idfti.k% ग्रामीण क्षेत्रों में सूखी सांगरी की पैकेजिंग सामन्यतः टाट के बोरों में की जाती है जो की उचित नहीं है। सांगरी की पैकेजिंग खाध्य ग्रेड वायुरोधी प्लास्टिक बॉक्स या पॉलिथीन पाउच में करनी चाहिए।

foi.ku% किसान सांगरी को सीधा उपभोक्ता को न बेचकर खुदरा व्यापारियों को बेचता है, जिसके कारण उनको सांगरी का उचित मूल्य नहीं मिलता। अधिक मूल्य तथा लाभ प्राप्त करने हेतु सांगरी को सीधा उपभोक्ता को बेचना होगा। इसके लिए किसान को सांगरी की पैकेजिंग छोटे पैकेज जैसे 250 ग्राम या 500 ग्राम में करनी चाहिए। उस पैकेज पर मात्रा, पैकेजिंग दिनांक अंकित होना चाहिए। यदि किसान 20–25 सदस्यों का स्वंय सहायता समूह बना लें तो अपने उत्पाद की समूह के नाम से ब्रांडिंग भी कर सकते हैं। इसलिए अधिक लाभ कमाने के लिए महिला किसानों को समूह बनाने होंगे तथा सांगरी को बिचौलियों को बेचने के बजाय सीधे उपभोक्ता को अपने ब्रांड के नाम से बेचना होगा । समुह के निर्माण से महिला किसानों को सरकारी सहायता भी आसानी से मिल जाती है।

मरुधरा में खेजड़ी वृक्ष पौष्टिक फली तथा पशु चारा के श्रोत के साथ भूमि संरक्षण, पारिस्थितिकी स्थिरता तथा नियमित आय स्त्रोत के लिए महत्वपूर्ण है। सांगरी की पौष्टिकता एवं औषधीय गुणों के कारण इसकी मांग लगातार बढ़ रही है। इसलिए सांगरी का वैज्ञानिक विधि से प्रसंस्करण, आकर्षक पैकेजिंग तथा ब्रांडिंग से ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यम स्थापित किये जा सकते है। इससे खेजड़ी का व्यवसायीकरण होगा जिससे इसका संरक्षण भी होगा।

J.kc) dh x;h gjh lkxjh

बदलते जलवायु परिदृश्य में सतत फल उत्पादन: वर्तमान समय की आश्यकता

iou dqekj] egsUæ dqekj pkS/kjh ,oa /khjsUæ flg

tyok;q ifjorZu% orZeku ifj–';

भारत विश्व का दुसरा सबसे बड़ा कृषि निर्यातक देश है। भारत के किसान 141 मिलियन हेक्टेयर भूभाग में प्रतिवर्ष कृषि से लगभग 135 करोड़ जनसंख्या को पोषित करते हैं। भारत की जनसंख्या प्रति वर्ष 1.2 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है और वर्ष 2050 के अंत तक लगभग छह बिलियन तक पहुंचने की उम्मीद है। वर्ष 2015 के कृषि जनगणना के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि भारत मे प्रति व्यक्ति खेती योग्य भूमि मात्र 1.08 हेक्टेयर ही है, जो कि आजादी के बाद वर्ष 1970–71 की तुलना में लगभग 53 प्रतिशत कम है (2.28 हेक्टेयर, 1970–71)। बदलते जलवायु परिवेश में प्रति हेक्टेयर उपज को बढ़ाना एक कठिन चुनौती है। विश्व भर में बदलती जलवायु एवं बढ़ती आबादी और उससे जुड़ी खाद्य आपूर्ति, निस्संदेह चिंता के विषय हैं। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार भविष्य में दुनिया की आबादी को खिलाने के लिए कुल कृषि उत्पादन में 60 प्रतिशत की वृद्धि की आवश्यकता होगी।

सभी देशों विशेषकर विकाशशील देशों के लिए बढ़ती जनसंख्या के कारण भूख और कुपोषण चुनौतीपूर्ण मुद्दे हैं। दुनिया के भूख से पीड़ित लोगों को न केवल फल व सब्जी की उपलब्धता सुनिश्चित करवाना है बल्कि उनकी गुण्वता का भी ध्यान देना है। वर्ष 1980 तक इस बार जोर दिया गया कि संतुलित आहार में कम से कम 120 ग्राम फल एवं 200 ग्राम सब्जियां शामिल होनी चाहिए। फल एव सब्जियां विटामिन, माइक्रोन्यूट्रिएंट्स, फार्मास्युटिकल और पोषक तत्व यौगिक से जुड़े सुरक्षित खाद्य पदार्थ हैं, जो रोगों और विकारों को ठीक करने मे सहायक हैं। इसके अलावा इनकी खेती रोजगार के माध्यम से आजीविका सुरक्षा प्रदान करती है। लेकिन विभिन्न कृषि जलवायु कारकों जैसे ग्रीनहाउस गैसों के भारी उत्सर्जन और वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले विपथन से किसान के खेत में फसल का पूर्ण उत्पादन नही हो पाता है। आमतौर पर गुणवत्ता, उपभोक्ता स्वीकृति और अधिकतम उत्पादकता को प्रभावित करने मे अत्यधिक तापमान, मिट्टी की सीमित नमी, सिंचाई जल की उपलब्धता में कमी, अम्लता या लवणता और हवा से मिट्टी क्षरण आदि प्रमुख सीमित कारक है। अचानक जलवायु परिवर्तन के कारण मिट्टी की उर्वरता, मृदा माइक्रोबियल संख्या परागणकर्ताओं का व्यवहार एवं कीट और रोग की स्थिति पर विपरित असर देखने को मिलता है। जलवायु परिवर्तन के कारण फल एव सब्जी उत्पादन और उत्पादकता में कमी भविष्य में संकट पैदा कर सकती है इसलिए, फल एव सब्जी उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन के हानिकारक प्रभावों को दूर करने के लिए समय पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। उच्च तापमान की स्थिति में बेर में पुष्पन व फलन पर नकारात्मक प्रभाव

tyok;q ifjorZu&[kk| lqj{kk

बागवानी से भारत के जीडीपी का 30 प्रतिशत भाग और कृषि वस्तुओं के कुल निर्यात का लगभग 37.1 प्रतिशत प्रदान करता है। 2017–2018 में, लगभग 306.8 मिलियन टन उत्पादन का अनुमान लगाया गया और कुल कृषि उत्पादन (कृषि मंत्रालय, भारत) का लगभग 33 प्रतिशत साझा किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार बागवानी फसल उत्पादन की वृद्धि दर 2.7 प्रतिशत प्रति वर्ष है। एक रिपोर्ट (लाल, 2004) के अनुसार ऑक्सीकरण प्रक्रिया के कारण मृदा के जैविक पदार्थों में हानि हो रही है। इससे मृदा की उर्वरता नष्ट हो रही है और फसल की उत्पादकता में कमी हो रही है। दूसरी ओर इस ऑक्सीकरण प्रक्रिया के कारण वायुमंडल में कार्बन के उत्सर्जन से पर्यावरण को नुकसान हो रहा है। अनुर्वरक मृदा एवं पर्यावरण में गिरावट के कारण फसल उत्पादन में कमी हो रही है। मृदा के जैविक पदार्थ पूल में वृद्धि द्वारा मृदा की उर्वरता में सुधार करते हुए मृदा एवं गिरते पर्यावरण संतुलन की रोकथाम की जा सकती है। इसके

उच्च तापमान की स्थिति में बेर में पुष्पन व फलन पर नकारात्मक प्रभाव

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

लिए जल एवं पोषक तत्व प्रबंधन हेतु स्थायी कृषि प्रौद्योगिकियों, बिन जुताई कम्पोस्ट, फलीदार फसलों की खेती, जल संरक्षण, वानिकी एवं समेकित कृषि प्रणाली और उपयुक्त रसायनों का प्रयोग आवश्यक है। इस रणनीति से भोजन की मांग एवं उत्पादन चुनौती का सामना किया सकता है।

Qy mRiknu ij tyok;q ifjorZu dk çHkko% शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में फल उतपादन पर जलवायु परिवर्तन के कारण सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ते है। जिन क्षेत्रों में सामन्य तापमान पहले से ही अधिक है, वहां तापमान में वृद्धि से उपज और फलों की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अमरूद जैसी फसल जो कि उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय दोनों के लिए बहुत अच्छी तरह से अनुकूलित होती है तापमान में परिवर्तन के कारण देरी से फलन होता है एव कभी कभी फलन और फल सेट बुरी तरह प्रभावित होते हैं। मिट्टी में घुलनशील लवणों की उच्च सांद्रता से बेर की खेती पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रस्फुटन के दौरान तापमान और आर्द्रता अवधि फल के लगने में बड़ी बाधा होती है। अधिकतम फल का लगना मुख्य रूप से अनुकूल तापमान की अलग–अलग अवधि पर निर्भर करता है। फल की परिपक्वता के दौरान मिट्टी की नमी, उच्च वायुमंडलीय शुष्कता, ठंड, उच्च या निम्न तापमान अवधि के कारण फलों का गिरना भी होता है। शुष्क जलवायु में मध्य अक्टूबर से मध्य नवंबर तक उच्च तापमान के कारण फूल और फल का गिरना अधिकतम होता है। उच्च तापमान के परिणामस्वरूप पपीते में मादा और उभयलिंगी (हर्माफ्रोडाइट) पौधों में फूल गिर जाता है, साथ ही साथ उभयलिंगी पौधों में लिंग परिवर्तन होता है। उप–कटिबंधों में रात के कम तापमान के कारण जल्दी फूलन एव बेमौसम बारिश के कारण कम फल सेट होते हैं तथा दिन के कम तापमान के कारण परागणक गतिविधि कम हो जाती है एवं खराब फल लगते हैं। उष्ण कटिबंध में ठंड के बाद दिन का उच्च तापमान फल सेटिग को कम करता है एव पुष्पक्रम के दौरान ठंडा तापमान पूर्ण फूलों की संख्या को कम करता है। अधिक तापक्रम एव नमी की स्थिति में खजूर के

पौधों में सफेद स्केल कीट का आक्रमण

tyok;q ifjorZu e dhV vkj jksx ifj–';% फलों में कई कारक कीट और बीमारी के परिदृश्य को प्रभावित करते हैं। रोग के विकास के लिये मौसम के विभिन्न पैरामीटर जैसे अधिकतम तापमान और धूप के घंटे आपस में नकारात्मक सहसंबंध होते है जबकि न्यूनतम तापमान, आर्द्रता और हवा की गति में सकारात्मक होते हैं। रोगजनकों की संख्या में वृद्धि के लिए उच्च तापमान के साथ साथ उच्च वर्षा और आर्द्रता आदर्श परिस्थितियों बना देते हैं, उदाहरण के लिए, बेर में पत्ती चुर्ण फफूंदी का विकास अधिकतम 24–35 डिग्री सेल्सियस एव न्युनतम 4–22 डिग्री सेल्सियस तापमान और 24–22 प्रतीशत के बीच आरएच पर अधिक होता है। बेर, आम और अमरूद में उच्च तापमान में फल मक्खी का प्रकोप भी ज्यादा देखा गया है। फलों की कटाई के बाद 48 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 60–75 मिनटों के लिए उपचार करने से फल मक्खियों का नियंत्रण होता है। अनार की फसल मे लंबी अवधि के लिए निरंतर वर्षा, अधिकतम (36 डिग्री सेल्सियस से अधिक) और न्यूनतम (27 डिग्री सेल्सियस से कम) तापमान और सापेक्ष आर्द्रता (63–87 प्रतिशत) के दौरान बैक्टीरियल ब्लाइट रोग का प्रकोप अधिक देखा गया ऑवले मे एन्थ्रेक्नोज रोग को तापमान और नमी प्रभावित करते हैं। यह रोग गर्म और आर्द्र मौसम में बादल छाए रहने के साथ–साथ तापमान में वृद्धि से बहुत तेजी से फैलता है। जब उमस परिस्थितियों में खजूर की खेती की जाती है, तो ग्रेफियोला लीफ स्पॉट बीमारी व्यापक रूप से फैलती है, लेकिन कम आर्द्र क्षेत्रों में अनुपस्थित होती है।

अधिक तापक्रम एव नमी की स्थिति में खजूर के पौधों में सफेद स्केल कीट का आक्रमण

Qyksa dh xq.koÙkk ij tyok;q ifjorZu dk çHkko% अत्यधिक तापमान के परिणामस्वरूप फल परिपक्वता में देरी और अंगूर के फल की गुणवत्ता में कमी आ जाती है, साथ ही उच्च तापमान रंग विकास को भी कम करता है। प्रायः देखा गया है कि अमरूद में फल परिपक्वता के दौरान छिलके पर लाल रंग विकसित होने के लिये ठण्डी रातों का होना आवश्यकत होता है। उच्च तापमान क्षेत्र में नाशपाती फलों में फल का आकार, घुलनशील ठोस पदार्थ, कुल चीनी सामग्री, पानी की मात्रा, अम्लता अनुपात और विटामिन उपस्थिति निम्न तापमान क्षेत्र से अधिक पायी गयी। सितंबर और अक्टूबर में वर्षा में कमी, घुलनशील ठोस पदार्थों में वृद्धि करती है। उपोष्णकटिबंधीय और उष्णकटिबंधीय फल फसलों में परिपक्वता और फलों का पकना पर तापमान का प्रत्यक्ष प्रभाव होता है तथा तापमान के साथ पर्याप्त नमी होने से फल का कुल घुलनशील ठोस अवयव बढ़ जाते हैं।

tyok;q ifjorZu ds n`"çHkkoksa dks de djus ds fodYi

çca/ku fodYi% बदलते जलवायु परिवेश में उचित पैदावार प्राप्त करके फलो की सफल खेती मुख्य रूप से उपलब्ध अनुकूलन विकल्पों पर निर्भर करती हैं। बागवानी क्षेत्र में सीमांत और छोटे किसानों को अनुकूलन विकल्प ही समग्र विकास के प्रयासों को सक्षम एव सशक्त बनाएंगे। अधिकांश फलों की फसलें एक वर्ष में विभिन्न मौसमों के दौरान वनस्पति और प्रजनन चरणो से गुजरते हैं। इसलिये बारहमासी बागवानी फलों की फसलें अपने आप में एक चुनौती है। अतः किसी विशेष स्थान पर अनुकुलित फलों की एक फसल प्रजाति और उनकी किस्मों की उपयुक्तता पर अनुसंधान किया जाना चाहिए। बेमौसम बारिश के कारण खेजड़ी में फलन पर कुप्रभाव, ऐसी परिस्थिति सांगरी के स्थान पर गुंदेड़े बन जाते हैं।

lL; fØ;k esa cnyko% बारहमासी फसलों में सस्य क्रिया में परिवर्तन से अजैविक दवाब के प्रभावी प्रबंधन में मदद मिलती है। आम में लगातार सिंचाई से बेहतर वृक्ष वृद्धि, फल का आकार और उपज में वृद्धि दर्ज की गई बड़े आकार के फल और उच्चतम उपज 7–दिवसीय सिंचाई अंतराल के साथ प्राप्त की गई थी (लार्सन एट अल. 1989)। पहले 3 सप्ताह की तुलना में 6 सप्ताह के दौरान साप्ताहिक सिंचाई दशहरी किस्म में फलों के गिरने को कम करती है (सिंह और अरोड़ा 1965)। फल सेट के प्रारंभिक चरण में कोशिका विभाजन और कोशिका भित्ति विकास के रूप में बेहतर फल आकार और उपज प्राप्त करने के लिए शुरुआती 4–6 सप्ताह के दौरान सिंचाई करना महत्वपूर्ण है (ऐंटी और शेफर 1997)। इस प्रकार, फल सेट के बाद जल–सीमित परिस्थितियों के दौरान कम से कम अवधि सिंचाई स्थायी पैदावार को साकार करने के लिए महत्वपूर्ण है। पानी की कमी होने पर उन उत्पादन प्रथाओं को अपनाना चाहिए पानी उपयोग दक्षता में सुधार कर सकते हैं से पानी की बचत और सिंचाई के अधिन अधिक क्षेत्र लाने में मदद मिलेगी। उत्पादन प्रणाली जैसे ड्रिप सिंचाई और प्लास्टिक मल्चिंग से उच्च पैदावार को प्राप्त करने में मदद मिलेगी। प्लास्टिक मल्चिंग मिट्टी के पानी के वाष्पीकरण और वर्षा जल के प्रभाव को कम करने में मदद करती है और मिट्टी के माइक्रोफ्लोरा के लिए प्रभावी खरपतवार नियंत्रण और प्राकृतिक वातावरण प्रदान करता है।

बेमौसम बारिश के कारण खेजड़ी में फलन पर कुप्रभाव, ऐसी परिस्थिति सांगरी के स्थान पर गुंदेड़े बन जाते हैं।

e`nk rFkk ty laj{k.k% मृदा में उपस्थित नमी का संरक्षण, सिंचाई एवं वर्षा जल का अधिक दक्षतापूर्ण ढंग से उपयोग करना बहुत महत्वपूर्ण है। बरसात के पानी से खेतों में मृदा अपरदन होता है एवं बरसात का पानी व्यर्थ बहकर चला जाता हैं। फसल अवशेषों को न जलाकर तथा बुआई पहले की जुताई को कम करने से मृदा को सूखने से बचाया जा सकता है। नमी संरक्षण के लिए कम जुताई अथवा शून्य जुताई की बुआई तकनीक का उपयोग करना चाहिए। किसानों को खेतों में मृदा एवं जल संरक्षण के लिए खेतों में मेड़ बंधान, ढलान के विपरीत दिशा में खेती करना, खेत तालाब आदि तकनीकों को अपनाना चाहिए।

l{e flpkbZ fof/k% व्यवस्थित सिंचाई निर्धारण के कारण अनुप्रयोगों की दक्षता और समय में सुधार से बड़े पैमाने पर जल उत्पादकता में वृद्धि होती है। बूंद बूंद सिंचाई विधि से फलों के बागों में उपलब्ध सिंचाई जल के विवेकपूर्ण उपयोग को सक्षम बनाती है। यह 30–70 प्रतिशत तक सिंचाई पानी की बचत करता है और 25–80 प्रतिशत उच्च पैदावार को प्राप्त करने में मदद करता है।

सुक्ष्म सिंचाई विधि से खजूर में अच्छी फलत

lw[kk rFkk vojks/kh çtkfr;ksa dk p;u% ऐसी प्रजातियों का चयन करना चाहिए, जो सूखा, उच्च तापमान, उच्च तनाव तथा तापमान के उतार–चढ़ाव का सामना कर सकें। देशी प्रजातियों में से जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन दर्शाने वाली प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए। अधिकांश बागवानी फसलें बचाव तथा सहनशीलता क्षमता के संयोजन से जल का संरक्षण करती हैं, जैसे –गहरी जड़ें, पत्ती की सतह में संशोधन, पूर्ण अभिविन्यास तथा पत्ती जीर्णता, आदि।

ऐसी प्रजातियां विकसित करने की आवश्यकता है, जो जलवायु परिवर्तन का सामना कर सकें।

lajf{kr —f"k% किसानों को जलवायु परिवर्तन से बचने के

लिए संरक्षित खेती तकनीक अपनानी चाहिए। इस तकनीक में पालीहाउस, नेट हाउस, लो टनल इत्यादि संरचनाओं का उपयोग शामिल है।

fu"d"k

जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों को दूर करने के लिए बागवानी फसलों की उत्पादकता और गुणवत्ता पर अनुकूलन रणनीतियों को विकसित करने की आवश्यकता है। पानी के उपयोग दक्षता एवं गर्म और शुष्क परिस्थितियों के अनुकूल होने के लिए बेहतर उत्पादन प्रणाली के विकास पर जोर दिया जाना चाहिए मिट्टी की उर्वरता में सुधार के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता और उर्वरक उपयोग दक्षता को बढ़ाने के लिए शोध करना जरूरी है जिससे मिट्टी में पोषक तत्वों की वृद्धि को बढ़ाया जा सके। हालांकि, जलवायु परिवर्तन केवल हानिकारक नहीं होते। जैसे कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ी हुई संद्रता प्रकाश संश्लेषण को तेज करता है, जलवायु–लचीला/सहनशील बागवानी का विकास उच्च तापमान, नमी का तनाव, लवणता एवं जीनोमिक्स और बायोटेक्नोलॉजी के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के प्रति सहिष्णु फसलें अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इसके लिए प्राथमिकता वाले शोध की अत्यधिक आवश्यकता है, जो जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में सहायक हो। बदलते जलवायु परिस्थितियों के लिए उष्णकटिबंधीय बागवानी उत्पादन प्रणाली के अनुकूलन को बढ़ाना एक बड़ी चुनौती है और इसके लिये एकीकृत प्रयास की आवश्यकता है।

हिन्दी भाषा एक ऐसी सार्वजनिक भाषा है, जिसे बिना भेद-भाव प्रत्येक भारतीय ग्रहण कर सकता है।

– पंडित मदनमोहन मालवीय

गर्म–शुष्क जलवायु में अनार की उपयुक्त किस्म का मूल्यांकन

vkj- d- eh.kk] nhid dekj ljkfy;k ,oa iou dekj ikjhd

çLrkouk

अनार (प्यूनिका ग्रेनेटम) भारत के शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण फल फसल है। अनार लिथरियेसी कुल का पौधा है। इसका उत्पत्ति स्थान ईरान है। भारत विश्व का सबसे बडा अनार उत्पादक देश है। यहां इसका कुल क्षेत्रफल 234 हजार हेक्टेयर है जिसमें उत्पादन 2845 मैट्रिक टन एवं उत्पादकता 12.16 मैट्रिक टन है। यह प्रायः भारतवर्ष के प्रत्येक राज्य में पैदा होता है, परन्तु इसकी खेती मुख्य रुप से महाराष्ट्र गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान राज्यों में की जाती है। महाराष्ट्र में इसकी खेती सबसे अधिक होती है। महाराष्ट्र में, देश के कुल अनार उत्पादन क्षेत्रफल के 2/3 भाग पर अनार की खेती की जाती है। राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में भी अनार सरलता से उगाया जा सकता है। यहां इसकी खेती के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल लगभग 18 हजार हेक्टेयर के साथ उत्पादन 28.13 हजार मैट्रिक टन एवं उत्पादकता 6.2 टन प्रति हेक्टेयर है। राजस्थान में अनार की खेती मुख्य रूप से बाड़मेर, भीलवाड़ा, जालौर, पाली, जोधपुर, बीकानेर, नागौर आदि जिलो में की जाती है। अनार एक स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक फल होता है। यह विटामिन एवं खनिज लवणों का बहुत अच्छा स्रोत है। इसमें विटामिन ए, सी, एवं फोलिक एसिड प्रचुर मात्रा में होता है। अनार के 100 ग्रा. फल के पोषक मान में 67.95 किलो कैलोरी ऊर्जा, 1.41 ग्राम प्रोटीन, 1.60 ग्राम फाइबर, 2.50 मिग्रा. कैल्शियम, 10. 22 मिग्रा. मैग्नीशियम, 34.3 मिग्रा. फॉस्फोरस, 0.39 मिग्रा. लोहा, 0.26 मिग्रा. जस्ता, 0.09 मिग्रा. थाइमिन, 0.33 मिग्रा. नियासिन, 23.38 मिग्रा. एस्कॉर्बिक अम्ल एवं 26.00 मिग्रा. पाया जाता है। अनार के फलों से कई मूल्य संवर्धित उत्पाद जैसे– रस, स्क्वैश, जेली, अनारदाना, मुखवाश, आदि तैयार किए जाते हैं।

शुष्क क्षेत्रों में अनियमित वर्षा, उच्च तापमान, मिट्टी में नमी, पोषक तत्वों की कमी एवं जल धारण क्षमता में कमी, आदि अनेक समस्याएं पायी जाती हैं। शुष्क क्षेत्र की पर्यावरणीय स्थिति बहुत विपरीत होती है। ऐसे क्षेत्रों में पौध रोपण से पहले उचित किस्मों का चयन बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके अलावा इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन एवं फलन की अवधि को नमी की उपलब्धता के आधार पर तय किया जा सकता है। वर्तमान में अनार की देशी एवं विदेशी सहित कुल 70 से अधिक किस्मों की खेती की जाती है। देश में पहली अनार की किस्म गणेश 1954 में कृषि महाविद्यालय, पुणे द्वरा विकसित की गई थी, जो महाराष्ट्र सहित देश के विभिन्न भागों में बहुत लोकप्रिय रही थी। वर्ष 2003 में महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ (एमपीकेवी) राहुरी द्वारा भगवा नामक किस्म विकसित होने के बाद गणेश किस्म की खेती कम की जाने लगी। भारत में अनार की जालोर सीड्लेस, गणेश, भगवा, मृदुला, फूले अरक्ता, ज्योति, कंधारी, फूले भगवा सुपर, आदि किस्मों की खेती जाती है। विभिन्न किस्मों के मूल्यांकन एवं अनुसंधान के आधार पाया गया है कि अनार की जालोर सीडलेस किस्म शुष्क क्षेत्र के वातावरण के लिए अत्यधिक अनुकूल होती है। पश्चिमी राजस्थान की गर्म–शुष्क पारिस्थितिकी में पारम्परिक खेती के साथ ही अनार की खेती से किसानों की आय में वृद्धि हो सकती है। परन्तु इन क्षेत्रों में अनार में फल फटन की समस्या भी किसानों को चिंतित करती है। गर्म–शुष्क क्षेत्र के लिये उपयुक्त किस्म के चुनाव के लिये पांच किस्मों के मुल्यांकन इस शोध पत्र में वर्णित किया गया है।

राजस्थान की गर्म एवं शुष्क जलवायु में अनार की खेती के लिए उपयुक्त किस्म का पता लगाने के लिये भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर के अंतर्गत अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के परीक्षण में अनार की विभिन्न किस्मों पर अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में अनार की किस्म जालोर सीडलेस को विभिन्न आयामों में अन्य किस्मों की तुलना में बेहतर पाया गया। किस्मों के मूल्यांकन के आधार पर अनार की गणेश किस्म इन सभी गुणों में जालोर सीडलेस के लगभग समान ही रही, जबकि फूले अरक्ता किस्म का प्रदर्शन अन्य किस्मों से निम्नतर दर्ज किया गया। enk

यह परीक्षण भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान के प्रायोगिक प्रक्षेत्र पर किया गया है। प्रायोगिक प्रक्षेत्र समुद्र तल से 234.84 मीटर की ऊंचाई पर 28° उत्तरी अक्षांश और 73.18° पूर्वी देशांतर में स्थित है। प्रक्षेत्र की मृदा मरुस्थली रेतीली है जिसकी जल धारण क्षमता एवं उर्वरता बहुत कम है। प्रायोगिक स्थल की

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

मृदा का विभिन्न जगह से तीन अलग–अलग गहराई (30–90 सेंटीमीटर) से नमूने लेकर विश्लेषण किया गया। इसका पीएच मान 8.3–8.5 (क्षारीय), ईसी 0.28–0.24 डीएसएम$^{-1}$ (मध्यम), पोटेशियम 210–249 किग्रा. (मध्यम), फास्फोरस 12–15 किग्रा. (मध्यम), कार्बनिक पदार्थ 0.16.1. 14 प्रतिशत (कम) दर्ज किया गया है। बोरवेल के पानी का पीएचमान 7.58, ईसी 2.73 डीएएएम$^{-1}$ और टीडीएस 1700. 47 पी.पी.एम था। क्षेत्र में वार्षिक वर्षा लगभग 230 मिमी/वर्ष एवं मई–जून का महीना सबसे गर्म पाया जाता है। क्षेत्र का औसत अधिकतम तापमान 42.9° से. और न्यूनतम 8.9° सेंटीग्रेड होता है। दिसंबर–जनवरी माह बहुत ठण्डे होते हैं, जिसमें कभी–कभी फसलों में पाले का प्रकोप भी हो जाता है। इस गर्म शुष्क जलवायु में प्रजातिगत मुल्यांकन के लिये पांच व्यावसायिक किस्मों (जालोर सीडलेस, गणेश, भगवा, मृदुला, फूले अरक्ता) का चुनाव किया गया है।

eY;kdu dh :ijs[kk

अनार की पांच किस्मों का मूल्यांकन पादप वृद्धि, उत्पादकता, उपज (प्रति पौधा एवं हेक्टेयर) एवं गुणवता मापदंडों (रस प्रतिशत, टी.एस.एस., अम्लता) में सामान्य रुप से उपयोग में ली जाने वाली विधि द्वारा किया गया। पादप वृद्धि और पौध फैलाव का मापन किया गया है। इसी प्रकार फल आकार, व्यास एवं फल के दानों का आकार मापा गया। प्रति पौधा फलों की संख्या, फल में दानों की संख्या की गणना की गयी। प्रति फल वजन, बीज सूचकांक एवं वजन परीक्षण का मापन भार तौलन विधि के माध्यम से किया गया। पौध छत्रक का व्यास का मापन भी किया गया है।

विभिन्न मापदण्डों पर फलों की गुणवत्ता का आकलन किया गया। फलों में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा ज्ञात की गयी। अम्लता को 0.1 प्रतिशत स्टेंडर्ड सोडियम हाइड्रोक्साईड से अनुमापन कर प्रतिशत फिनोफ्थेलीन सूचक का घोल डालकर प्रतिशतता में प्रदर्शित किया गया।

अनार की विभिन्न किस्मों के वानस्पतिक लक्षणों की विवेचना में असार्थक रुप से विभिन्नता देखी गई। विभिन्न किस्मों में से पौध ऊँचाई एवं छत्रक व्यास, पूर्व–पश्चिम और उत्तर–पश्चिम फैलाव सबसे अधिक जालोर सीडलेस में तो सबसे कम मृदुला किस्म में पाया गया। इन सभी लक्षणों में विभिन्न्ता का कारण किस्म का शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र में अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक अभ्यस्त होना एवं आनुवंशिक गुणो के कारण हो सकता है।

फलों के गुणात्मक विश्लेषण में सबसे अधिक एरिल आकार, लम्बाई, चौड़ाई एवं एक फल में कुल दानों का वजन अन्य किस्मों की तुलना में जालोर सीडलेस किस्म में दर्ज की गई। यह सभी भौतिक लक्षण भगवा किस्म में सबसे कम दर्ज किए गए। यहां पर गणेश किस्म को भी इन लक्षणों में जालोर सीडलेस किस्म के समीप ही दर्ज किया गया।

मूल्यांकित पांचों किस्मों के उत्पादकता लक्षण एव उपज के अध्ययन में व्यापक विविधता पायी गई। फलों का भार, फल आयतन, टेस्ट वजन, एक फल में दानों का भार, प्रति पौधे फल की संख्या और उपज के मापदण्डों में जालोर सीडलेस किस्म सर्वश्रेष्ठ दर्ज की गयी। फुले अरक्ता किस्म में यह सभी मापदण्ड अन्य किस्मों की अपेक्षा सबसे कम दर्ज किये गये। जालोर सीडलेस किस्म शुष्क जलवायु में अधिक अभ्यस्त होने के कारण फल उत्पादन, फल आकार एव आयतन में उत्तम पायी गई।

अनार की विभिन्न किस्मों में रस प्रतिशतता, कुल घुलनशील शर्करा, अम्लता एवं रस प्रतिशता तथा उपज प्रति पौधा और प्रति हेक्टेयर का अध्ययन किया, जिसमे सभी किस्मों में विविधता देखी गई। सबसे अधिक कुल घुलनशील शर्करा एव अम्लता प्रतिशत, प्रति पौधा उपज और प्रति हेक्टेयर उपज जालोर सीडलेस में दर्ज की गयी। रस एव अम्लता प्रतिशत सबसे अधिक भगवा किस्म में पाया गया। इन सभी लक्षणों में विभिन्न्ता का कारण किस्म का शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र में अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक अभ्यस्त होना एवं आनुवंशिक गुणों के कारण हो सकता है।

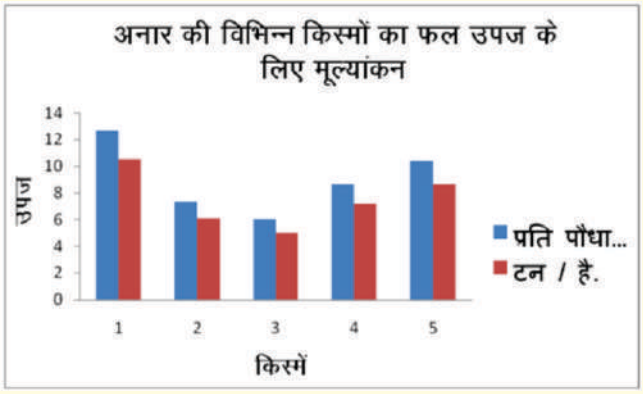

fu"d"kZ

उपरोक्त अध्ययन के परिणामस्वरूप दृष्टिगत है कि पौध विकास, फलों के भौतिक गुणों, फल गुणवता एवं उपज के आधार पर अनार की जालोर सीडलेस किस्म राजस्थान की गर्म एव शुष्क जलवायु के लिये में सबसे उपयुक्त किस्म है।

Jalore Seedless

Bhagwa

Phule Arakta

Mridula

पंचकुटा – मरुधरा की बहु–गुणी एवं औषधीय सब्जी का उत्पादन

fnyhi dqekj lekfn;k ,oa Áe Ádk'k ikjhd

भारत का उत्तरी–पश्चिमी गर्म शुष्क भू–भाग विशेषकर राजस्थान की जलवायु अत्यधिक प्रतिकूल होने से यहाँ कृषि उत्पादन मुख्यतया मिश्रित–फसल एवं पशु–धन आधारित व्यवस्थाओं से किया जाता है। यहाँ विषम भौगोलिक एवं जलवायुवीय परिस्थितियाँ होने पर भी प्रकृति ने इस मरुस्थलीय क्षेत्र को अनेकानेक बहु–वर्षीय पेड़–पौधों व ऋतु फसलों की सौगात दी है तथा इनकी विशिष्ट गुणों की पहचान सिद्ध हो चुकी हैं। किसान, अपने प्रक्षेत्र में स्थानीय पेड़–पौधों यथा खेजड़ी, कैर, झरबेर, बोरड़ी, पीलू (जाल), कुमट, गूंदी, गूंदा, फोग, खींप, लाणा, गंगरेन, बावली, गूगल, कंकेडा, ककोड़ा, कुन्दरू, अरनी, हिंगोट, ग्वारपाठा, बुई, सनिया, आक की बहु–उपयोगिता होने से संरक्षित रखते हैं। चूंकि इन वनस्पतिओं से प्राप्त उत्पाद बहु–गुणी होने से इनका भोजन, औषधि, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय महत्व है अतः इनको कृषि–उत्पादन घटक स्वरूप प्राथमिकता दी गई हैं।

दैनिक भोजन में ताजा फल, सब्जियाँ व सुगन्धित पौधों का विशिष्ट स्थान है। शुष्क बागवानी के पेड़–पौधों से प्राप्त विविध उत्पादों को परिरक्षित एवं सूखाकर बे–मौसम, आपातकाल तथा वर्ष–भर उपयोग के लिए सुरक्षित रखने की परम्परा है। यहाँ पोषक व औषधीय तत्वों से भरपूर मौसमी–भोज्य उत्पाद प्रचुर मात्रा में होता है, परन्तु इनकी ताजा उपलब्धता अल्प–अवधि के लिए होती है। चूंकि इन ताजा उत्पादों का अल्प समय में सदुपयोग नहीं होने से इनको परम्परागत विधियों से सुखा कर भंडारित किया जाता है।

यहाँ की सर्वाधिक लोक–प्रिय व औषधीय गुणयुक्त सब्जी – ipdqVk] जिसमें मरुधरा की पाँच स्थानीय वनस्पतियों से प्राप्त उत्पाद को सुखाकर तैयार की जाती है तथा इसमें सूखी सांगरी एक मुख्य व आधार घटक है। पंचकुटा में सांगरी के साथ केर व लसोड़ा (गूंदा) के कच्चे फलों का सूखा उत्पाद, कूमट के परिपक्व व सूखे बीज एवं काचरी के सूखे फलों को एक निश्चित अनुपात में मिलाकर विशेष कला से पकाया जाता है। पंचकूटा – स्थानीय तीज–त्योहार, रीति–रिवाज एवं आयोजनों की प्रतिष्ठित सब्जी अब पंच–तारा होटलों एवं महानगरों के समारोह में भी विशेष स्थान ले चुकी है।

वर्तमान के बदलते परिवेश एवं विविध स्वादों की मांग से पंचकूटा सब्जी में ताजा या सूखा मिर्च–कुट्टा एवं काजू व किशमिश का उपयोग किया जा रहा है। इसी प्रकार भारतीय पुष्प – कमल (नेलुम्बो नूसीफेरा) का जलीय तना (प्रकंद) जिसको कमल–ककड़ी (झेण्डा) के नाम से पहचाना जाता है तथा इसके सूखे उत्पाद को सब्जी में विशेष स्वाद के लिए भी प्रयोग किया जाने लगा है।

मरुस्थलीय जलवायु एवं पेड़–पौधों पर विगत 25 वर्षों से किए गए अनुसंधान अध्ययनों के आधार पर यहां बागवानी उत्पादन के लिए एकीकृत योजना का सृजन किया गया है। इस वैज्ञानिक योजना – बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन में खेजड़ी एक मुख्य घटक वृक्ष है। खेजड़ी आधारित इस तकनीकी में क्षेत्रीय जलवायु व संसाधनों के अनुरूप पेड़–पौधों व फसलों का चुनाव तथा सुनियोजित उत्पादन प्रारूपों एवं समयावधि पर समावेश करके खेती में व्यावसायिकता एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकती हैं।

शुष्क क्षेत्र में फसल सुरक्षा एवं प्रबंधन कार्यों की विशेष आवश्यकताएँ हैं तथा यह प्रभावशाली, स्थिर एवं वैज्ञानिकता से परिपूर्ण हो, जिससे किसान इन्हें सहजता से अपना सकें। फसलों को वातावरणीय प्रकोप के प्रभाव से बचाने एवं निश्चित उत्पादन के लिए प्रक्षेत्र में उचित कृषि–वातावरण तैयार करना एक सैद्धांतिक आवश्यकता मानी गई है तथा सर्वप्रथम इसके लिए खेत के भू–भाग की बाड़ी/तार बंदी अनिवार्य है। इसी के साथ फसलों में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए उन्नत व नवोन्वेषित तकनीकों को प्रक्षेत्र प्रबन्धन व्यवस्थाओं में अपनाना होता है।

[kstMh ¼çkslksfil flusjfj;k½

खेजड़ी, लेग्यूमिनेसीइ कुल का एक बहु–उपयोगी एवं बहु–वर्षीय वृक्ष है तथा यह पौष्टिक पत्ती–चारा (लूँग) एवं सब्जी उपयोगी फलियों (सांगरी) के लिए अतिलोकप्रिय है। संस्थान द्वारा विकसित उन्नत एवं नवोन्वेषित तकनीकियाँ अपनाकर इस वृक्ष का योजनाबद्ध विस्तार एवं संरक्षण करके इसके सहचर्य में लाभ ही लाभ प्राप्त किया

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर–334 006 (राजस्थान)

जा सकता है। क्योंकि यह पौष्टिक खाद्य स्त्रोत के साथ भूमि संरक्षण, कृषि–योग्य वातावरणीय सुधार, पर्यावरणीय संतुलन तथा नियमित आय के लिए भी अतिउपयोगी है। इसी के साथ यहाँ की प्रतिकूल पारि–स्थितिकी में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र प्रबंधन व्यवस्थाओं से कृषि, बागवानी व पशुधन का प्राकृतिक उत्पादन कर अकाल की स्थिर कु–छाया को सुकाल में परिवर्तित किया जा सकता है।

खेजड़ी के बीजू व पेबन्दी वृक्षों पर अप्रैल–मई महीने में कच्ची फलियां अल्प समय के लिए प्रचुर मात्रा में लगती हैं तथा स्थानीय लोग सांगरी की तुड़ाई कर उपयोग में लेते हैं। खेजड़ी आधारित बागवानी फसल उत्पादन प्रारूपों में किस्म थार शोभा के सात–आठ वर्ष आयु के पेबन्दी वृक्षों से प्रतिवर्ष 7.22 किलोग्राम सांगरी एवं 8.15 किलोग्राम लूंग उपज/पौधा होती है। इसी प्रकार प्रक्षेत्र में स्वतः उगे बीजू मूल–वृन्तों पर शीर्ष–कलिकायन से विकसित पेबन्दी 15–20 वर्ष आयु के वृक्षों से 10–15 किलोग्राम सांगरी एवं 25–30 किलोग्राम लूंग उपज/पौधा/वर्ष होती है। प्रचलित विधि से 100 किलोग्राम ताजा, पतली व कच्ची फलियां सूखाने पर 22–25 किलोग्राम सूखी सांगरी प्राप्त होती है।

सांगरी बहुगुणी बागवानी उत्पाद है तथा इसको ताजा एवं सूखी अवस्था में सब्जी व अचार के उपयोग में लिया जाता है। वर्तमान में हरी व सूखी सांगरी क्रमशः 80–100 एवं 450–750 रूपया प्रति किलोग्राम भाव से क्रय–विक्रय हो रही है। संस्थान की खेजड़ी प्रजातिओं की सब्जी उपयोगी अवस्था की हरी–सांगरी के 100 ग्राम भाग में 75.04–76.41 प्रतिशत जल एवं 23.59–24.96 प्रतिशत सूखा–पदार्थ होता है। इस सूखे खाद्य पदार्थ के 100 ग्राम भाग में 50.2–52.6 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 17.2–18.2 प्रतिशत प्रोटीन, 1.4–1.8 प्रतिशत वसा, 22.7–23.7 प्रतिशत रेशा, 3.2–3.7 प्रतिशत कैल्शियम, 0.3–0.4 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 3.9–4.8 प्रतिशत सूक्ष्म भस्म तत्व होते हैं।

dj ¼dSifjl MflMvk½

केर, केपेरिडेसीइ कुल का झाड़ीनुमा पौधा या लघु–वृक्ष है तथा मरुस्थलीय पारिस्थितिकी में यह पर्यावरणीय संतुलन के लिए एक बहु–उपयोगी प्रजाति है। यहाँ की प्रतिकूल जलवायु एवं कम वर्षा में केर के पौधे जीव–जंतुओं, पशुओं व प्राणिओं के लिए महत्वपूर्ण स्थानीय वनस्पति है। इस बहु–वर्षीय, बहु–शाखीय एवं कांटे–नुमा झाड़ियों पर भोज्य–उपयोगी, गुणकारी तथा स्वास्थ्य–वर्धक फल लगते हैं। फलों की कच्ची अवस्था में तुड़ाई कर सब्जी, रायता, अचार व चटनी बनाने में लिया जाता है तथा परिरक्षित व सूखा–कर वर्षभर उपयोग के लिए संरक्षित रखा जाता है। वर्तमान में सब्जी उपयोगी ताजा व सूखी केर क्रमशः 80–120 एवं 350–400 रूपया प्रति किलोग्राम भाव से क्रय–विक्रय हो रहा है।

संस्थान में केर की जैव–विविधता के सतत् अध्ययनों तथा उत्पादन तकनीकी के अनुसंधान कार्यों के परिणामों से अब यह सुनिश्चित हो चुका है कि इस प्रजाति के पौधों का प्राकृतिक रूप से संरक्षण एवं बीजों से प्रर्वधन करके योजनाबद्ध खेती द्वारा मरु क्षेत्रीय बागवानी से भी आत्मनिर्भरता विकसित की जा सकती है।

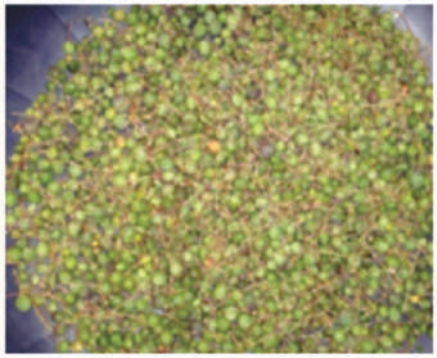

संस्थान में बीजों से प्रवर्धित केर सलेक्शन–1, 2, 3 व 4 की संततिओं पर लगातार 12 वर्षों के अध्ययनों से यह पाया गया है कि इनकी 6–7 वर्षीय आयु पर झाड़ियाँ एक समान व अच्छी वानस्पतिक वृद्धि ले लेती हैं तथा 30–40 प्रतिशत पौधों में प्रारंभिक फलन शुरू हो जाता हैं। सामान्यतः झाड़िओं पर मार्च से मई तथा सितम्बर से नवम्बर महीनों में फूल–फलन एवं विपणन योग्य फल प्राप्त होते हैं।

वैज्ञानिक तकनीकी से व्यवस्थित रखी गए झाड़ियों पर 9–10 वर्षीय आयु से व्यावसायिक उत्पादन हुआ है तथा इनसे विपणन योग्य फल उपज 1.78–2.54 किलोग्राम/पौधा/वर्ष हुई है। चयनित संततिओं से प्रर्वधित बीजू पौधों में प्रायः सब्जी उपयोगी कच्चे–फल एक समान, अंडाकार–गोल आकृति एवं हल्के हरे–भूरे रंग के पाए गए तथा इस अवस्था के फल विपणन के लिए सर्वश्रेष्ठ गुणवत्ता के होते हैं जिनका वजन 0.85–1.25 ग्राम, लम्बाई 0.88–1.21 सेन्टीमीटर एवं व्यास 1.12–1.35

सेन्टीमीटर रहा है। प्रचलित विधि से केर के 100 किलोग्राम ताजा, कच्चे व पूर्ण–विकसित अवस्था के फलों

को सूखाने पर 21–24 किलोग्राम सूखी–केर प्राप्त हुई है।

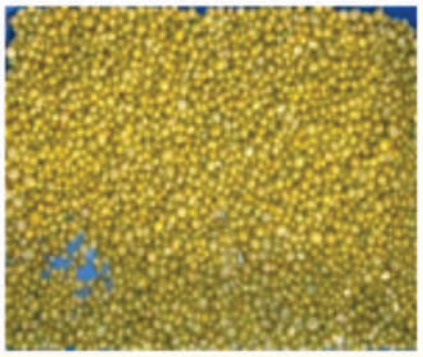

केर की बीजू संततिओं के सब्जी उपयोगी कच्ची अवस्था के ताजा फलों के 100 ग्राम भाग में 77.81 प्रतिशत जल एवं 22.19 प्रतिशत सूखा–पदार्थ होता है। इस सूखे खाद्य पदार्थ के 100 ग्राम भाग में 49.8 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 13.2 प्रतिशत प्रोटीन, 5.2 प्रतिशत वसा, 14.5 प्रतिशत रेशा, 2.44 प्रतिशत कैल्शियम, 0.32 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 6.1 प्रतिशत सूक्ष्म भस्म तत्व होते हैं।

y lkMk ;k xUnk ¼dkjfMvk ekbDlk½

भारतीय मूल का लसोड़ा या गुन्दा, बोरेजिनेसीइ कुल का बहु–वर्षीय एवं बहु–उपयोगी फल–वृक्ष है। राजस्थान में अच्छी वर्षा वाले शुष्क जलवायु के क्षेत्रों के खेतों व बाड़ों के किनारों तथा वन, पौधशालाओं की सड़कों पर संरक्षित पाए गए हैं। गुन्दे के पौधे 4–8 मीटर उंचाई व फैलाव लिए होते है। हरे–भरे व बड़ी पत्तियों के यह वृक्ष ग्रीष्मकाल में सघन छाया देते हैं तथा स्थानीय प्राणिओं, पशुओं व जीव–जंतुओं के लिए यह एक अति–लाभकारी वनस्पति है।

किसान, गुन्दे को बागवानी घटक स्वरूप प्रसारित करते हैं तथा इन पर भोज्य–उपयोगी व औषधीय गुणों युक्त फल लगते हैं जिनको कच्ची व पूर्णविकसित अवस्था में ताजा व सूखाकर सब्जी एवं अचार के उपयोग में लिया जाता है। वर्तमान में गुन्दे के ताजा–कच्चे व सूखे फल क्रमशः 20–40 एवं 80–120 रूपया प्रति किलोग्राम भाव से क्रय–विक्रय हो रहे है तथा इसके परिरक्षित व सूखे फलों का बहुत बड़ा बाजार है।

संस्थान में लसोड़ा की जैव–विविधता एवं चयनित मातृ–वृक्षों के बीजों से प्रवर्धित संततिओं पर सतत् अनुसंधान अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि इस प्रजाति के पौधों को बीजों से प्रवर्धित करके मरूक्षेत्र में व्यवस्थित बागवानी एवं पर्यावरणीय सुधार किए जा सकते हैं। गुन्दे की चयनित बीजू संततिओं यथा सलेक्शन–1, 2, 3, 4 व एएचसीएम–22–1 पर दीर्घकालीन अध्ययनों में यह पाया गया कि इनके बीजू–पौधों की वानस्पतिक वृद्धि तथा कच्चे फलों के लक्षणों में विशेष अंतर नहीं होता है। यह बीजू–पौधे 4–5 वर्ष की आयु तक पेड़–नुमा आकृति ले लेते हैं तथा 30–40 प्रतिशत पौधों में फल–उपज प्रारंभ हो जाती हैं। पौधों में मार्च–अप्रैल एवं अगस्त–सितम्बर में नई वानस्पतिक वृद्धि होती है तथा नई फूटान पर अप्रैल–मई महीनों में कच्चे फल प्राप्त होते हैं।

वैज्ञानिक तकनीकियाँ अपनाकर रखे गए 6–7 वर्षीय आयु के बीजू लसोड़ा पौधों में व्यावसायिक उत्पादन प्रारम्भ हो जाता है तथा एक वृक्ष से 24.5–38.7 किलोग्राम ताजा, कच्चे व परिपक्व एवं सब्जी उपयोगी फल–उपज प्राप्त हुई है। अध्ययनरत पांच बीजू संततिओं के पौधों में कच्चे–फल प्रायः एक समान, गोल–अंडाकार आकृति एवं चमकीले हरे रंग के पाए गए तथा इस अवस्था में यह सब्जी, अचार व सुखाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं जिनका वजन 5.62–9.23 ग्राम, लम्बाई 1.75–2.25 सेन्टीमीटर एवं व्यास 1.85–2.55 सेन्टीमीटर रहा है। कच्चे फलों में लसलसा–रस व बीज होता हैं तथा प्रचलित विधि से 100 किलोग्राम ताजा गूदे को सूखाने पर 10.25–11.55 किलोग्राम सूखा–लसोड़ा भोज्य–पदार्थ प्राप्त होता है।

लसोड़ा की चयनित बीजू संततिओं के सब्जी उपयोगी कच्ची अवस्था के ताजा फलों के 100 ग्राम भाग में 89.8ः जल एवं 10.2ः सूखा–पदार्थ होता है। इस सूखे खाद्य पदार्थ के 100 ग्राम भाग में 48.8 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 8.6 प्रतिशत प्रोटीन, 5.9 प्रतिशत वसा, 25.1 प्रतिशत रेशा, 2. 26ः कैल्शियम, 0.23 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 3.9 प्रतिशत सूक्ष्म भस्म तत्व होते हैं।

dqeV ¼vdfl;k lsusxy½

कुमट, लेग्यूमिनोसीइ में फेबेसीइ के माइमोसोईडेइ कुल का एक बहु–वर्षीय तथा बहु–उपयोगी वृक्ष है। गम–अरेबिक के नाम से प्रसिद्ध यह पौधा प्राकृतिक रूप से अफ्रीका के सहारा मरुस्थल, दक्षिण एशिया, पाकिस्तान एवं भारत के थार क्षेत्र में पाया जाता है। शुष्क पारिस्थितिकी का यह पौधा अत्यधिक अल्प–वर्षा, अधिक तापमान (50 डिग्री सेल्सियस) तथा पथरीली व रेतीली भूमि में सहजता से पनपता हैं। मुख्यतया कुमट को भोज्य–उपयोगी गम उत्पादन के लिए जाना जाता है परन्तु इसकी पौष्टिकता से भरपूर पत्तिओं, फलिओं व बीजों को पशु बड़े चाव से खाते हैं। पूर्ण–विकसित फलियों से प्राप्त बीजों को ताजा अथवा सुखाकर मिश्रित सब्जी एवं अचार बनाने के उपयोग में लिया जाता है। इसका प्रस्संस्कृत सूखा बीज–दाना 80–100 रूपया प्रति किलोग्राम भाव से क्रय–विक्रय हो रहा है।

मरुस्थलीय क्षेत्र में कुमट के स्वतः प्रवर्धित बीजू पौधों की आकृति, पत्तियाँ, फूल–फलियाँ व बीजों पर

अध्ययन करने से यह पाया गया कि इस प्रजाति को बागवानी तथा पर्यावरणीय उपयोग के लिए बीजों से प्रसारण करना ही उपयुक्त रहेगा। कुमट के चयनित पौधों तथा संस्थान में स्थापित एक सर्वाधिक उपयुक्त बीजू संतति एएचएएस–1 पर सतत् आंकलन में यह पाया गया कि इनके पौधों व फलिओं में विशेष विभिन्नताएं नहीं होती हैं।

संस्थान में व्यवस्थित व सुरक्षित रखे गए कुमट के 7–8 वर्षीय आयु के बीजू–पौधे वृक्ष–नुमा आकृति लेते हैं एवं 9–10 वर्ष आयु से इन पर व्यावसायिक फली व बीज उत्पादन प्रारंभ होता है तथा प्रतिवर्ष 2.26–4.15 किलोग्राम बीज उपज/पौधा हुई है। पूर्ण–विकसित फलिओं की तुड़ाई नवम्बर–जनवरी महीने में की जाती है तथा 100 किलोग्राम ताजा बीजों से 35–37 किलोग्राम सूखा बीज–दाना प्राप्त होता है। कुमट एएचएएस–1 के ताजा बीजों के 100 ग्राम भाग में 64 प्रतिशत जल एवं 36 प्रतिशत सूखा–पदार्थ होता है। इस सूखे खाद्य पदार्थ के 100 ग्राम भाग में 30.4 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 32.2 प्रतिशत प्रोटीन, 8.3 प्रतिशत वसा, 12.6 प्रतिशत रेशा, 3.78 प्रतिशत कैल्शियम, 0.43 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 4.1 प्रतिशत सूक्ष्म भस्म तत्व होते हैं।

l[kh lkxjh

l[k dj

ग्वारपाठा से स्वास्थ्य सौंदर्य एवं स्वादिष्ट व्यंजन

ih ,y ljkt ,oa /kjUnz flag

ग्वारपाठा या धृतकुमारी मांशल पत्तियों वाला छोटा कमलाकृत, झाड़ीनुमा पौधा है। इसका वानस्पतिक नाम एलॉय बारबाडेन्सिस है जो लिलिएसी परिवार का सदस्य है। ग्वारपाठा की उत्पत्ति गर्म अफ्रीकी देशों में मानी जाती है जिसमें सूखा सहन करने की अद्भुत क्षमता है। ग्वारपाठा को संस्कृत एवं बांगला में घृतकुमारी उर्दू में धीक्वाकरा, राजस्थानी में ग्वारपाठा पंजाबी में कुंवर गंदल, कन्नड़ में कटठालीगिदा, मलयालम में कट्टावला, तेलुगू में चिन्नकलावन्दा, उड़िया में कुमारी, कश्मीरी में मुसव्वार आदि नामों से जाना जाता है। ग्वारपाठा की लगभग 350 प्रजातियां विभिन्न ग्रंथों एवं साहित्य में उल्लेखित है किन्तु भारत में लगभग 8 से 10 प्रजातियां पाई जाती है। सामान्यतः सभी प्रजातियां कसैले स्वाद वाली होती है किंतु कसैलेपन का सांद्रण अलग–अलग प्रजातियों में कम–ज्यादा पाया जाता है। इन्हीं प्रजातियों में एक कम कसैले स्वाद वाली प्रजाति चिन्हित की गई है जिसे राजस्थान में मीठी ग्वारपाठा कहा जाता है। मीठी ग्वारपाठा का सब्जी के रूप में प्रयोग उत्तर–पश्चिमी राजस्थान में प्राचीन काल से हो रहा है। यहॉ पर लोग ग्वारपाठा को गमले में एवं किचन गार्डन में भी लगाते हैं। ग्वारपाठा की यह मीठी प्रजाति ही विभिन्न प्रकार के व्यंजनों के बनाने में उपयोग करना चाहिए। इस मीठी प्रजाति के पौधे केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान, एनबीपीजीआर क्षेत्रीय केंद्र, जोधपुर, राजस्थान, औषधीय एवं सुगंधित पौध शोध निदेशालय, आनंद, गुजरात एवं सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश में उपलब्ध हैं।

पिछले दो दशकों से भारत में ग्वारपाठा के उपयोग का चलन बढ़ा है। ग्वारपाठा मुख्यतः तीन प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है (।) औषधि के रूप में (।।) सौंदर्य प्रसाधनों में एवं (।।।) खाद्य व्यंजन बनाने में। यहां पर यह तथ्य स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहूंगा कि साधारणतया लोगों को यह नहीं पता है कि इसके उपयोग की विधि क्या है, और कौन सी प्रजाति किस प्रकार के उपयोग में लेना चाहिए। प्रस्तुत लेख में केवल खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयोग की जाने वाली प्रजाति के विभिन्न व्यंजनों का उल्लेख किया गया है। यह भी जानना आवश्यक है कि इन व्यंजनों के उपयोग से औषधीय लाभ विशेषकर गठिया रोग, जोड़ों का दर्द, बदन दर्द, त्वचा संबंधी समस्याएं, पेट में कृमि, पेचिश की समस्या, आंतों में घाव, लीवर एवं गुर्दा संबंधी समस्याएं, कोलेस्ट्रॉल स्तर को कम करने में, कैंसर जैसे असाध्य रोग, पाईल्स की समस्या, मूत्र विकार, बुखार, यौन विकार, आदि में स्वतः ही लाभ मिलता रहेगा। कसैली प्रजातियों में मीठी प्रजाति की तुलना में औ ाधीय गुण अधिक होते हैं।

Lokfn"V lCth

ग्वारपाठे की गूदेदार पत्तियों को साफ पानी में अच्छी तरह धो लें। चाकू की सहायता से दोनों कटीले किनारों को अलग कर लें। इसके बाद छोटे–छोटे आयताकार टुकड़े काटकर थोड़ा गर्म पानी में उबालें जिससे टुकड़े नरम हो जाए। उबालते समय पानी में एक चम्मच नमक भी डाल दें। इसके बाद पानी को निथारकर कर इन टुकड़ों को घी या खाद्य तेल में फ्राई करें। सभी आवश्यक मसालों को भी फ्राई करें तथा अंत में उसी में रखा सूखा मेवा भी मिला दें। ग्वारपाठा के फ्राई किए हुए टुकड़ों को भी उसी में

Lkkexh	Ekk=k
ग्वारपाठे की पत्ती	1 किलो
घी या खादय तेल	150 मिली
मेथी	75 ग्राम
जीरा	10 ग्राम
कलौंजी	5 ग्राम

भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

मिला दें। आवश्यक मात्रा में नमक डालकर अच्छी तरह मिलायें एवं ढक्कन बंद करके लगभग 10 मिनट तक पकने दें। पूर्ण पक जाने के बाद उसे ठंडा करलें। अब स्वादिष्ट सब्जी खाने के लिए तैयार है। इस सब्जी का हल्का खट्टा स्वाद महिलाओं को बहुत पसंद है।

धनिया पाउडर	10 ग्राम
हल्दी पाउडर	1 चम्मच
मिर्च पाउडर	1 चम्मच
लौंग	5 नग
तेज पत्ता	3.5 नग
काजू	100 ग्राम
किसमिस पाउडर	50 ग्राम
नारियल पाउडर	50 ग्राम
नमक	स्वादानुसार

fVdkÅ vpkj

ग्वारपाठे का अचार बनाने के लिए पत्तियों को साफ पानी में धो लें एवं पत्तियों पर लगे पानी को सूखने दें। चाकू की सहायता से दोनों कंटीले किनारों को अलग कर लें। इसके बाद छोटे–छोटे आयताकार टुकड़े काटकर थोड़ा नमक मिलाकर रात भर रख दें। सुबह इन टुकड़ों से निकले हुए द्रव को अलग कर लें एवं पुनः नमक तथा हल्दी का पाउडर छिड़क कर रात भर रख दें। मसालों का सरसों का तेल में फ्राई कर ले। इसके बाद जब फ्राई किया हुआ मसाला ठंडा हो जाए तो उसी में ग्वारपाठे के टुकड़ों को अच्छी तरह मिलायें। इस प्रकार मिश्रित ग्वारपाठे के टुकड़ों को शीशे के जार में या चीनी मिट्टी के पात्र में भर दे। सरसों का तेल गर्म करके ठंडा कर लें ऊपर से इसी पात्र में डाल दें जिससे ग्वारपाठे के टुकड़े पूरी तरह तर हो जाए। अच्छी तरह से ठंडा होने के बाद ढक्कन बंद करके रख दें। जब टुकड़े नरम हो जाए तो समझिए अचार खाने योग्य हो गया है। यह आचार साल भर आसानी से रखा जा सकता है।

Lkkexh	Ekk=k
ग्वारपाठे की पत्ती	1 किलो
सरसों का तेल	350 मिली
मेथी टूटी हुई	100 ग्राम
कलौंजी	25 ग्राम
सौंफ	50 ग्राम
हल्दी पाउडर	2 चम्मच
मिर्च पाउडर	2 चम्मच
गर्म मसाला	1 चम्मच
लौंग	5 नग
नमक	स्वादानुसार

dkYM@vyc;k yMM

लड्डू बनाने के लिए ग्वारपाठे की गूदेरार पत्तियों को साफ पानी में धो लें। चाकू की सहायता से दोनों कंटीले किनारे काटकर अलग करें एवं सतह को हल्का खुरच लें। इसके बाद छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर घी या खाद्य तेल में तब तक फ्राई करें जब तक कि हल्का भूरा रंग ना आ जाए। इसके बाद इसे मसलकर लुगदी जैसा बना ले अलग से घी या खाद्य तेल में गेहूं या चने का आटा भूरा रंग आने तक तक फ्राई करें। इसके बाद इसी में चीनी या बुरा तथा ग्वारपाठे की लुगदी को मिला दें। स्वाद के अनुसार सुखा मेवा भी मिला सकते हैं। अब सभी को अच्छी तरह मिलाकर हल्के गर्म दशा में ही लड्डू बनाए। किसी ट्रे या थाली में लड्डू की एक सतह लगाएं रात भर के लिए रख दें। इसके बाद बड़े मुंह वाले जार में ढक्कन बंद करके रख दें। अलबेला लड्डू खाने के लिए तैयार है। लड्डू बनाने की विधि में लड्डू बनाने से पूर्व ही यदि थोड़ा पानी मिलाकर और पका लें तो हलुआ बन जाता है। और हलवा बनाते समय आटे के स्थान पर यदि सूजी का प्रयोग करें तो हलुआ और स्वादिष्ट बनता है हलुआ में सूजी और आटे का अनुपात 2:1 का रखा जाता है।

Lkkexh	Ekk=k
ग्वारपाठे की पत्ती	1 किलो
घी या खाद्य तेल	250 मिली
गेहूँ या चने का आटा	1 किलो
चीनी या बूरा	1 किलो
सूखा मेवा	स्वादानुसार

ikf"Vd lykn

ग्वारपाठे की गूदेरार पत्तियों को साफ पानी में धो लें। चाकू की सहायता से दोनों कटीले किनारे काटकर अलग करें एवं सतह को खुरच लें। इसके बाद विभिन्न आकृति के छोटे–छोटे टुकड़े काट लें। काली मिर्च व नमक स्वादानुसार छिड़क कर खायें। प्रारंभ में ज्यादा सलाद ना खायें अपितु ग्वारपाठे को सलाद का एक हिस्सा बनाएं जैसे मूली, गाजर, खीरा, चुकंदर के साथ ग्वारपाठे के कुछ टुकड़े मिलाकर खायें स्वाद अच्छा लगने लगे तो इस के कुछ टुकड़े नियमित रूप से भोजन से पूर्व खायें ज्यादा कसैला महसूस होने पर हल्का छिलका उतारकर नींबू की 4–6 बूंद डालकर प्रयोग करें तो स्वाद और अच्छा लगता है। धनिया की पत्ती एवं हरी मिर्च इसके साथ अच्छी नहीं लगती। हरी मिर्च की चटनी बनाकर ग्वारपाठे के सलाद में मिलाकर खाएं तो स्वाद अच्छा लगेगा।

Lkkexh	Ekk=k
ग्वारपाठे की पत्ती	चौथाई पत्ती
काली मिर्च पाउडर	स्वादानुसार
नमक	स्वादानुसार
नींबू का रस	4–6 बूंद
अन्य घटक	खीरा, गाजर, मूली, चुकन्दर, करौंदा, हरी मिर्च

Lkkjka'k

भारतीय ग्वारपाठा से अनेक स्वादिष्ट एवं पोषक युक्त व्यंजन जैसे सब्जी, अचार, सलाद लड्डू, हलुआ, बरफी आदि बनाए जाते हैं। व्यंजन औषधीय लाभ के साथ–साथ सौंदर्य वृद्धि में भी गुणकारी है। पोषण की दृष्टि से ग्वारपाठे में विटामिन बी 12, सी. ई एवं ए. प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, 10 से ज्यादा प्रकार के खनिज, 20 प्रकार के एमिनोएसिड, 23 प्रकार के पॉलिपेप्टाइड्स आदि पाये जाते हैं। चूंकि ग्वारपाठा की खेती में किसी प्रकार के कीटनाशक एवं फफूंदनाशक रसायनों का प्रयोग नहीं किया जाता है अतः ग्वारपाठा शुद्ध कार्बनिक उत्पाद है। गृह वाटिका में एक छोटी क्यारी में एक परिवार के लिए पर्याप्त मात्रा में उगाया जा सकता है। इसकी खेती घरेलू स्तर पर प्रयोग के लिए गमलों में भी की जा सकती है।

fVdkÅ vpkj

dkYM@vycyk yMMw

केर : मरुस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र की एक बहुउद्देशीय झाड़ी

dey'k dqekj ,oa Mh- d- lekfn;k

केर उत्तर पश्चिम भारत के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में, मुख्य रूप से पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तान में पाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण अवप्रयोगी फल है। भारत में केर, राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और पंजाब राज्यों के बेकार पड़े क्षेत्रों, खेतों के किनारों, गोचर एवं बंजर भूमि पर इसके पौधे प्राकृतिक रूप से पाये जाते हैं। इसे स्थानीय रूप से राजस्थान में कैर, गुजरात में केर, उत्तर प्रदेश में करील, हरियाणा में टींट, दिल्ली एवं पंजाबी में डेल्ला और पश्चिमी महाराष्ट्र में नेप्ती के रूप में जाना जाता है। यह पश्चिमी राजस्थान एवं गुजरात के ग्रामीण इलाकों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इससे मानव जीवन की अनेकों आवश्यकताओं जैसे सब्जी, अचार, लकड़ी, ईंधन इत्यादि की पूर्ति होती है। यह आमतौर पर जैव–बाड़ के रूप में उपयोग किया जाता है, इसकी दीमक प्रतिरोधी लकड़ी का उपयोग ग्रामीण लोग हैंडल, कार्टव्हील और अन्य उद्देश्यों के लिए करते हैं। औषधीय रूप से इसका उपयोग हृदय और गैस्ट्रिक परेशानियों के इलाज के लिए किया जाता है।

यह एक झाड़ीदार वनस्पति है जिसकी ऊँचाई 4–5 मीटर तक होती है। फूल गुलाबी, नारंगी और कभी कभी पीले रंग के होते हैं और फल पकने से पहले तक हरे तथा पकने पर लाल व गुलाबी होते हैं और सूखने पर काले हो जाते हैं। यह शुष्क वातावरण में अच्छी तरह से बढ़ता है। केर का कोई व्यवस्थित वृक्षारोपण नहीं है लेकिन शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से बढ़ता हुआ पाया जाता है। इसे बीज, जड़–प्रढोह (रूट सकर) और तने की कलम के माध्यम से प्रवर्धित किया जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में पौधों को जुलाई–सितंबर और फरवरी के दौरान खेत में लगाया जाता है। मिट्टी, चिकनी मिट्टी एवं गोबर खाद का 1: 2: 1 अनुपात का मिश्रण रोपण/ स्थापना के लिए सबसे अच्छा होता है। उच्च चिकनी मिट्टी की मात्रा केर स्थापना हेतु बेहतर रहती है। लगभग छह महीने के बीजू पौधों की ऊँचाई 25–30 सेमी और वानस्पतिक रूप (कलम) से प्रवर्धित लगभग 18 महीने पुराने पौधों को 5 X 5 मीटर के अंतर पर खेत में लगाया जाता है। बेहतर बाग स्थापना के लिए प्रारंभिक अवस्था में पौधों को साप्ताहिक सिंचाई दी जानी चाहिए। केर का एक बेहतर जीनोटाइप 'एएचसीडी–1' (आईसी सं.–0634593) को भाकृअनुप.–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछ्वाल, बीकानेर से चिन्हित किया गया है, जो पूरी तरह से काँटे रहित है जिससे औसतन 8–10 किग्रा/पौधा अपरिपक्व, मटर के आकार के फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार, इस जीनोटाइप से प्रति हेक्टेयर 30–40 क्विंटल तक अपरिपक्व फलों को तोड़ा जा सकता है।

केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर प्रक्षेत्र पर केर 'एएचसीडी–1' में पुष्पन का दृश्य

केर के अपरिपक्व फलों (मटर के आकार के) की तुड़ाई हाथ से की जाती है। इस प्रकार फल तोड़ने पर अधिक ग्रेडिंग की आवश्यकता नहीं होती है। पौधे काँटेदार होते हैं, इसलिए, फलों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। फलों की तुड़ाई का मुख्य समय अप्रैल–मई एवं सितम्बर– अक्टूबर होता है। अपरिपक्व फल, कोमल और हरे रंग के होते हैं, तब वे अचार और सब्जी बनाने के लिए उपयोग में लिए जाते हैं। अपरिपक्व फलों का उपयोग तुड़ाई के बाद दो तरह से किया जा सकता है जैसे कि ताजा फल सब्जी बनाने और निर्जलित फल अचार बनाने के लिए। मुख्य रूप से फलों को अच्छी गुणवत्ता का अचार बनाने के लिए संसाधित किया जाता है और राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में एक पारंपरिक स्वादिष्ट सब्जी 'पंचकुटा' में मुख्य घटक के रूप में उपयोग किया जाता है। केर के अपरिपक्व हरे फलों के साथ–साथ गुलाबी /लाल पके फलों का उपयोग विभिन्न तरीकों से किया जाता है।

भाकृअनुप.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

केर 'एएचसीडी–1' में सघन फलत केर के ताजे कच्चे या पके फलों को तोड़ने के बाद कसैले स्वाद के कारण सीधे उपयोग में नहीं लिया जाता किन्तु प्रसंस्करण के बाद अनेकों प्रकार के उप–उत्पादों में बदलकर उपयोग करते हैं। प्रसंस्कृत फल या तो बर्तन या प्लास्टिक के कंटेनर में संग्रहित करते हैं, जबकि प्रसंस्करित सूखे फल लचीले पॉलीबैग में एक साल तक बिना किसी खराब गुणवत्ता के संग्रहित हो जाते हैं। अपरिपक्व केर फलों को सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है जो देश के रेगिस्तानी और अर्ध–रेगिस्तानी इलाकों में लोगों के आहार का एक अभिन्न हिस्सा है, पके मांसल फलों को पक्षियों द्वारा खाया जाता है। अपरिपक्व फलों को मुख्य रूप से अचार में या सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है, जबकि मीठे और पके फलों को अस्थानीय बच्चों द्वारा उपयोग किया जाता है। परिपक्व पूर्ण विकसित फल में ग्लूकोसाइनोलेट्स का उच्च स्तर होता है और इसे केवल उचित प्रसंस्करण के बाद ही सीमित स्तर पर उपयोग किया जा सकता है। अपरिपक्व, मटर के आकार के केर फल अत्यधिक पौष्टिक और औषधीय रूप से महत्वपूर्ण होते हैं और मुख्य रूप से सब्जी और अचार बनाने के लिए उपयोग किए जाते हैं। इसके फलों में विभिन्न प्रकार के अल्केलॉइड, टरपेनोइड्स, ग्लाइकोसाइड्स, असंतृप्त अम्ल (फैटी एसिड) और प्रतिउपचायक (एंटीऑक्सिडेंट) होते हैं। केर में कई औषधीय गुण होते हैं जैसे कि प्रतिजैविक, मधुमेहरोधी, कृमिनाशक, जीवाणुरोधी, फफूँदरोधी, पीड़ाहर, आमवातरोधी, कैंसररोधी, सूजनरोधी इत्यादि।

dj ^,,plhMh&1* d vifjiDo vkj ifjiDo Qy

dj ^,,plhMh&1* d cht ,o dye ls r;kj ik/k

फोगः थार मरुस्थल की एक बहुपयोगी दुर्लभ वनस्पति

eqd'k dekj cjoky] txu flg xkjk] prjke ,o jes'k dekj

फोग जिसका वानस्पतिक नाम 'कॉलिगोनम पॉलीगोनोइड्स लिन' है, जो कि पोलिगोनैसी परिवार के अंतर्गत आता है। पोलिगोनैसी फैमिली को बकव्हीट, स्मार्टवीड या नॉटवीड परिवार के रूप में भी जाना जाता है। फोग को स्थानीय भाषा में 'फोग' 'फोगला' 'फोगारो' आदि नामों से भी जाना जाता है। आमतौर पर फोग एक छोटा अरोमिल, सर्दियों में पतझड़ करने वाला सफेद रंग के गाँठदार और नाजुक शाखाओं के साथ 3–4 फीट ऊँचा बारहमासी झाड़ी के रूप में पाया जाता है। कभी–कभी इसकी फोग 2–3 फीट मोटे तने के साथ 12–15 फीट ऊंचाई तक के पेड़ के रूप में भी पाया जाता है। फोग अपने प्राकृतिक आवास थार रेगिस्तान के गर्म शुष्क क्षेत्र में अत्यधिक सूखा, ठंढ एवं गर्म तापमान के प्रति प्रतिरोधक होता है। यह किसी भी प्रकार की वनस्पति की अनुपस्थिति में भी बहुत अच्छी तरह से बढ़ने के साथ–साथ थार रेगिस्तान के रेतीले भागों के प्रमुख बायोमास उत्पादक है। यह रेगिस्तान को फैलने से रोकने वाले पादप समुदाय का प्रमुख घटक होता है तथा अनुदैर्ध्य, अनुप्रस्थ एवं परवलयिक टीलों पर आसानी से उग जाता है। फोग का वानस्पतिक वर्गिकरण निम्नानुसार हैः–

फोग की झाड़ी

फोग का वानस्पतिक वर्गिकरण

किंगडम (किंगडम)	:	प्लेंटाई (Plantae)
क्लैड (Clade)	:	ट्रेकिओफाइट्स(Tracheophytes)
क्लैड (Clade)	:	एंजियोस्पर्म (Angiosperms)
क्लैड (Clade)	:	यूडिकॉट्स (Eudicots)
कुल (Order)	:	कैरिओफाईलैलस (Caryophyllales)
परिवार (Family)	:	पोलिगोनैसी (Polygonaceae)
जाति (Genus)	:	कॉल्लीगोनम (Calligonum)
प्रजाति (Species)	:	पोलिगोनोइड्स (polygonoides)

Qkx dk HkkSxksfyd foLrkj

भौगोलिक रूप से फोग का फैलाव विश्वव्यापी है, जो उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से लेकर आर्कटिक तक पाया जाता है। लेकिन इसकी अधिकांश प्रजातियां उत्तरी समशीतोष्ण क्षेत्र में ही केंद्रित पायी जाती हैं। प्राकृतिक रूप से पोलिगोनैसी फेमिली की चार प्रजातियाँ जिनमें से कॉलिगोनम की एक, पॉलीगोनम की चौदह, रुमेक्स की दो तथा एमेक्स की एक प्रजाति कि उत्पत्ति स्वाभाविक रूप से राजस्थान से हुई है। इन चार प्रजातियों के अलावा, पोलिगोनैसी फेमिली की छः और प्रजातियों को सजावटी पौधों के रूप में उगाया जाता है। यह पूरे दक्षिणी यूरोप, उत्तरी अफ्रीका, पश्चिमी और मध्य एशिया में मुख्य जैव विविधता केंद्र के रूप में फैला हुआ है। फोग पश्चिमी एशिया के मरुस्थलीय क्षेत्रों से भारत के दक्षिणी पंजाब और पश्चिमी राजस्थान, पाकिस्तान में बूगीटी हिल, पूर्वोत्तर अफगानिस्तान, फारस, अर्मेनिया और सीरिया में फैला हुआ है। फोग को थार मरुस्थल कि एक बहुत कि प्रमुख पादप प्रजाति का दर्जा दिया गया है। ऐतिहासिक रूप से, फोग सक्रिय रेत के टीलों में प्रबल रूप से पाई जाने वाली बारहमासी झाड़ी थी, जो अधिकांशतः रेगिस्तानी क्षेत्र में रेत

भाकृअनुप.–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

के टीलों को स्थिर रखती थी। यह रेगिस्तान के रेतीले क्षेत्रों में किसी भी प्रकार की वनस्पति की अनुपस्थिति में प्रमुख बायोमास उत्पादक के रूप मे पहचान रखता है। फोग की जड़ों से बने चारकोल की बहुत अधिक मांग के साथ–साथ अत्यधिक चराई और रेत खनन के कारण इसका क्षेत्र बहुत तेजी से घटता जा रहा है। भारतीय शुष्क क्षेत्र में इसका बड़े पैमाने पर गैर न्यायिक तरीके से दोहन होने के कारण फोग को आई.सी.यू.एन.(ब्ब्छ) की रेड डाटा बुक में लुप्तप्राय पौधों की प्रजातियों के रूप में उद्घृत किया गया है।

राजस्थान का पश्चिमी भाग भारत का शुष्क क्षेत्र है, जो थार मरुस्थल का प्रमुख भाग है। यह 240 उत्तर से 35.50 उत्तर तथा 70.70 पश्चिम से 76.20 पश्चिम (अक्षांश–रेखांश) के मध्य स्थित है, जो राजस्थान के 12 जिलों बाड़मेर, बीकानेर, चूरू, जैसलमेर, जालोर, झुंझुनू, जोधपुर, नागौर, पाली, सीकर, श्री गंगानगर और हनुमानगढ़ में फैला हुआ हैं। राजस्थान के बाड़मेर, बीकानेर, चूरू, जैसलमेर, जयपुर और जोधपुर जिलों में फोग बहुतायत से पाया जाता है, जंहा यह एक विशाल वनस्पति के रूप में रेत के टीलों पर उगता है। यह झाड़ी अन्य जगहों की तुलना में जैसलमेर और बीकानेर जिलों में अधिक प्रमुखता से पाई जाती है।

Qkx dk vkfFkd egRo

मरुस्थल में प्रायः आने वाले अकालों के दौरान यह जीवन निर्वाह के लिए भोजन का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत होता है। व्यावसायिक और औषधीय गुणों के कारण फोग बहुत उपयोगी होता है। इसके अधपक्के फल बहुत ही पौष्टिक होते हैं, इनमें 18 प्रतिशत प्रोटीन, 17 प्रतिशत शर्करा, 6.4 प्रतिशत वसा, 9.1 प्रतिशत रेशे, 0.7 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम विटामिन बी, 647 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम कैल्शियम, 420 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम फॉस्फोरस तथा 12.7 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम लोहा पाया जाता है। इसके साथ ही फोग के सभी भागों मे जैव सक्रिय तत्व जैसे कि फिनोल, फ्लावोनोइड्स तथा ऑक्सीकरण रोधी पदार्थ बहुतायत से पाये जाते हैं, जो कि बहुत सारी बीमारियों से बचाने में सहायक होते हैं।

भारत के शुष्क क्षेत्रों में अकाल के समय पुष्प कलिकाओं और रसीले फलों को भोजन के रूप में खाया जाता है। पुष्प कलियों को स्थानीय भाषा में 'लैसन' कहा जाता है, जिसको रेगिस्तानी क्षेत्र में ग्रीष्मकाल के दौरान बटर मिल्क (मट्ठा) एवं नमक के साथ मिलाकर पिया जाता है। यह शरीर को शीतलन प्रभाव देती हैं तथा लू से बचने मे मदद करता है। स्थानीय लोग फोग की पुष्प कलिकाओं को रोटी के साथ मक्खन या नारियल के तेल में पकाकर कई प्रकार स्वादिष्ट व्यंजन भी तैयार करते हैं। रेगिस्तान के मूल निवासि फोग की जड़ों और मोटी शाखाओं का उपयोग ईंधन के रूप में करते है। फोग पौधे की हरी शाखाएँ जो पौष्ठिकता से भरपूर होती हैं, ऊंट और बकरीयों के लिए चारे के रूपमे काम मे ली जाती है। ग्रामीण इलाकों में इसकी सुखी लकड़ीयों का उपयोग झोपड़ियां, आश्रय तथा कुओं के मचान बनाने में किया जाता है। पौधे का जलीय पेस्ट अफीम की भारी खुराक और ऑक के जहरीले प्रभावों के विरुद्ध एंटी डॉट के रूप में कार्य करता है। साथ ही पशुओं में मूत्र संबंधी समस्याओं को ठीक करने के लिए को फोग का काढ़ा दिया जाता है। फोग की पुष्प कलिकाएँ अत्यधिक पौष्टिकता के सह पाचन तंत्र की सुदृढ़ करने के साथ ही कई सामान्य बीमारियों जैसे कि अस्थमा, खांसी, सर्दी एवं टाइफाइड में भी बहुत लाभदायक होती हैं। औषधीय रूप से इसका उपयोग एक्जिमा के इलाज में लिए किया जाता है। शाखाओं के रस का उपयोग आंखों को ठण्डक देने के लिए और बिच्छू के डंक के खिलाफ एंटी डॉट का काम करता है। राजस्थान के भील और गरासिया आदिवासी लोग फोग के पोधे को उबाल कर बनाए काढ़े का उपयोग गले–मसूड़ों के लिए गार्गल के रूप में करते हैं।

फोग का पौधा जैव सक्रिय योगिकों का बहुत ही समृद्ध स्रोत होता है। जैव सक्रिय योगिकों मे फिनोल, फ्लेवोनोइड्स, एल्केलॉइड्स, टैनिन, स्टेरॉयड और टेरपीनोइड्स मुख्य रूप से पाये जाते हैं। इसमे कैलीगोनोइड्स, टेराकोसन–4–ऑलिड, स्टेरॉइडल एस्टर, बीटा–साइटोस्टेरोल ग्लूकोसाइड और युरसोलीक भी पाये जाते हैं। इसके अलावा फोग कि पुष्प कलिकाओं मे कुछ आवश्यक तेल भी पाये जाते है, जिनमे अपने शरीर के लिए आवश्यक ओमेगा–3 वसीय अम्ल जैसे कि 9,12,15–ऑक्टाडेक्ट्रीयनोइक एसिड भी पाया जाता है। इन जैव सक्रिय योगिकों कि प्रचुरता के कारण फोग बहुत सारी बीमारियों जैसे कि केंसर, ह्रदय से सबंधित, अल्जीमेर्स एवं मधुमेय, आदि बीमारियों से बचाने एवं ठीक करने में बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है। इसके साथ कि इसके जैव सक्रिय योगिकों का उपयोग कार्यात्मक भोजन और पोषणौषधी निर्माण में बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। इस बदलती जलवायु स्थिति मे पादप जनित जैव सक्रिय यौगिकों के निर्माण कि तत्काल आवश्यकता है, इसलिए फोग एक प्राकृतिक, प्रभावी और सुरक्षित एंटीऑक्सिडेंट स्रोत हो सकता है, जो कि नई दवाओं के निर्माण के साथ खाद्य पदार्थों के एंटीऑक्सिडेंट बायो–फोर्टिफिकेशन एवं न्यूट्रास्यूटिकल एजेंट के रूप में बहुत लाभप्रद होगा।

इस तरह से यह कहा जा सकता है कि फोग का

संरक्षण और इसकी खेती थार रेगिस्तान के ग्रामीण परिवेश में ही नहीं बल्कि, पूरे क्षेत्र के लिए जीवन रेखा साबित हो सकती है। इसलिए, फोग की उपर्युक्त उच्च मूल्यवान आर्थिक एवं सामाजिक उपयोगिताओं के कारण भारत के थार रेगिस्तान में इस पौधे के संरक्षण और खेती की बहुत आवश्यकता है।

फोग की स्वस्थ एवं प्रौढ़ झाड़ी

शुष्क क्षेत्र में सब्जी हेतु ग्वारफली की उत्पादन तकनीकी

vt; dqekj oekZ Mh- d- lekfn;k] ih- ,l- xqtj] guqeku jke ,oa xaxk/kjk d-

देश के उत्तर–पश्चिमी गर्म शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्र विशेषकर राजस्थान, गुजरात एवं इसके आस–पास जिसमें मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र आते हैं, राज्यों की परम्परागत तथा वर्षा आधारित खेती में बाजरा, ज्वार, मक्का आदि के साथ–साथ दलहनी व तिलहनी फसलों की खेती की जाती है। इस परम्परागत मिश्रित खेती में ग्वारफली एक बहुउद्देशीय फसल है जिसकी खेती मुख्यतः दाना, सब्जी (हरी फलियाँ), चारा, गम, हरी खाद, भूमि संरक्षण आदि के लिए की जाती है। प्रोटीन एवं रेशा युक्त होने के कारण ग्वार फली की सब्जी शाकाहारी लोगों का संतुलित आहार है। मरु धरा के निवासी ताजा व सूखी ग्वार फली को अन्य सब्जियों के साथ मिलाकर तरह–तरह की सब्जियाँ बनाते हैं। ग्वार एक सूखा सहिष्णु एवं गहरी जड़ों वाली फसल है। कम उर्वराशक्ति वाली रेतीली मिट्टी में सरलता से होने के कारण ग्वार मरुधरा की एक विशेष फसल है। कम वर्षा व विपरीत परिस्थितियों वाली जलवायु होने पर भी यह भरपूर पैदावार देती है। वर्तमान में ग्वार फली की वर्षा एवम् सिचाई आधारित वैज्ञानिक ढंग से उन्नत खेती कर अच्छी आय अर्जित की जा सकती है।

iks"k.k egRo

ताजा फलियों को विविध प्रकार की सब्जी बनाने हेतु उपयोग में लिया जाता है। वर्तमान समय में गुणवत्तायुक्त संतुलित आहार में प्रोटीन की उचित मात्रा के लिए सब्जी वाली फलियों की मांग बढ़ती जा रही है किन्तु अभी तक इसकी ज्यादातर वर्षाकालीन खेती ही हो रही है। ग्वारफली प्रोटीन का एक समृद्ध स्रोत है। यह राइबोफ्लेविन, नियासिन, विटामिन बी 6, विटामिन ए, विटामिन सी, थायमिन, कैल्शियम, आयरन, फास्फोरस, पोटेशियम, तांबा, फोलेट, मैग्नीशियम और मैंगनीज जैसे खनिजों का भी एक अच्छा स्रोत है।

tSo fofo/krk ,oa fdLe v/;;u

राजस्थान व अन्य प्रदेशों में ग्वारफली की अधिकांश किस्में दलहन वाली हैं परंतु इन क्षेत्रों में कई प्रकार के जननद्रव्य पाये गए हैं जिनकी फली व दाना सब्जी उपयोग हेतु उपयुक्त हैं। विगत 20 वर्षों में संस्थान के बीकानेर व गोधरा में इस फसल की सब्जी उपयोगी किस्में विकसित करने हेतु कार्य किए गए हैं एवं कई वर्षों तक जननद्रव्य को जांचा गया तत्पश्चात सब्जी हेतु ग्वारफली की किस्म 'थार भादवी' किस्म विकसित की गई। देश में सब्जी वाली ग्वार फली फसल के लिये पूसा मौसमी, पूसा सदाबहार, पूसा नवबहार, दुर्गा बहार, शरद बहार, एम–83, गोमा मंजरी, ए.एच.जी.–13, आदि किस्में उपयुक्त हैं। शुष्क क्षेत्र मे ग्वारफली की खेती हेतु भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर द्वारा विकसित 'थार भादवी' किस्म सर्वाधिक उपयुक्त है। इसके साथ ही एक और लाइन ए.एच.जी.–23 की पहचान भी की गई है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैः

Fkkj Hkknoh % यह शुष्क क्षेत्र हेतु एक उच्च उपज देने वाली किस्म है। पौधे की ऊंचाई 65–70 सेमी तक होती है। सब्जी हेतु फसल की पहली तुड़ाई बुवाई के 55–60 दिन बाद प्रारंभ हो जाती है। हरी फली की उपज क्षमता 75 ग्राम प्रति पौध और 65–125 क्विंटल प्रति हे. है।

,-,p-th-&23 % यह मध्यम आकार की हंसिये (दरांती) के आकार की सब्जी की गुणवत्ता वाली फली के लिए विशिष्ट चयन है, जो बारानी खेती के लिए उपयुक्त है और संसाधन की कमी वाले गर्म शुष्क वातावरण में व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त है। सब्जी हेतु फसल की पहली तुड़ाई बुवाई के 56.60 दिन बाद प्रारंभ हो जाती है। विपणन योग्य फली उपज क्षमता 114.5–170.8 ग्राम प्रति पौधे है। बिक्री योग्य कच्ची अवस्था में सब्जी की गुणवत्ता वाली फली हल्के हरे रंग की और 7.67 सेमी लंबाई, 0.70 सेमी चौड़ाई और 1.34 ग्राम वजन की होती है।

थार भादवी

भाकृअनुप.–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान

ए.एच.जी.–23

[kr dh r;kjh

ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई हेतु नवम्बर–दिसम्बर में जुताई कर खेत को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए। इस समय खेत की जुताई करने से सर्दी की ऋतु में होने वाली मावठ का पानी खेत में ही संचित हो सकेगा जो कि ग्रीष्मकालीन फसल के लिए लाभदायक रहता है। वर्षाकालीन ग्वार फसल हेतु जुताई जून के अंतिम पखवाड़े में करें तथा 200 से 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की सड़ी खाद मिलाकर खेत में पाटा लगाकर तैयार रखें। खेत को समय पर तैयार रखने से जुलाई में वर्षा ऋतु के आगमन के साथ ही फसल की बुवाई समय पर सम्भव हो सकती है। वर्षा आधारित ग्वार फली उत्पादन हेतु खेत का चयन एवं समय पर उसकी तैयारी पर विशेष ध्यान देकर फसल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

[kkn ,oa moZjd

सामान्य रूप से जहाँ पर मिट्टी की जाँच नहीं हो पाती है वहाँ सब्जी वाली ग्वार फली की खेती के लिए प्रति हेक्टेयर कम से कम 200 से 250 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद, 25 से 30 किलो नाइट्रोजन, 40 किलो फॉस्फोरस व पोटाश देने से उत्पादन अच्छा होता है। गोबर की खाद को खेत की अंतिम जुताई से पूर्व समान रूप में बिखेर कर ही जुताई करनी चाहिए। जबकि उर्वरकों को खेत की अंतिम तैयारी के समय भूमि में डालना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई से पहले खेत की तैयारी के समय दें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा को युरिया के रूप में तीन भागो में बाँटकर फसल बुवाई के 18–25 दिनों बाद, दूसरी 30–35 दिनों पर जब पौधों में फैलाव एवम् फूलो का आना प्रारम्भ हो तथा अंतिम भुरकाव 45–50 दिनों पर जब फलियाँ बनना प्रारम्भ होती हैं, उस समय देना सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है। बूंद–बूंद प्रणाली में यूरिया का उपयोग 4–6 भागो में विभक्त कर 10–12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई के साथ करना सर्वाधिक उपयुक्त रहा है।

Qly cokbZ o fl apkbZ rduhd

ग्वार गर्म जलवायु का पौधा है। सूखे व गर्म मौसम के लिए यह एक उपयुक्त फसल है। अत्यधिक वर्षा व ठण्ड को यह सहन नहीं कर पाती है। शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों मे जहाँ वर्षा कम परन्तु एक नियमित अन्तराल पर हो तो ग्वारफली की फसल से अत्यधिक उत्पादन लिया जा सकता है। उन प्रदेशों में जहाँ अत्यधिक गर्मी पड़ती है एवं सिंचाई की सुविधा है वहां ग्रीष्मकालीन फसल से भी अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। प्रायः सभी तरह की मिट्टियों में इसकी खेती सुगमता से की जा सकती है परन्तु उचित जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए उपयुक्त मानी गई है। राजस्थान के उत्तर–पश्चिमी भू–भाग के रेतीले टीलों वाली मिट्टी भी ग्वार फसल के लिए उपयुक्त है। ऐसी मृदा जिसका पी. एच. मान. 8.5 तक हो वहाँ भी ग्वार फली की खेती सफलतापूर्वक होती है।

cokbZ dk le; ,oa cht dh ek=k

ग्वार फली की वर्षाकालीन फसल के लिए जून–जुलाई में तथा ग्रीष्मकालीन फसल के लिए फरवरी–मार्च मे बुवाई करना उपयुक्त रहता है। उन्नत फसल तकनीक से बुवाई हेतु 12–15 किलो बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

cht mipkj

ग्वार पौधों की जड़ों में अधिकतम गाँठों के बनने व अधिकतम वातावरणीय नत्रजन भूमि में स्थापित करने के लिए बीजों को उचित प्रकार के राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना आवश्यक है। इसके लिए सर्वप्रथम 2 ग्राम कैप्टान या कार्बेन्डाजिम नामक दवा से प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। इसके बाद बुवाई से पहले बीजों को 40 ग्राम राइबोजियम कल्चर प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।

cokbZ dh fof/k

ग्वारफली के बेहत्तर उत्पादन के लिए हमेशा पंक्तियों में बुवाई करनी चाहिए। बीजों को कुड़ो में बोया जाता है तो फसल की देखभाल करने में आसानी रहती है। इस विधि में कुड़ो में पौधों की जड़ों के पास वर्षा जल अधिक संग्रहित होता है। पौधों की बढ़वार अच्छी होती है और पैदावार ज्यादा मिलती है। बुवाई के लिए सीड ड्रील का प्रयोग भी अच्छा रहता है। ग्वार की खेती के लिये बुवाई छिटकाव या पंक्तिनुमा कतार विधि द्वारा की जाती है।

बीजों की बुवाई पंक्तियों में 30 से.मी. की दूरी पर करनी चाहिए और पौधों का पंक्तियों में आपसी अंतर 15 से.मी. रखना चाहिए।

fl pkb ic/ku

शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों में यदि वर्षा ऋतु में उगाई जाने वाली ग्वार फली की फसल में निश्चित अंतराल पर उचित वर्षा होती रहे तो अतिरिक्त सिंचाई जल की आवश्यकता नहीं होती है। प्रायः इसे वर्षाकालीन फसल के रूप में ही उगाया जाता है। समय पर वर्षा न हो या वर्षा अन्तराल 18–21 दिन से अधिक हो तो आवश्यकता के अनुरूप 2–3 जीवनदायी सिंचाई करनी चाहिए। सब्जी वाली फसल में सिंचाई का विशेष योगदान होता है। फलियाँ बनने के समय भूमि में नमी की कमी नहीं होनी चाहिए अन्यथा पैदावार व फलियों की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। ग्रीष्मकालीन फसल में गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए सिंचाई जलप्रबंधन बहुत आवश्यक है।

इस ऋतु में सिंचाई 7 से 10 दिन के नियमित अंतराल पर करनी चाहिए। सिंचाई हल्की व कम गहरी होनी चाहिए। फव्वारा विधि से सिंचाई करना अधिक उपयुक्त पाया गया है।

भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिन्दी महानदी। हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाने वाली भाषा है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रुप में स्वीकार करना चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि हिन्दी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

–रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में प्याज की खेती

[1]vkj- lh- lkoy] [1]'kh'k jke ;kno vkj [2]lh- ,y- ehuk

[kr dk puko ,oa r;kjh

प्याज की खेती किसी भी जीवांश युक्त मिट्टी में की जा सकती है परन्तु इसकी अधिक पैदावार लेने के लिए हल्की दोमट या चिकनी बलुई मिट्टी सर्वोत्तम मानी गई हैं। अधिक क्षारीय या अम्लीय मिट्टी प्याज उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं हैं। खेत में 2–3 बार कल्टीवेटर चलायें व फसल के बचे भाग, खरपतवार आदि इकट्ठा कर कम्पोस्ट को गड्डे में डाल देवें। दूब या मोथा आदि खरपतावारों को जड़ सहित निकालकर जला देना चाहिए। खेत में 25–30 टन अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद डालकर उसे हैरो से मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। खेत में अंतिम जुताई से पहले सिफारिश की गई उर्वरकों की मात्रा को समान रूप से बिखेर देना चाहिए फिर जुताई करके खेत में पाटा अवश्य लगायें। इसके पश्चात् जमीन के ढ़ाल के अनुसार 4–6 मीटर की दूरी पर लम्बवत् मेड़ बनाकर 2ग 6 मीटर आकार की क्यारियाँ बनानी चाहिए। जहाँ पर फव्वारें से सिंचाई करनी हो वहॉ पर समतल क्यारियाँ इस प्रकार बनानी चाहिए कि सिंचाई ठीक प्रकार से की जा सकें। अच्छी क्यारियाँ बनाने के लिए आवश्यक है कि भूमि भुरभुरी हो तथा भूमि में नमी अधिक नहीं हो।

ik/k'kkyk dh r;kjh

एक हेक्टेयर में प्याज की खेती करने के लिए 1000–1200 वर्गमीटर जमीन में बीज की बुवाई कर नर्सरी तैयार करनी चाहिए। पौधशाला सिंचाई के श्रोत के समीप होनी चाहिए। ऐसी जमीन जहाँ पर मोथा या दूब या कोई अन्य बहुवर्षीय खरपतवार हो, उसमें नर्सरी नहीं लगानी चाहिए। भूमि की तैयारी करते समय इसमें अच्छी प्रकार से सड़ी गोबर की खाद डालें व खाद डालने के बाद उगे खरपतवार को निकालने के बाद ही बीज की बुवाई करनी चाहिए। पौधशाला में बीज बुवाई उठी हुई क्यारियों (एक मीटर चौड़ाई, लम्बाई 3–4 मीटर तथा ऊँचाई 15 से.मी.) में करनी चाहिए। उठी क्यारियों में पौध मोटी तथा जल्दी तैयार होती है तथा रोपाई के लिए पौधे उखाड़ने में आसानी होती हैं। यदि उठी हुई क्यारियाँ नहीं बनानी हो तो भी 1 मीटर चौड़ी तथा 3–4 मीटर लम्बी क्यारियाँ बनाकर उसमें पर्याप्त मात्रा में गोबर की खाद तथा उर्वरक मिलाने चाहिए। इन क्यारियों में छिटकवाँ विधि के स्थान पर पंक्तियों में बुवाई करनी चाहिए तथा फिर सिंचाई करनी चाहिए। उठी हुई क्यारियों में भूमि की तैयारी करते समय 20–25 किग्रा. अच्छी तरह से सड़ी गोबर की खाद तथा इन क्यारियों में पंक्तियाँ बनाकर बुवाई कर मिट्टी से ढक देना चाहिए। इसके पश्चात झारे/फव्वारे से पानी देना चाहिए। बीज उगने तक झारे/फव्वारे से सिंचाई करनी चाहिए।

एक हेक्टेयर भूमि में खेती के लिए अच्छी अंकुरण क्षमता वाला 8–10 किग्रा बीज पर्याप्त होता है। साधारणतः एक वर्ग मीटर क्षेत्र में 10 ग्राम बीज डालना चाहिए। बीज अंकुरण के समय या इसके पश्चात् आर्द्रगलन रोग का प्रकोप होता हैं, इसके नियंत्रण के लिए बुवाई से पूर्व बीज को 2 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम की दर से अवश्य उपचारित करें। नर्सरी में अच्छी तरह से निराई–गुड़ाई, फंफूदी नाशक आदि के छिड़काव तथा रोपाई के लिए पौध उखाड़ने में सुविधा हेतु बीजो को 4–5 से.मी. की दूरी पर कतारों में 2–3 से.मी. की गहराई पर बोया जाना अच्छा रहता है। बोने के बाद बीज को आधा से.मी. तक सड़ी तथा छनी हुई गोबर की खाद और मिट्टी से बीज को पूर्णतया ढक देंवे। पहली सिंचाई से अंकुरण तथा थोड़े–थोड़े अंतर पर हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। इसके पश्चात् 7–8 दिन के अंतर पर सिंचाई करना चाहिए तथा समयानुसार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। नर्सरी में पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए क्यारियों में कैल्सीयम अमोनियम नाइट्रेट (सी.ए.एन) उर्वरक 25 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से छिड़के या यूरिया 10 ग्राम प्रति लीटर के घोल का छिड़काव 30 दिन एवं 45 दिन की पोध अवस्था पर करें। पौधशाला में कीड़ों तथा बीमारियों के प्रकोप की रोकथाम हेतु पौधो पर इनके लक्षण दिखाई देते ही 10 लीटर पानी में 10 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स तथा 20 ग्राम डाइथेन एम–45 घोलकर छिड़काव कर तथा 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव दुबारा अवश्य करें। नर्सरी में पौध 7–8 सप्ताह में तैयार हो जाती है। अच्छी फसल के लिए स्वस्थ तथा ओजस्वी पौधे आवश्यक हैं। अतः नर्सरी में पौधों की भली–भाँति वैज्ञानिक विधि अपनाते हुए तैयारी करें।

[1]स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)
[2]भाकृअनुप.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

l;kt dh ik/k r;kj dju d fofHkUu pj.k

खाद एवं उर्वरक

अच्छी पैदावार लेने के लिए खेत की तैयारी से पूर्व मिट्टी का परीक्षण अवश्य करायें व उसके हिसाब से ही खेत में उर्वरकों की मात्रा का प्रयोग करें। अगर मिट्टी परीक्षण की सुविधा नहीं हो तो, दी गई निम्नलिखित तालिका के अनुसार ही खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करें ।

खड़ी फसल में यूरिया जहाँ तक हो दोपहर बाद शाम के समय ही खेत में छिड़के परन्तु ध्यान रखें खेत में पर्याप्त नमी रहे। अधिक मात्रा में सिंचाई के साथ बार–बार यूरिया उर्वरक का प्रयोग नहीं करें। क्योंकि ऐसा करने से प्याज कन्द तो मोटे हो जाते है परन्तु उनकी भण्डारण क्षमता काफी कम हो जाती है, साथ ही ऐसे उत्पादित कन्दों के बाजार में मूल्य भी बहुत अधिक नहीं मिलते हैं। अधिक उपज एवं गुणवत्ता वाली प्याज उत्पादन के लिए केवल सिफारिश की गई नत्रजन का उपयोग समय पर करें व उत्पादित प्याज को भण्डारित कर अधिक लाभ कमायें।

[kkn@ik"kd rRo	ek=k izfr gDVs;j	le; ,oa fof/k
गोबर	25–30 टन	पौध रोपाई के 30 दिन पूर्व खेत में डालें।
नत्रजन	50 कि.ग्रा.	रोपाई के 2–3 दिन पूर्व अन्तिम जुताई के समय
फास्फोरस	50 कि.ग्रा.	खेत में समान रूप से बिखेरकर मिट्टी में मिलायें।
पोटाश	100 कि.ग्रा.	
जिप्सम	400 कि.ग्रा.	15 दिन पूर्व खेत में मिलायें।
नत्रजन (टॉप ड्रेसिंग)	50 कि.ग्रा.	पोध की रोपाई के 40–45 दिन व 60 दिन बाद खेत में आधी–आधी मात्रा छिड़क कर तुरन्त सिंचाई करें।

खड़ी फसल में यूरिया जहाँ तक हो दोपहर बाद शाम के समय ही खेत में छिड़के परन्तु ध्यान रखें खेत में पर्याप्त नमी रहे। अधिक मात्रा में सिंचाई के साथ बार–बार यूरिया उर्वरक का प्रयोग नहीं करें। क्योंकि ऐसा करने से प्याज कन्द तो मोटे हो जाते है परन्तु उनकी भण्डारण क्षमता काफी कम हो जाती है, साथ ही ऐसे उत्पादित कन्दों के बाजार में मूल्य भी बहुत अधिक नहीं मिलते हैं। अधिक उपज एवं गुणवत्ता वाली प्याज उत्पादन के लिए केवल सिफारिश की गई नत्रजन का उपयोग समय पर करें व उत्पादित प्याज को भण्डारित कर अधिक लाभ कमायें।

ik/k dh jksikbZ

नर्सरी में पौधे लगभग 55 से 60 दिनों में रोपाई योग्य हो जाते हैं। रोपाई के समय पौधो में गांठे नहीं होनी चाहिए। पौधे उखाड़ने से पूर्व सिंचाई करनी चाहिए। जिससे पौधो की जड़े नहीं टूटती है। पौधे उखाड़ने के बाद पौधो की 1/3 पत्तियों को काट देना चाहिए तथा जड़ों को पानी से धोना चाहिए। इसके लिए पौधों को बाविस्टिन या जैव उर्वरकों के घोल में डुबा सकते हैं। पौधों को गुलाबी जड़ सड़न रोग से बचाने के लिए बाविस्टिन (एक ग्राम प्रति लीटर पानी) के घोल में जड़ों को 15–20 मिनट तक डुबोकर रखें। इसके पश्चात् पौधों को एक नमीयुक्त स्थान पर इकट्ठा कर रखना चाहिए। पौधों को अधिक समय तक नहीं रखना चाहिए। उनकी जड़े खुली नहीं रखनी चाहिए। इससे रोपाई के पश्चात् पौधो के मरने की संभावना बढ़ जाती है।

प्याज की पौध रोपाई का उत्तम समय 15 दिसम्बर से 15 जनवरी तक है। रबी मौसम में जल्दी पौध की रोपाई

करने से फसल में फूल निकल आते हैं जिनसे नलीदार प्याज उत्पादित होती है। अधिक देरी से पौध रोपाई से कन्दों का समुचित विकास नही हो पाता है एवं कन्द छोटे–छोटे बनते हैं। पौधों के बीच 15 ग 10 से.मी. अंतर रखना चाहिए। इस प्रकार एक 3 ग 2 मीटर आकार की समतल क्यारी में 400 से 450 पौधे लगाने चाहिए। पौध की रोपाई क्यारियों में करें। रोपाई करते समय ध्यान रहे कि खेत की मिट्टी बिल्कुल भुरभुरी एवं हल्की नम होनी चाहिए। रोपाई करते समय जड़ के नजदीक की मिट्टी को अंगूठे से नहीं दबाना चाहिए इससे पौधो की गर्दन टेडी हो जाती है और उन्हें शुरू में वृद्धि करने में अधिक समय लगता है। रोपाई करते समय जमीन में अंगुली से निशान बनाकर पौधे लगाने चाहिए।

ik/k jkikbZ ls iwoZ rS;kj [ksr ,oa ik/k jkikbZ

[kjirokj fu;a=.k

प्याज में रोपाई से पूर्व क्यारियों में 1.5 मिली. गोल या बासालिन प्रतिलीटर की दर से छिड़काव करें ताकि 30 से 35 दिन तक फसल को खरपतवारों के नुकसान से बचाया जा सके। क्योंकि यह दोनों ही खरपतवार नाशक खरपतवारों को उगने से पूर्व मार देते हैं। खरपतवार नाशक के छिड़काव के लिए एक विशेष प्रकार फ्लेट नोजल को प्रयोग करना चाहिए, जिससे छिड़काव अच्छा होता है। छिड़काव के तुरन्त बाद रोपाई कर सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार नाशकों का छिड़काव नालियों, मेड़ों आदि पर भी करना चाहिए। अन्यथा इस पर खरपतवार उग आते हैं और निराई–गुड़ाई की शीघ्र आवश्यकता हो जाती है। खरपतवार नाशकों के प्रयोग के बाद केवल रोपाई को एक ही गुड़ाई की आवश्यकता होती है। अतः 35–40 दिन बाद एक गुड़ाई अवश्य करवायें। खेत में रोपाई अगर पंक्तियों में की गयी हो तो पौध रोपाई के बाद भी पंक्तियों के मध्य खरपतवार नाशक का प्रयोग किया जा सकता है।

पौधशाला (नर्सरी) में खरपतवार नाशको को प्रयोग नहीं करना चाहिए। दूब या मोथा जैसे खरपतवारों पर गोल या बासालिन का प्रभाव नहीं होता है। अतः इसके नियंत्रण के लिए गर्मियों के मौसम में गहरी जुताई करनी चाहिए। जब खेत में कोई फसल नहीं हो तो ग्लाइफोसेट जैसे खरपतवार नाशकों का प्रयोग करना चाहिए। ध्यान रखें की प्याज में 2–4 डी या ग्लासिल जैसे खरपतवार नाशकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

ty icU/ku

प्याज की जड़ें मिट्टी में 10–15 से. मी. की गहराई तक फैलती है। अतः फसल में हल्की, परन्तु कम अन्तराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। प्याज की फसल को शुरूआतीकाल में अधिक पानी की आवश्यकता होती है। रोपाई के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिए। रोपाई के बाद की सिंचाई के दो–तीन दिन के बाद दूसरी सिंचाई की आवश्यकता होती है। पौधों में गाँठ बनना आरम्भ होने से कन्दों के पूर्ण विकास तक (रोपाई के 60–100 दिन तक) नियमित रूप से सिंचाई की आवश्यकता होती है। दिसम्बर से फरवरी माह में 8–10 दिन में सिंचाई करनी चाहिए। मार्च माह में 6–8 दिन में सिंचाई की जानी चाहिए। अप्रैल–मई में सिंचाई का अन्तराल 5–6 दिन का रखना चाहिए। साधारणतया 16–18 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। फव्वारों द्वारा सिंचाई करने पर दो सिंचाईयों के बीच का अन्तराल कम करना चाहिए (शुरू में 6–8 दिन व मार्च के बाद 4–5 दिन) साथ ही ध्यान रखे की एक फव्वारें की लाइन एक जगह लगभग 3–4 घन्टे अवश्य ही चले।

पौधो में गाँठ बनते समय अगर इस अवधि में पानी की कमी होने से उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः कन्दों के पोषण के दौरान नियमित अन्तराल पर सिंचाई की व्यवस्था होनी चाहिए। अनियमित सिंचाई करने से दुफाड कन्दों की संख्या बढ़ती है। अधिक पानी देने की अपेक्षा नियमित तथा आवश्यक मात्रा में सिंचाई करने से अधिक उत्पादन मिलता है। साथ ही साथ कन्दों की गुणवत्ता अच्छी होती है तथा कन्दों की भण्डारण क्षमता भी बढ़ती है।

कन्दों की वृद्धि पूर्ण होने पर पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं तथा पौधे गर्दन के पास मुड़कर गिरने लगते हैं। कन्दों को उखाड़ने से 7–10 दिन पहले सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए। इससे कन्दों के परिपक्व होने में सहायता मिलती है। फलस्वरूप कन्द सुदृढ़ होते हैं, शल्क सूख जाते हैं, तथा उखाड़ते समय निकलते नहीं हैं।

ty i|c/ku

Qly l|j{k.k

प्याज की फसल को विभिन्न कीट–व्याधियों से रक्षा करना आवश्यक है। प्याज में लगने वाले की एवं बीमारियों के नियंत्रण के उपायों को निम्नलिखित वर्णित किया गया है।

c|xuh /kCck jkx

इस रोग मे पत्तियों पर छोटे, दबे हुए, बैंगनी केन्द्र वाले लंबवत सफेद धब्बे बनते हैं। ये धब्बे धीरे–धीरे बढ़ने लगते हैं तथा धब्बे का बैंगनी भाग काला हो जाता है और पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती है।

LVeQhfy;e >|ylk

इस रोग में पत्तियों पर एक ओर पीलापन लिए हुए नारंगी रंग के लंबाकार धब्बे बनते है। शीघ्र ही इनका आकार बढ़ने लगता है तथा पत्तिया सूख जाती है। फरवरी–मार्च महीने में वर्षा तथा बादलों वाले वातावरण से रोग का प्रकोप अधिक होता है।

इन दोनों बीमारियों से बचाव हेतु कार्बान्डाजिम 0.2 प्रतिशत घोल का बीमारियों के लक्षण दिखाई देते ही खेत में छिड़काव करें। इसके बाद 12–15 दिनों के अंतर पर दुबारा छिड़काव अवश्य करें। इसमें चिपकने वाला पदार्थ (स्टीकर) अवश्य मिलाना चाहिए।

fFkl l

इस कीट के रस चूसने से पत्तियों पर असंख्य सफेद रंग के निशान दिखते हैं। अधिक प्रकोप से पत्तियाँ मुड़कर झुक जाती है। फरवरी–मार्च में शुष्क मौसम के कारण इनका प्रकोप फसल पर सर्वाधिक होता है। इसलिए इस दौरान इस कीट के नियंत्रण का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस कीट के नियंत्रण के लिए डायमेथाएट 10 मिली. या नुआक्रांस 20 मिली. या साइपरमीथ्रिन 10 मिली. प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर अदल–बदल कर छिड़काव करना चाहिए। कीटनाशकों के साथ चिपकने वाले पदार्थ (स्टीकर) जैसे सेन्डोविट, टीपॉल आदि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

Qly l|j{kk gr| vko';d dhVuk'kh dk fNMdko ,o LoLFk Qly

dUnksa dh [kqnkbZ

कन्दों के परिपक्व होने पर नई पत्तियाँ आना रूक जाती हैं, तथा भोज्य पदार्थ पत्तियों से कन्दों में जाकर उन्हें सुदृढ़ बना देते हैं। पत्तियाँ पीली होने लगती हैं तथा पौधें जड़ के पास से कमजोर होकर गिरने लगते हैं। साधारणतया 30–40 प्रतिशत पौधों के गिरने पर यह मानना चाहिए कि प्याज खुदाई करके निकालने के लिए तैयार हैं। अधिक देर तक प्याज नहीं निकालने से पत्तियाँ सूखकर कमजोर हो जाती हैं और प्याज निकालने में टूटने लगती हैं। फलस्वरूप इन्हें खुरपी की सहायता से निकालना पड़ता है, जिससे लागत बढ़ जाती है।

प्याज निकालने से पहले 7–10 दिन पूर्व सिंचाई बन्द कर देना चाहिए। प्याज निकालने से 24 घंटे पूर्व फव्वारें द्वारा हल्की सिंचाई देवें, ताकि खुदाई समय भूमि में नमी बनी रहे तथा प्याज कन्दों को सुगमतापूर्वक जमीन से निकाला जा सके। प्याज की खुदाई खुरपी की सहायता से करनी चाहिए।

[kqnkbZ ds rqjar ckn fudkys x;s I;kt dan

सब्जी उत्पादन में प्लास्टिक का उपयोग

i:d t d|ekj d l ok] l kguh noh ckT;k] Hkou'k MhMy] jke/ku tkV ,o y{e.k d|ekj tkV

सब्जियों में प्लास्टिक के प्रयोग प्लास्टिकल्चर से उत्पादकता के साथ–साथ गुणवता में भी सुधार देखा गया है। सब्जियों में प्लास्टिक का प्रयोग पलवार (मल्च), ड्रिप सिंचाई, पौधशाला को ढंकने तथा वर्षा एंव कीट से सुरक्षा के लिए व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त प्लास्टिक का प्रयोग पॉलीहाउस, ग्रीनहाउस, पैकिंग तथा ताजी एवं प्रसंस्करण की गयी सब्जियों के भण्डारण में भी प्रयोग किया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992–97 में प्लास्टिकल्चर पर एक महत्वकांक्षी योजना लागू की गयी जिसके अन्तर्गत कुल लगभग रु. 8500 करोड़ प्लास्टिक के विस्तार के लिए सुनिश्चित किया गया, इसमें से लगभग 1400 करोड रुपये अकेले ही बूंद–बूंद सिंचाई के विस्तार के लिए सुनिश्चित किया गया। सरकार के इस प्रयास का ही नतीजा है कि जहॉ भारत में 1985 में केवल 1500 हे. भूमि पर ही ड्रिप सिंचाई का विस्तार था वहीं इसका प्रसार 1998–99 में बढकर 3 लाख हे. तक पहुॅंच गया और प्रतिवर्ष कुल 30000 हे. अतिरिक्त भूमि को बूंद–बूंद सिंचाई के अन्तर्गत लाने का लक्ष्य रखा गया है।

lfCt;k dh mRiknu e lykfLVd d fofHkUUk i;kx

¼v½ ik/k'kkyk e i;kx

¼d½ lkyjkbtsu ¼l;l rki }kjk½ 'kk/ku d fy,%& सोलेराइजेशन के लिए पारदर्शी 100–200 गेज मोटाई वाली पालीथीन प्रयोग की जाती है। पॉलीथीन को मई–जून के महीने में जब तापमान अधिक रहता है, पौधशाला वाले क्षेत्र पर पलवार की तरह बिछा दी जाती है। पॉलीथीन बिछाने से पूर्व पौधशाला के उपर पानी का छिड़काव कर देते है जिससे पौधशाला में अधिक आर्द्रता सुनिश्चित की जा सके। सोलेराइजेशन की वजह से मृदा का तापमान काफी बढ़ जाता है, जिससे मृदा में 30 सेमी. तक उपस्थित बीमारी फैलाने वाले सभी रोग कारक नष्ट हो जाते हैं और शोधित क्षेत्र पौधशाला उगाने के लिए उपयुक्त हो जाती है। पॉलीथीन से नर्सरी क्षेत्र को लगभग एक महीने तक ढंका जाता है तथा नर्सरी डालने से एक सप्ताह पूर्व पॉलीथीन हटा दी जाती है।

¼[k½ 'kh?k vdj.k d fy,%& बुवाई के तुरंत बाद यदि पौधशाला को 300–400 गेज वाली पॉलीथीन से ढंक दिया जाए तो बीजों में अंकुरण शीघ्र होता है तथा नमी को अधिक समय तक संरक्षित किया जा सकता है। फलस्वरुप पौधे रोपण हेतु शीघ्र तैयार हो जाते हैं। टमाटर की पौध जहॉ सामान्य दशा में 4–6 सप्ताह में तैयार होती है वहीं पॉलीबैग में लगाई गयी पौध 15 दिन में ही रोपण के लिए तैयार हो जाती है।

¼x½ lykfLVd dh Fkfy;k e ik/k yxkuk%& पॉलीबैग में सब्जियों की पौध प्रतिकूल परिस्थितियों में आसानी से उगायी जा सकती है। उतर भारत के मैदानी क्षेत्र में कद्दूवर्गीय सब्जियों की पौधशाला को दिसम्बर–जनवरी के महीने में आसानी से पॉलीबैग में बीज की बुआई करके पॉलीहाउस में रखकर तैयार किया जा सकता है। पॉलीबैग में मीडिया मिश्रण; मृदा, गोबर की खाद एवं बालू (1:1:1 के अनुपात में) का तापमान बाह्य वातावरण से अपेक्षाकृत अधिक रहता है, जिससे अंकुरण शीघ्र हो जाता है और पौध शीघ्र ही खेत में लगाने के लिए तैयार हो जाती है। इस तरह से तैयार पौध को जब फरवरी में तापमान बढ़ जाता है, तो खेत में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। पॉलीहाउस का तापमान बाह्य वातावरण से लगभग 5 डिग्री सें.ग्रे. अधिक होता है, जो कि सर्दी में कद्दूवर्गीय सब्जियों के उगाने के लिए उपयुक्त माना जाता है। पॉलीबैग का प्रयोग बरसात में अन्य सब्जियों जैसे टमाटर, बैंगन, मिर्च एवं गोभीवर्गीय सब्जियों के पौधशाला तैयार करने के लिए भी उपयुक्त रहता है। पॉलीबैग में उगायी गयी पौध को पॉलीहाउस या अन्य स्थानों पर जहॉ वर्षा से पौध की सुरक्षा हो सके, रख सकते हैं। बरसात के महीनों में जहॉ कि पौधशाला को खुले स्थानों पर उगाना संभव नहीं होता, उसे पॉलीबैग में उगाकर वषा से रक्षा की जा सकती है।

¼?k½ ik/k dk lykfLVd d fofHkUu ik=k e mxkuk%& संकर सब्जियों के बीज काफी महॅगे होने के कारण उनकी विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है, विशेषकर बरसात के मौसम में। प्लास्टिक के विभिन्न पात्रों जैसे–पाली स्टीरीन ट्रे, प्लाटिंग प्लग, प्लास्टिक कप, पॉलीथीन बैग आदि में प्रत्येक बीज की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। इस तरह प्रयोग में लाए जाने वाले पात्रों में अंकुरण अच्छा होता है एवं देखभाल प्रभावी ढंग से की जा सकती है।

श्री क.न.कृषि, महाविद्यालय, जोबनेर

¼c½ lykfLVd dk iyokj ¼efYpax½ d: #i e: i:;kx

पलवार के रुप में कार्बनिक अवशिष्ट तथा प्लास्टिक का प्रयोग सब्जी उत्पादन में लम्बे समय से हो रहा है। परंपरागत तरीके से कार्बनिक मल्च जैसे घास, भूसा, कम्पोस्ट, पुआल आदि का प्रयोग मृदाजल संरक्षण एंव मृदा गुणवत्ता बढ़ाने के लिए प्रयोग किया जाता रहा है। आधुनिक कृषि पद्धति में प्लास्टिक की मल्च का प्रयोग खरपतवारों को नियंत्रित करने, मृदा नमी संरक्षण, मृदा के सोलेराइजेशन तथा सब्जियों की उपज एंव गुणवत्ता बढ़ाने के लिए किया जा रहा है।

lykfLVd d: iyokj ¼eYp½ d: i:;kx l: ykHk

1. प्लास्टिक के मल्च के प्रयोग से मृदा का तापमान (5 से. मी. गहराई तक) काली प्लास्टिक से 4–5 डिग्री फारेनहाइट तथा पारदर्शी मल्च से 8–10 डिग्री फारेनहाइट तापमान बढ़ जाता है, जिससे जड़ का विकास अच्छा होता है, और फसल शीघ्र तैयार होती है तथा उपज भी अधिक प्राप्त होती है।
2. प्लास्टिक मल्च के नीचे की मिट्टी भुरभुरी होती है और वायु का अधिक पारगमन जड़ों एंव सूक्ष्म जीवों के विकास के अनुकूल रहता है।
3. प्लास्टिक मल्च के प्रयोग से मृदा द्वारा वाष्पीकरण कम होता है। इससे मृदा में नमी काफी समय तक संचित रहती है।
4. पंक्तियों में बोयी गई सब्जियों में खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए काली प्लास्टिक का प्रयोग किया जाता है। प्रकाश की कमी एंव अधिक तापमान के कारण काली प्लास्टिक के पलवार के नीचे खरपतवार उग नही पाते हैं।
5. काली प्लास्टिक के प्रयोग से सब्जियों को 2–14 दिनों पहले एंव पारदर्शी प्लास्टिक मल्च के प्रयोग से 15–20 दिन पहले फसल की तुड़ाई करके बाजार मूल्य अधिक प्राप्त किया जा सकता है।
6. प्लास्टिक मल्च कार्बन डाईऑक्साइड के लिए पारगम्य नहीं होती है। इससे उक्त गैस की सान्द्रता पौधे के आसपास बढ़ जाती है। इससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया भी बढ़ जाती है। परिणामस्वरुप पौधों में वृद्धि अधिक होती है।

lykfLVd iyokj d: i:dkj

1- lkkjn'kh % इस प्रकार की प्लास्टिक के प्रयोग से काली प्लास्टिक की अपेक्षा मृदा का तापमान ज्यादा पाया गया है, क्योंकि इससे लंबी तंरग दैर्ध्य वाली सूर्य किरणें विकरण के माध्यम से प्रवेश कर जाती हैं। इस तरह के मल्च से भूमि शोधन करने पर हानिकारक फफूँद एंव कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

2- dky: jx dh : इस प्रकार की प्लास्टिक से केवल चालन के माध्यम से ही सूर्य की किरणें मृदा के अन्दर पहुँचती हैं। इससे मृदा का तापमान अपेक्षाकृत कम बढ़ता है। इसमें खरपतवारों का विकास भी बहुत कम होता है।

3- vojDr fdj.kk: d: fy, ikjxE; ¼vkbZ-vkj-Vh- eYp½ % इस प्रकार की प्लास्टिक में मृदा को गर्म रखने की क्षमता पारदर्शी प्लास्टिक के समान तथा खरपतवार नियंत्रण की क्षमता वाली काली प्लास्टिक के समान है। इस प्रकार की प्लास्टिक मल्च से लम्बी तरंग दैर्ध्य वाली अवरक्त किरणें मृदा में प्रवेश कर जाती हैं। इसमें खरपतवार के वृद्धि एंव विकास में सहायक कम तरंग दैर्ध्य किरणें पास नहीं हो पाती है।

¼l½ lykfLVd dk lfCt;k: d: lajf{kr [krh e: i:;kx

सब्जियों का जब उनके नैसर्गिक समय के अलावा या विशम वायुमण्डलीय परिस्थितियों में उगाना होता है तो संरक्षित खेती का सहारा लिया जाता है। इसके अर्न्तगत अस्थायी या स्थायी संरचना जैसे पॉलीहाउस, ग्रीनहाउस, पॉली टनेल आदि संरचनाएँ आती हैं। इस प्रकार की संरचनाओं में फसल जल्दी तैयार की जा सकती है तथा कुछ सब्जियाँ जैसे कद्दूवर्गीय सब्जियों के पौधशाला शीत ऋतु में भी आसानी से तैयार किए जा सकते हैं।

rkfydk - lykfLVd iyokj d: i:;kx dk lfCt;k: e: iHkko

Qly	Ek[; miyfC/k;k
बैंगन	25 माइक्रोन की प्लास्टिक पलवार के प्रयोग से 10 प्रतिशत खरपतवार नियंत्रण
भिण्डी	प्लास्टिक पलवार के प्रयोग से 48 प्रतिशत उपज में वृद्धि
आलू	प्लास्टिक पलवार के प्रयोग से 49 प्रतिशत उपज में वृद्धि एंव 32 प्रतिशत खरपतवार नियंत्रण
टमाटर (संकर)	25 माइक्रोन की काली प्लास्टिक का शीत ऋतु में प्रयोग से 32 प्रतिशत उपज में वृद्धि
टमाटर (मुक्त परागित)	पारदर्शी प्लास्टिक का ग्रीष्म ऋतु में प्रयोग से 70 प्रतिशत उपज में वृद्धि
गाजर	छिद्रदार पारदर्शी प्लास्टिक पलवार के प्रयोग से जडों में कैरोटीन की मात्रा में वृद्धि
खीरा	भूसे की पलवार से 44 प्रतिशत तथा काली प्लास्टिक के प्रयोग से 52 प्रतिशत उपज में वृद्धि
पतागोभी	काली प्लास्टिक पलवार के प्रयोग से 10 प्रतिशत उपज में वृद्धि
राजमा	भूसे की पलवार से 44 प्रतिशत एंव काली प्लास्टिक की पलवार से 73 प्रतिशत उपज में वृद्धि

¼n½ IykfLVd dk cwan&cwan flapkbZ esa iz;ksx

बूंद–बूंद सिंचाई में पानी को मुख्य, उप–मुख्य तथा पार्श्व (लेट्रल) प्लास्टिक की पाइपों के जाल के माध्यम से प्रत्येक पौधे तक पहुँचाया जाता है। मुख्य एवं उप–मुख्य पाइपें साधारणतया स्थायी संरचनाएँ होती है। यह पॉली विनाइल क्लोराइड (पी.वी.सी.) या उच्च सघनता वाली पॉली इथाइलीन (एच.डी.पी.ई.) की बनी होती है। ये 40–110 मि.मी. आकार वाली होती है। इनका आकार पानी के बहाव एंव ड्रिपर द्वारा छोड़े जाने वाले पानी की मात्रा पर निर्भर करता है। पार्श्वीय या लेट्रल ट्यूब कम सघनता वाली पॉली इथाइलीन (एल.डी.पी.ई.) की बनी होती है। इनका व्यास 8–16 मि.मी. होता है। बूंद–बूंद सिंचाई में प्रयोग होने वाले एल्बों, टी, यूनियन, प्लग तथा पाइप के अन्त में लगने वाला कैप, सभी प्लास्टिक के ही बनाए जाते हैं। ड्रिप में प्रयोग होने वाले ड्रिपर 2–4 ली. प्रति घंटा विभिन्न डिजाइनों में प्लास्टिक को ढाल करके ही बनाए जाते हैं।

¼;½ IykfLVd dk rqMkbZ mijkUr Hk.Mkj.k esa iz;ksx

प्लास्टिक का प्रयोग ताजी सब्जियों के पैकिंग एंव भण्डारण में किया जाता है। यह प्लास्टिक सब्जियों के श्वसन द्वारा उत्सर्जित गैसों के प्रसार में अवरोध पैदा करती है। इससे सब्जी उत्पाद के आसपास कार्बन डाईऑक्साइड की सान्द्रता बढ़ जाती है तथा ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। परिणामस्वरुप सब्जियों की भण्डारण क्षमता बढ़ जाती है। आजकल अधिक सिकुड़ने वाली, पतली, बहुस्तरीय पॉली ओलेफिन की प्लास्टिक का प्रयोग सब्जियों एंव फलों के भण्डारण के लिए किया जा रहा है। प्लास्टिक के माध्यम से कार्बन डाईऑक्साइड एंव ऑक्सीजन की मात्रा को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है। आंशिक रुप से पके टमाटर को यदि पारगम्य प्लास्टिक में 4–6 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड, 4–6 प्रतिशत ऑक्सीजन एंव 10 प्रतिशत आर्द्रता पर रखा जाए तो टमाटर की भण्डारण क्षमता कमरे के तापमान पर ही 7 दिन और बढायी जा सकती है। जब पॉलिथीन में गैसों के प्रति पारगम्यता बहुत कम होती है तो ऐसी दशा में वाष्प एंव कार्बन डाईऑक्साइड की सान्द्रता काफी बढ़ जाती है। इससे भण्डारित पदार्थ को बहुत हानि होती है। ऐसी स्थिति में प्लास्टिक में 2–5 मि.मी. के कई छिद्र बना दिए जाते हैं, जिससे वायु का सुचारु रुप से पारगमन हो सके। प्याज को 150 गेज की पॉलीथीन में 6.4 मि.मी. के 32–46 छिद्र बनाकर 24 डिग्री से.ग्रे. एंव 55 प्रतिशत आर्द्रता पर रखने पर भण्डारण में हानि कम होती है। इससे शल्क कंद में अंकुरण भी नहीं होता हैं।

प्लास्टिक की मोटाई को निम्न रुप से दर्शाया जा सकता है।

1 माइक्रोन मी.	=	0.0001 मि.मी.	=	4 गेज
125 माइक्रोन मी.	=	0.0125 मि.मी.	=	50 गेज
25 माइक्रोन मी.	=	0.025 मि.मी.	=	100 गेज
100 माइक्रोन मी.	=	0.1 मि.मी.	=	400 गेज

''समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है''
– जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर

केंचुआ खाद का उत्पादन एवं उपयोग

,-d- jk;] 'kfä [ktfj;k] dud yrk] jkt dekj ,o ch- ,l- [kík

किसान भाइयों को अपनी खेती में कम लागत से अच्छी फसल की पैदावार के लिए केंचुआ खाद का उत्पादन एवं उपयोग बहुत महत्वपूर्ण व लाभकारी है। जो भूमि में पोषक तत्वों की हुई क्षति को पूर्ण करने की क्षमता रखता है जो पारम्परिक खेती का स्तम्भा रहा है तथा वर्तमान में जैविक खेती का भविष्य है। जिससे उनकी फसल की लागत भी कम हो जाएगी और उत्पादन भी अधिक होगा। रासायनिक खाद के उपयोग पर निर्भरता कम होगी। साथ–साथ जमीन की उर्वरता और मानव स्वास्थय पर पड़ रहे बुरे प्रभाव को भी कम किया जा सकता है।

केंचुआ कृषि में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान भूमि सुधार के रूप में देता है। इनकी क्रियाशीलता मृदा में स्वतः चलती रहती है। प्राचीन समय में प्रायः भूमि में केंचुए पाये जाते थे, तथा वर्षा के समय भूमि पर देखे जाते थे। परन्तु आधुनिक खेती में अधिक रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों के लगातार प्रयोगों से केंचुओं की संख्या में भारी कमी आई है। जिस भूमि में केंचुए नहीं पाये जाते हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि मिट्टी अब अपनी उर्वरा शक्ति खो रही है। केंचुआ मिट्टी में पाये जाने वाले जीवों में सबसे प्रमुख है। ये अपने आहार के रूप में मिट्टी तथा कच्चे जीवांश को निगलकर अपनी पाचन नलिका से गजारते हैं, जिससे वह महीन कम्पोस्ट में परिवर्तित हो जाते हैं और अपने शरीर से बाहर छोटी–छोटी कास्टिंग्स के रूप में निकालते हैं। इसी कम्पोस्ट को केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट) कहा जाता है। कम्पोस्ट मात्र 45 दिन में तैयार हो जाता है। केंचुओं का पालन 'कृमि संवर्धन' या 'वर्मी कल्चर' कहलाता है। अब तक केंचुओं की 4500 प्रजातियों विश्व के विभिन्न भागों में बताई जा चुकी हैं।

केंचुआ खाद कैसे बनाएं

केंचुआ रोज अपने वजन के बराबर कचरा/मिट्टी खाता है और उससे मिट्टी की तरह दानेदार खाद बनाता है। भूमि की उपरी सतह पर रहने वाले लंबे गहरे रंग के केंचुए जो अधिकतर बरसात के मौसम में दिखाई पड़ते हैं, खाद बनाने के लिए एसिनाफोटिडा नामक प्रजाती उपयुक्त है। भूमि की गहरी सतह में रहने वाले सफेद मोटे केंचुए खाद बनाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

केंचुएं हेतु अच्छा भोजन तैयार करना

केंचुए गर्मी सहन नहीं कर सकते हैं। उन्हें किसी भी प्रकार का कच्चा कचरा, कच्चा गोबर भोजन के रूप में नहीं दिया जा सकता। कच्चे गोबर के विघटन की प्रक्रिया के दौरान उससे गर्मी उत्पन्न हो सकती है जो केंचुओं के लिए हानिकारक होती है। अतः हमारे खेत में उत्पन्न होने वाले कचरे एवं गोबर को अलग से 15 से 20 दिन सड़ाना आवश्यक है। इसे ढेर के रुप में एक स्थान पर रखते हैं, जिसे पुरी तरह 10 दिनों तक नमी देते रहते हैं, इससे विघटन के समय निकलने वाली गर्मी समाप्त हो जाये। इस ढेर को 10 दिन बाद पलटना जरूरी है, ताकि उसकी गर्मी निकल जाए। ढेर को 20–25 दिन बाद अच्छी तरह फैला दें। उसकी गर्मी निकलने के बाद उसे वर्मी बेड में केंचुओ के भोजन के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। इस तरह सड़ाया हुआ कचरा केंचुओ के लिये अच्छा भोजन है।

केंचुआ खाद तैयार करना

केंचुएं सूर्य का प्रकाश एवं अधिक तापमान सहन नहीं कर सकते। इसलिए केंचुआ खाद के उत्पादन के लिए छायादार जगह का होना आवश्यक है। यदि पेड़ की छाया उपलब्ध न हो तो लकड़ी की सहायता से कच्चे घास फूस का शेड बनाया जा सकता है। केंचुआ खाद उत्पादन के लिए वर्मी बेड बनाए जाते हैं जिसकी लंबाई 20 फुट तक हो सकती है, किन्तु चौड़ाई 4 फुट से अधिक एवं ऊंचाई 2 फुट से अधिक नहीं होनी चाहिए। इस बेड में पहले नीचे की तरफ ईंट के टुकड़े (3"–4") फिर ऊपर रेत (2") एवं मिट्टी (3") का भर दिया जाता है, जिससे विपरीत परिस्थिति में केंचुए इस बेड के अंदर सुरक्षित रह सके। इस बेड के ऊपर 6 से 12 इंच तक पुराना सड़ा हुआ कचरा केंचुओं के भोजन के रूप में डाला जाता है। 40 से 50 दिन के बाद जब घास की परत अथवा टाट बोरी हटाने के बादन हल्की दानेदार खाद ऊपर दिखाई पड़े, तब खाद के बेड में पानी देना बंद

भाकृअनुप.– कृषि विज्ञान केन्द्र– पंचमहल (भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान)
गोधरा–बड़ोदा हाइवे, वेजलपुर, गोधरा, जिला– पंचमहल (गुजरात) 389 340

कर देना चाहिए। ऊपर की खाद सूखने से केंचुए धीरे–धीरे अंदर चले जाएंगे। ऊपर की खाद के छोटे–छोटे ढेर बेड में ही बनाकर एक दिन वैसे ही रखना चाहिए। दूसरे दिन उस खाद को निकालकर बेड के नजदीक में उसका ढेर कर लें। खाली किए गए बेड में पुनः दूसरा कचरा जो केंचुओ के भोजन हेतु तैयार किया गया हो, डाल दें। खाद के ढेर के आसपास गोल घेरे में थोड़ा पुराना गोबर फैला दें और उसे गीला रखें। इसके ऊपर घास ढंक दें। इस प्रक्रिया में खाद में जो केचुएं रह गए हैं वे धीरे–धीरे गोबर में आ जाते हैं। इस तरह 2–3 दिन बाद खाद केंचुओं से मुक्त हो जाती है। बचे कचरे को केंचुओं सहित नजदीक के वर्मी बेड में डाल देते हैं। खाद को छानकर बोरी में फेंक कर दें अथवा छायादार जगह में एक गड्ढे में एकत्र करें और इस गड्ढे को ढककर रखें ताकि खाद में नमी बनी रहे। इस प्रकार एक बेड से करीब 500 से 600 किलो केंचुआ खाद 30–40 दिन में प्राप्त होती है।

केंचुओं की सुरक्षा

केंचुआ हमें अच्छी खाद प्रदान करता है। केंचुओं द्वारा मिट्टी में लगातार ऊपर–नीचे आवागमन से मिट्टी सछिद्र बनती है, जिससे उसमें हवा का वहन अच्छा होता है एवं मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ती जाती है। मिट्टी में केंचुओ की उपस्थिति मिट्टी को उपजाऊ बनाती है। इन सब के लिए केंचुओं को किसान का मित्र कहा जाता है। किसान मित्र केचुओं के कुछ प्राकृतिक दुश्मन भी हैं। केंचुओं के प्राकृतिक दुश्मन इस प्रकार हैं। (1) लाल चींटी (2) मुर्गी (3) मेंढक (4) सांप (5) गिरगिट एवं (6) कुछ मिट्टी में रहने वाले कीड़े अथवा मांसभक्षी जीव, जो केंचुओं की तरह ही होते हैं, परन्तु केंचुओं को खाते हैं। इन सबसे बचाने के लिए केंचुओं को नर्सरी की जमीन के ऊपर के स्थान पर रखना चाहिए। वर्मी बेड को अच्छी तरह पहले घास से या फिर हल्के कांटों से ढ़कना चाहिए।

केंचुआ खाद के शेड के चारों तरफ नाली खोदकर उसमें पानी भर देने से चींटियों से रक्षा होती है। शेड के चारों ओर कांटेदार बाड़ लगाने से मुर्गियां अंदर नहीं आ सकेंगी। समय–समय पर वर्मी बेड का परीक्षण करना आवश्यक है ताकि हमें यह जानकारी मिलती रहे कि किसी दुश्मन की वजह से केंचुओं का नुकसान तो नहीं हो रहा है। लाल चींटियों से बचाने के लिए वर्मी बेड में नीचे के फर्श पर राख का छिड़काव किया जाता है। यदि वर्मी बेड में चींटियां हो गई हों तब 20 लीटर पानी में 100 ग्राम मिर्च पाउडर, 100 ग्राम हल्दी पाउडर, 100 ग्राम नमक एवं थोड़ा साबुन डालकर उसका हल्का–हल्का छिड़काव वर्मी बेड में किए जाने से चींटियां भाग जाती हैं। यदि रसोईघर के कचरे से वर्मी कम्पोस्ट बना रहे हों तो वर्मी कम्पोस्ट इकाई को कम से कम जमीन से 2 फुट उपर रखना चाहिए ताकि उसमें चींटियां नहीं जा पाएं। रसोईघर के कचरे के साथ पके हुए भोजन की जूठन न डालें। इसकी वजह से चींटीयां आती हैं। यदि वर्मी बेड में चींटियां हो गई हों तो बेड के किनारे–किनारे गो–मूत्र में पानी मिलाकर छिड़कने से भी चींटियां भाग जाती हैं।

केंचुआ खाद के गुण

इस तरह बनाए गए केंचुआ खाद में नाइट्रोजन, पोटैशियम एवं फास्फोरस के साथ सभी 16 प्रकार के सूक्ष्म पोषक तत्व उपस्थित होते हैं। इसके साथ ही इसमें सेंद्रीय पदार्थ एवं उपयोगी जीवाणु भी होते हैं। इस खाद को जमीन में डालने से मिट्टी की उपजाऊ शक्ति एवं सजीव शक्ति बढ़ती है। 2–3 वर्षों तक केंचुआ खाद जमीन में डालने पर भूमि पूरी तरह उपजाऊ हो जाएगी एवं खेत में केंचुओं की संख्या बढ़ने लगती है। इसके साथ ही कीटों व बीमारियों का प्रकोप कम हो जाएगा। इससे रासायनिक कीटनाशक की कम आवश्यकता पड़ेगी।

rkfydk & d¢pvk [kkn e¢a miyC/k iks"kd rRoksa dh ek=k

क्र.स.	पोषक तत्व	पोषक तत्वों की मात्रा
1.	पी. एच.	6.5 – 7.5
2.	आर्गेनिक कार्बन (प्रतिशत)	15 – 20
3.	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	1.3 – 1.9
4.	फास्फोरस (प्रतिशत)	1.0 – 1.8
5.	पोटैशियम (प्रतिशत)	1.5–2.4
6.	कार्बन : नाइट्रोजन	14 – 15 : 1
7.	कैल्सियम (प्रतिशत)	0.5–1.0
8.	मेगनीसियम (प्रतिशत)	0.4 – 0.7
9.	गंधक (प्रतिशत)	0.3–0.5
10.	आयरन (पी.पी.एम.)	2–9.3
11.	जिंक (पी.पी. एम.)	5.7–11.5
12.	कापर (पी.पी. एम.)	2.9–5.0

d¢pvk [kkn d¢ mi;ksx dh ek=k

1. पौधे के एक गमले के लिए जिसमें 8 से 10 किलो मिट्टी डाली गई हो, 100 से 200 ग्रा. केंचुआ खाद पर्याप्त है। केंचुआ खाद हर 3 महीने के बाद यदि आवश्यकता हो तो पुनः डाली जा सकती है।
2. एक पेड़ में 1 से 10 किलो तक केंचुआ खाद डाली जा सकती है। खाद की मात्रा पेड़ के आकार अथवा उम्र

पर निर्भर करती है।

3. एक एकड़ के लिए कम से कम पहले वर्ष 1500 से 2000 किलो खाद डाल सकते हैं। उसके बाद अगले वर्ष में सिर्फ 500 से 1000 किलो खाद डालने से भी अच्छे परिणाम आएंगे। केंचुआ खाद डालते समय उसमें कम से कम 15 से 20 प्रतिशत नमी होना आवश्यक है ताकि उसकी जीवाणु शक्ति सक्रिय रहे। रासायनिक खाद के उपयोग से जैविक खाद की जीवाणु शक्ति का नुकसान होता है। केंचुआ खाद उत्तम खाद है। यह भूमि के लिए ही नहीं वरन पेड़ पौधों व फसलों के लिए भी संपूर्ण भोजन है। इसके उपयोग से फसल स्वस्थ होगी, उसकी गुणवत्ता बढ़ेगी एवं किसान आत्मनिर्भर बनेंगे।

oehok'k ,d rjy tfod [kkn

cukus dh çfØ;k

वर्मीवाश इकाई बड़े बैरल/ड्रम, बड़ी बाल्टी या मिट्टी के घड़े का प्रयोग करके स्थापित की जा सकती है। प्लास्टिक, लोहे या सीमेन्ट के बैरल प्रयोग किये जा सकते हैं जिसका एक सिरा बन्द हो और एक सिरा खुला हो। सीमेंट का बड़ा पाईप भी प्रयोग किया जा सकता है। इस पाईप को एक ऊंचे आधार पर खड़ा रखकर नीचे की तरफ से बंद करें। नीचे की तरफ आधार के पास साईड में छेद (1 इंच चौड़ा) करें। इस छेद में टी पाईप डालकर वाशर की मदद से सील करें। अंदर की ओर आधा इंच पाईप रखें तथा बाहर इतना कि नीचे बर्तन आसानी से रखा जा सके। बाहर टी पाईप के छेद में नल फिट करें तथा दूसरे छेद में नट लगायें जो कि पाईप की समय–समय पर सफाई के काम आएगा। यह नल सुविधानुसार बैरल की पेंदी में भी लगाया जा सकता है। जिससे बूंद–बूंद पानी नीचे गिरे। यह पानी धीरे–धीरे कम्पोस्ट के माध्यम से गुजरता है और ताजा वर्मीकम्पोस्ट से तत्व लेकर अपने साथ घोल लेता है। साथ ही केंचुओं के शरीर को धोकर भी पानी गुजरता है। जिसे एकत्रित करते रहते हैं। वर्मीवाश को इसी स्वरूप में भण्डारित किया जा सकता है या धूप में सांद्रीकरण करके भण्डाररित कर सकते हैं। प्रयोग के समय इसमें पानी मिलाया जा सकता है। जो प्रयोगकर्ता की आवश्यकता के अनुसार हो सकता है। इस प्रकार वर्मीवाश एकत्रित करने की प्रक्रिया चलती रहती हैं। फिल्टर के माध्यम से छान कर समय–समय आवश्यकता अनुसार फसलों पर छिड़काव करते रहते है।

dspvk [kkn l vkfFkd ykHk

केंचुआ खाद तैयार करते समय प्राथमिक खर्च अधिक रहता है। इसके बाद व्यय घटता जाता है। इसका 40 से 50 दिन में उत्पादन प्रारम्भ हो जाता है। सामान्य रुप से 12 × 2.5 × 1.5 फिट वर्मी बेड से प्रति सप्ताह लगभग 400 से 500 किग्रा वर्मीखाद प्राप्त होना प्रारम्भ हो जाता है। एक बेड से 1000 से 1500 किलोग्राम केंचुआ खाद प्राप्त होती है। इस प्रकार इससे 5000 से 6000 रुपया प्रति बेड आय होती है। इसके साथ ही 4–5 किलोग्राम केंचुआ भी प्राप्त किया जा सकता है। इसकी बाजार दर लगभग 1000 से 1500 होती है।

fofHkUu i:dkj d: dpq,

नीम के उत्पादों से प्राकृतिक कीटनाशक बनाना

fç;adk dekjh tkV[1] ejkjh yky pkiMk vkj eukt dekj ehuk[2]

नीम जैविक खेती का महत्वपूर्ण घटक है। यह प्रकृति का अनमोल उपहार है। नीम के वृक्ष का हर भाग उपयोगी है। नीम का आयुर्वेदिक इस्तेमाल प्राचीन समय से ही चला आ रहा है। नीम की पत्तियां चबाने से रक्त शुद्ध होता है। इसके इलावा खुजली, मुहांसे आदि समस्याओं के लिए नीम नीम गुणों से भरपूर पेड़ है। नीम की छाल, पत्तियां और फल सभी कई प्रकार की बीमारियों के लिए प्रयोग किए जाते है। परन्तु अपने आसपास मोजूद इस खजाने को लोगो भूल गये हैं। इसी का फायदा उठाकर बड़ी–बड़ी कम्पनियां नीम की निम्बोली व पतियों से कीटनाशक व दवायें बनाकर महगें दामों में बेच रही हैं। किसान अपने घर पर भी नीम कीटनाशक बना सकते हैं।

नीम कीटनाशक बनाने के लिए आवश्यक सामग्री और बनाने की विधि का विस्तार पूर्वक वर्णन यहां दिया जा रहा है–

निम्बोली एकत्र करना

निम्बोलियां पककर पीली होने लगे तो इन्हें वृक्ष से तोड़ लेना सबसे उत्तम रहना है। इस अवस्था में उनमें आजाडीरेक्टीन की मात्रा ज्यादा होती है। चूंकि सभी निम्बोलियां एक साथ न पककर धीरे–धीरे पकती रहती है। अतः आर्थिक दृष्टि से जमीन पर टूटकर पड़ी हुई निम्बोलियों को बीनना उतम रहता है। झाड़ू के द्वारा निम्बोली एकत्र करना उचित नहीं है। क्योंकि इससे बीज में हानिकारक कवकों व जीवाणुओं के सक्रमण का खतरा रहता है, जो बाद में चलकर बीज और इसमें तेल को खराब करते है। अतः 4–7 दिन में एक बार निम्बोलियों की बिनाई कर लेनी चाहिये।

निम्बोली का छिलका हटाना

निम्बोली फल को सुखाकर संग्रह करना अधिक लाभप्रद है। किन्तु वर्षा में गूदे युक्त फल को सड़न से बचाकर सुखा पाना बहुत कठिन कार्य होता है। अतः निम्बोलियों को पानी में डालकर रगडकर धो देते है, ताकि गूदा व छिलका छूटकर बीज से अलग हो जाये।

बीज सुखाना

उपरोक्त तरीके से प्राप्त बीज को अधिक गर्म सतह अथवा तेज धूप में सुखाना ठीक नहीं होता है। किन्तु नमी को शीघ्रता से सुखाना भी आवश्यक है। अतः बीज को टाट, बोरा, कपडा या चटाई पर बिछाकर हल्की धूप व छाया में सुखाना चाहिये। पक्की फर्श, प्लास्टिक शीट, लोहे की शीट धूप में अधिक गर्म हो जाती है, अतः इन पर सुखाने से बचे।

भंडारण

अच्छा यह रहता है कि बीज से तेल तीन से छः माह में निकाल लिया जाए। नीम गिरी पुरानी होने पर तेल कम हो जाता है। किन्तु यदि इसमें भंडारण की जरूरत पड़े तो इसे धप, नमी, गर्मी से बचाकर सूखे, टंडे, छायादार स्थान में कपड़े या जूट के बोरों या थेलों में रखें। प्लास्टिक से बने पात्रों/बरतनों में रखना ठीक नहीं रहता है।

उपयोग

पाउडर : नीम के बीज को खूब महीन पीसकर पाउडर बना लें, इसमे बराबर या दुगनी मात्रा में कोई निष्क्रिय पदार्थ जैसे लकड़ी का बुरादा, चावल की भूसी या बालू मिट्टी मिला लें। इस पाउडर को फसल पर इस ढंग से भुरकें की यह पत्ती और तने पर चिपक जाये। फसल पर लगे कीड़े इसे खाकर मर जायेंगे। नीम की खली का पाउडर बिना कुछ मिलाये ही सीधे फसल पर भुरका जा सकता है। नीम की खली यदि पर्याप्त मात्रा

[1]उधान विभाग, राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा, जयपुर
[2]उधान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, जयपुर

में उपलब्ध हो तो इसे खेत की मिट्टी में बुवाई पूर्व सीधे मिला दें, जिससे मिट्टी में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के हानिकारक कीड़े मर जाए। इससे खेत में यूरिया की बचत भी होगी।

नीम तेल : छिड़काव के लिए बढ़िया मशीन उपलब्ध हो तो, नीम के तेल की 5 से 10 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से फसल पर छिडकें। नीम के तेल को साबुन के साथ पानी में घोलें। एक टंकी (15 लीटर) पानी में एक चम्मच साबुन पाउडर व लगभग 75 से 100 ग्राम तेल फसल पर छिडकें। इस घोल के कुछ देर पड़ा रहने पर तेल व पानी अलग–अलग हो जातें हैं, अतः इसे थोड़ी–थोड़ी देर में हिलाते रहना चाहिये। ध्यान रखें कि नीम का तेल अधिक मात्रा में एक जगह पत्ती आदि न पड़े अन्यथा यह उसे जला देगा।

पानी में घोलकर

यद्धपि शुद्ध रूप में अजाडीरेक्टीन पानी में कम घुलता है, किन्तु बीज, गिरी या खली में उपस्थित अजाडीरेक्टीन इनमें उपस्थित अन्य रसायनों के कारण पानी में पूरा का पूरा घुल जाता है। वास्तव में बीज या गिरी से नीम आधारित कीटनाशक फेक्ट्रीयों में बनाये जाते हैं। उतने ही कच्चे माल से उतनी ही प्रभावकारी दवा हम घर इसे पानी में घोलकर बना सकते है। नीम पदार्थ में फिर पानी मिलाकर मथकर पुनः छाने। ऐसा करने से पदार्थ में स्थित पूरा का पूरा कीटनाशक बाहर निकल आता है ।

पत्ती को पीसकर

यदि नीम का तेल, गिरी ता खली उपलब्ध न हो तो, नीम पत्तियों से भी कीटनाशक बनाया जा सकता है। इसके लिए नीम की 3 से 4 किलो ताजी पतियों को पीसकर 10 लीटर पानी में घोलकर छान लें। इस घोल का फसल पर छिडकाव करने से यह फसल की अनेक प्रकार के कीडों से रक्षा करता है।

नीम लेपित यूरिया द्वारा

नीम लेपित यूरिया का प्रयोग विभिन्न फसलों और पौधों में नत्रजन की 5– 10 प्रतिशत उपलब्धता बढाने में साहयक होता है। साधारणतः यूरिया से होने वाले नुकसान को रोकने के लिए नीम लेपित यूरिया को, विशेषकर मैदानी क्षेत्र में बढावा दिया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त साधारण यूरिया की तुलना में इसका उपयोग 5–10 प्रतिशत तक कम मात्रा में किया जाता है, जिससे किसान

नींबू वर्गीय पौधों की प्रमुख बीमारियों का प्रबंधन

l|'khy dekj ekg'ojh] je'k dekj] txu flg xkjk] ,l- vkj- ehuk ,o ih- ,y- ljkt

आजकल हमारे जीवन में नींबू वर्गीय फलों का विशेष महत्व है, क्योंकि इनमें शरीर को ऊर्जा देने एवं औषधीय गुण पाये जाते हैं। नींबू वर्गीय फलों जैसे सन्तरे, नींबू, किन्नौं व मौसमी आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में वर्ष 2019–20 में नींबू (लाइम/लेमन) का 3.48 मिलियन टन, मौसमी का 3.27 मिलियन टन तथा संतरा (मैंडरिन) का उत्पादन 6.24 मिलियन टन हुआ था।

यह फल विटामिन सी, शर्करा, अमीनो अम्ल एवं अन्य पोषक तत्वों के सर्वोत्तम स्त्रोत होते हैं। नींबू में ए, बी और सी विटामिनों की भरपूर मात्रा है। इसमें पोटेशियम, लोहा, सोडियम, मैगनेशियम, तांबा, फास्फोरस और क्लोरीन तत्वों के अलावा प्रोटीन और वसा भी पर्याप्त मात्रा में हैं। विटामिन सी से भरपूर नींबू शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के साथ ही एंटीआक्सीडेंट का काम भी करता है। नींबू में मौजूद विटामिन सी और पोटेशियम घुलनशील होते हैं, जिसके कारण ज्यादा मात्रा में इसका सेवन भी नुकसानदायक नहीं होता। रक्ताल्पता से पीड़ित मरीजों को भी नींबू के रस के सेवन से लाभ होता है। नींबू वर्गीय फसलों में अनेक प्रकार के कारक जीवों जैसे जीवाणु, कवक एवं विषाणु द्वारा विभिन्न रोग व्याधियों का प्रकोप होता है। भारत में नींबू वर्गीय फसलों की प्रमुख व्याधियां एवं उनकी रोकथाम इस प्रकार है–

1) नींबू का कैंकर रोग

यह रोग वर्षा ऋतु के समय ज्यादा होता है।

बीमारी के लक्षण

यह रोग नींबू (लाइम/लेमन) में सबसे ज्यादा नुकसान करता है। इस रोग के लक्षण पत्तियों, शाखाओं एवं फलों पर दिखाई देते है। शुरू में लक्षण पीले धब्बों के रूप में प्रकट होते है जो निरन्तर बढते हुये कठोर, गहरे भूरे रंग के उभरे हुये और खुरदरे धब्बे हो जाते हैं। यह एक विशेष प्रकार के पीले घेरे से घिरे होते हैं। कैंकर के यह धब्बे फलों के छिलके तक ही सीमित रह जाते हैं और इसके गुदे को नहीं भेद पाते हैं। लेकिन फलों का बाजार मूल्य बहुत कम हो जाता है।

रोग कारकः यह रोग जैन्थोमोनास कॉम्पेस्ट्रिस पैथोवार सिट्राई जीवाणु द्वारा होता है।

नींबू का कैंकर रोग

प्रबन्धन

अ) रोग से ग्रसित सभी टहनियों एवं शाखाओं को मानसून से पहले काट छांट करके जला देना चाहिये और शाखाओं के कटे हुये सिरों को बोर्डो पेस्ट (10 प्रतिशत) से लेप करना चाहिये।

ब) 10 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या 10 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन् 200 ग्राम कॉपर सल्फेट 100 लीटर में मिलाकर या नीम की खली का घोल (1 किलोग्राम 20 लीटर पानी में) फरवरी, अक्टूबर एवं दिसम्बर के समय प्रयोग करने से रोग का प्रभावी नियन्त्रण होता है।

स) डाईफेनोकोनाजोल का 1 मिली. 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से रोग की रोकथाम होती है।

द) पौधे खरीदते समय यह ध्यान रखें कि पौधे की कोई भी टहनी रोग ग्रस्त नहीं है। नए बगीचे में पौधरोपण के समय बोर्डो मिश्रण का स्प्रे (1 प्रतिशत) अवश्य करें।

2) नींबू का आर्द्र गलन रोग

बीमारी के लक्षण

यह रोग नर्सरी में पौधों को हानि पहुंचाता है। आर्द्रगलन नये पौधों या बीजांकुरो का सामान्य रोग है। यह उन सभी स्थानों पर पाया जाता है, जहां पर नमी की अधिकता होती है। आर्द्रगलन रोग नींबू वर्गीय फसलों की सभी प्रजातियों के नये अंकुरित होने वाले पौधों को रोग ग्रसित करता है। इस रोग में पौधें भूमि सतह के पास गलकर गिरने लगते है और मर जाते हैं।

रोग कारक : यह रोग पीथियम, फाइटोफ्थोरा एवं राइजोक्टोनिया कवको की प्रजातियों द्वारा होता है।

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर (राजस्थान)

प्रबंधन

इस रोग के प्रबंधन हेतु उचित कवकनाशियों से भूमि का उपचार करना चाहिये।

अ) मृदा के निर्जर्मीकरण के लिये एक भाग फॉर्मलीन को 50 भाग जल में मिलाकर नर्सरी की मिट्टी को 3–4 इंच गहराई तक गीला कर देते हैं।

ब) इस निर्जर्मीकरण के साथ– साथ यदि मृदा में फाइटोलान (0.2 प्रतिशत) को मिला दिया जाये, तो आर्द्रगलन रोग के उत्पन्न होने की सम्भावना कम हो जाती है।

स) पौधों में समुचित जल निकास की व्यवस्था होनी चाहिये।

3) एंथ्राक्नोज / डाई बैक रोग

बीमारी के लक्षण

यह एक कवक जनित रोग है। यह रोग पत्तियों, शाखाओं व फलों को प्रभावित करता है। घाव छोटे धब्बों से शुरू होकर बाद में बड़े हिस्से को ढ़क लेते हैं। रोगी शाखायें शीर्ष से लेकर नीचे की ओर सूखने लगती है। पत्तियों पर लक्षण परिगलित धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं और ये भाग जल्दी ही गिर जाता है, जिससे पत्तियों पर छिद्र (शाट होल) बन जाते हैं। पत्तियाँ भी शीर्ष से नीचे की ओर पीली होकर सूख जाती हैं एवं बाद में यह पत्तियाँ गिरती जाती हैं। जिसके कारण विदर टिप के लक्षण दिखाई देते हैं और फिर पौधा सूखने लगता है। फलों में संक्रमण होने पर फल समय से पहले ही गिर जाते हैं।

रोग कारक: यह रोग कोलेटोट्राइकम ग्लोइयोस्पोरोइड्स नामक कवक द्वारा होता है।

प्रबंधन

अ) सूखी हुई शाखाओं को काट देना चाहिये एवं इनके काटे गये सिरो को बोर्डो पेस्ट (10 प्रतिशत) का लेप कर देना चाहिये अथवा पत्तों पर लक्षण दिखाई देने पर 1 लीटर पानी में 3 ग्रा. कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का घोल बनाकर पन्द्रह दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करना लाभदायक होता है।

ब) ऐसे पेड़ों पर कैप्टाफोल 0.2 प्रतिशत घोल का तीन बार छिड़काव करना चाहिये।

स) बगीचे में जल निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये।

द) जिंक सल्फेट, कॉपर सल्फेट एवं चूने का मिश्रण 0.6:0.2:0.5 किलोग्राम 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रयोग करने से भी रोग का प्रभावशाली नियन्त्रण होता है।

क) प्रभावित टहनियों की छंटाई करके हवा का आवागमन को बढ़ाने के लिए नींबू के पौधों के बीच पर्याप्त स्थान रखें।

4) चूर्णिल आसिता रोग

बीमारी के लक्षण

यह रोग शरद ऋतु में समान्यतः होने वाला रोग है और यह नींबू वर्गीय फलों की लगभग सभी प्रजातियों पर दिखाई देता है। यह मैन्डरिन एवं स्वीट ऑरेन्ज की गम्भीर बीमारी है। चूर्णिल आसिता रोग होने पर पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद चूर्ण के समान कवक के धब्बे दिखाई देते हैं। यह धब्बे बढ़कर पूरी पत्तियों को ढ़क देते हैं। पत्तियों की ड़ण्ठल एवं शाखायें भी इस सफेद फफूंद की वृद्धि से ढ़क जाती हैं। रोग ग्रसित पत्तियां पीली पडकर मुड़ने लगती हैं और परिपक्व होने से पहले ही झड़ जाती हैं।

रोग कारक: यह रोग ओइडीयम टिन्जिटैनियम कवक द्वारा होता है।

प्रबन्धन:

अ) गम्भीर संक्रमण होने पर प्रभावित पौधे के भाग को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिये।

ब) सल्फर चूर्णिल आसिता रोग का अच्छा नियंत्रण करता है। सुबह के समय 20 किलोग्राम / हेक्टेयर की दर से सल्फर का भुरकाव करने से इस रोग का प्रभावशाली नियंत्रण होता है।

स) केलेक्सीन (0.2 प्रतिशत) का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करने से इस रोग को कम किया जा सकता है।

द) रोग से बचने के लिये घुलनशील (वेटेबल) सल्फर / 0.2 प्रतिशत और ट्राइडेमोर्फ / 0.1 प्रतिशत का 20 दिन के अंतराल पर तीन बार छिड़काव करना चाहिये। इससे रोग की उत्तम रोकथाम हो जाती है।

5) नींबू वर्गीय फसलों का गमोसिस रोग

बीमारी के लक्षण

यह रोग विशेषतः अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में होता है। इस रोग में नींबू की पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं। इसमें पौधों की छाल से गोंद का स्राव होने लगता है, साथ ही छाल पर भूरे रंग के धब्बे गोंद के साथ दिखाई पड़ते है। प्रभावित पेड़ की जड़ के पास मिट्टी हटाने से लालिमा युक्त भूरे तथा बाद में काले रंग की छाल दिखाई पड़ती है। गम्भीर संक्रमण के कारण अन्ततः पेड़ मर जाता है।

रोग कारक: यह रोग फाईटोफ्थोरा नामक कवक के द्वारा होता है।

प्रबन्धन:

अ) गमोसिस के प्रबन्धन के लिए रोग ग्रसित भाग की छाल को खुरचकर निकाल देना चाहिये एवं वहाँ पर बोर्डो पेस्ट (10 प्रतिशत) लगाना चाहिये।

ब) इस रोग की रोकथाम के लिये थाले में डाईफेनोकोनाजोल (1 मिली./लीटर) की ड्रेंचिन्ग करनी चाहिये।

स) जल निकास की समुचित सुविधा होनी चाहिये।

द) पौधों के मूलस्तम्भ को पानी के निरन्तर सम्पर्क से बचाने हेतु थाला विधि से सिंचाई करनी चाहिये तथा पौधें के मूल स्तम्भ पर मिट्टी चढ़ानी चाहिये।

क) स्वस्थ पौधों को रोगों से बचाने के लिए साल में एक बार बोर्डो पेस्ट (10 प्रतिशत) को 50–75 सेमी भूमि तल से ऊंचाई तक रंगना चाहिये।

ख) पौधों की रोपाई से तुरन्त पहले गड्ढ़ों में जिंक सल्फेट, कॉपर सल्फेट एवं बिना बुझे चूने का 5:1:4 अनुपात में मिश्रण बनाकर प्रयोग करना चाहिये।

6) नींबू का हरितमा रोग (सिट्रस ग्रीनिंग)

बीमारी के लक्षण

नींबू का हरितमा रोग नींबू वर्गीय पौधों का सबसे विध्वंसकारी रोग है। यह रोग नींबू की सभी प्रजातियों एवं किस्मों को हानि पंहुचाता है। इस रोग के मुख्य लक्षण पत्तियों का छोटा रह जाना, कम पत्तियों का आना एवं हरे फल हैं। पत्तियों में विविध प्रकार की पर्ण हरिमाहीनता पायी जाती है। रोग ग्रसित पौधों में पत्तियां एवं फल अत्यधिक गिरने लगते है और पौधा बौना रह जाता है। रोगी पौधों के फल अधिकांशतः पकने पर भी हरे रह जाते हैं। रोगी पौधों के फल छोटे एवं विकृत आकार, कम जूस वाले होते हैं।

रोग कारक: यह रोग फास्टीडीयम जीवाणु द्वारा होता है और ग्राफ्टिंग एवं सिट्रस सिल्ला (डायफोरिना सिट्राई) के द्वारा फैलता है।

नींबू का हरितमा रोग

प्रबन्धन

अ) चूंकि यह रोग ग्राफ्टिंग से फैलता है इसलिये बडवुड़ को हरितमा रोग रहित पौधों से लेकर प्रयोग करना चाहिये तथा बीजू पौधों (न्यूसेलर सीड़लिंग्स) को उगाने से भी यह रोग कम फैलता है।

ब) रोग के वाहक कीट सिट्रस सिल्ला का नियन्त्रण करने के लिये इमिडाक्लोप्रिड (3–4 मिली. को 10 लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिये।

स) स्पाइनोसेड़ (4 मिली. को 10 लीटर पानी में) का पेड़ के थाले के चारो ओर प्रयोग करने पर सिट्रस सिल्ला का प्रकोप कम होता है।

7) ट्रिस्टेजा वायरस रोग

बीमारी के लक्षण

यह बीमारी नींबू में बहुत पायी जाती है। इस रोग से पौधे का ऊपरी भाग से नीचे की तरफ सूखना शुरू हो जाता है। पत्तियों की प्रारंभिक अवस्था में प्ररोह (तने) के अंतिम भागों पर हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देने लगते हैं। संक्रमित पेड़ों पर सामान्यतः भारी मात्रा में फूलन–फलन होता है, फल आकार में छोटे तथा कम लगते हैं, जिससे उपज कम हो जाती है। अनुकूल जलवायु में यह रोग तेजी से फैलता हुआ प्ररोह के अग्र भाग से नीचे आधार तक पहुँच जाता है। पेड़ों की जड़ें गलकर सड़ जाती हैं और प्ररोह के मुरझाने पर यह मर जता है। रोग की अधिकता में पेड़ों की छाल भी काली हो जाती हैं। कई बार तो केवल पेड़ का कंकाल ही शेष पाया जाता है।

रोग कारक: यह रोग विषाणु द्वारा होता है और टोक्सोप्टोरा सिट्रिकिडा (एफिड) तथा संक्रमित बदवूड या कमजोर चयनित पौध सामग्री के द्वारा फैल सकता है।

प्रबन्धन

अ) ग्रेप फ्रूट और एसिड लाईम रूट स्टॉक को अतिसंवेदनशील होने के कारण नहीं लगाना चाहिए।

ब) एसिड लाईम के लिए सीडलिंग्स को पहले ट्रिस्टेजा की मध्यम स्ट्रेन से इम्म्युनाइज्ड करके प्रयोग करें।

स) सहनशील रंगपुर लाइम रूटस्टॉक को रोपड़ के लिए उपयोग में लिया जा सकता है।

द) इस वायरस से निपटने के लिए एफिड पर नियंत्रण के साथ –साथ क्रॉस प्रोटेक्ट ग्राफ्ट और शूटटिप ग्राफ्टेड पौधे लगाए जा सकते हैं।

क) इनार्चिंग या सांकुर (साइन) की रूटिंग का उपयोग ट्रिस्टेजा को कम करने के लिए किया जाता है।

नींबू वर्गीय फलों में लगने वाले प्रमुख कीटों एवं रोगों का नियंत्रण कैसे करें

l jUæ dekj ;kno ,o l 'khy dekj

भारत वर्ष में उगाये जाने वाले विभिन फलों में नींबू प्रजाति के फलों का महत्वपूर्ण स्थान है नींबू वर्गीय फलों में संतरा, नींबू, किन्नौं, मौसमी, माल्टा, चकोतरा, आदि प्रमुख हैं इनमें विटामिन ए, बी, सी एवं खनिज तत्व प्रमुख मात्रा में पाये जाते हैं। इन फलों में विटामिन सी की मात्रा अधिक पाई जाती है। महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक आदि प्रदेशों में इन फलों की खेती मुख्य रूप से की जाती है। राजस्थान में इन फलों की खेती मुख्य रूप से झालावाड़, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, बीकानेर आदि जिलों में की जाती है नींबू वर्गीय फलों को बहुत सारे कीट एवं रोग हानि पहुंचाते हैं इन फलों को कीटों एवं रोगों से काफी नुकसान पहुंचता है जिससे इसकी उपज में काफी कमी आ जाती है। यदि समय रहते इन कीटों एवं रोगों की पहचान व नियंत्रण कर लिया जाये तो इस के उत्पादन में काफी बढ़ोत्तरी की जा सकती है। नींबू की तितली, सफेद मक्खी, सिट्रस सिल्ला, फल चूसक पतंगा, पर्ण सुरंगक आदि मुख्य नाशी कीट हैं। जब की सिट्रस केंकर, गमोसिस व विदर टिप आदि इन फलों के प्रमुख रोग हैं। इन फसलों के मुख्य कीटों एवं रोगों की विस्तार पूर्वक जानकारी निम्न प्रकार है।

किन्नौं का कीट एवं रोग से रहित पौधा

(अ) प्रमुख कीट और इनके नियंत्रण करने के उपाय

1. नींबू की तितली:

यह 30 मिमी लंबी, जबकि पंख फैलाव के साथ ये 80 से 100 मिमी लंबी काले रंग की रंग बिरंगी तितली होती है। इस के पंखों पर पीले रंग के धब्बे पाये जाते हैं जब की पिछले पंखों पर लाल रंग के अंडाकार धब्बे पाये जाते हैं। इस कीट की लट शुरू में चिड़िया की बीट की तरह दिखाई देती है। परिपक्व लट हरे पीले रंग की होती है, जिसकी लंबाई करीब 35 मिमी होती है। शरीर के अंत में अंतिम खंड में एक सींगनुमा संरचना पाई जाती है।

नींबू तितली का व्यस्क व कैटरपिलर

thou pØ % इस कीट के जीवन में चार अवस्थाएँ जैसे अंडा, लार्वा (कैटरपिलर), क्रमीकोष एवं वयस्क पाई जाती हैं। मादा कीट पीले सफेद रंग के 75–180 अंडे एकल रूप में कोमल

नींबू की वयस्क तितली द्वारा दिया गया अंडा

स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

पत्ती के उपर और नीचे दोनों तरफ तथा कोमल तने पर देती है। कभी कभी मादा कीट 2–5 के झुंड मे भी अंडे देती है ये अंडे गर्मियों में 3–4 जब की सर्दियों में 5–8 दिनों में फूटते हैं जिसमें से गहरे भूरे रंग की लटें बाहर निकल आती हैं। इन लटों पर सफेद रंग के अनियमित निशान पाये जाते हैं जिस कारण से ये लटें चिड़िया की बीट की तरह दिखाई देती हैं। ये लटे गर्मियों में कोमल पतियों को खा कर 8–16 दिनो में परिपक्व हो जाती हैं, जब की यही लटें सर्दियों में 28 दिनों में परिपक्व होती हैं। इस कीट की प्युपा अवस्था पौधे की टहनी, तने या पौधे के किसी भी उपर उठी हुई सरचना पर विकसित होती है। गर्मियें में प्युपा 8 दिनों में जबकि सर्दियों में 9–11 दिनों में परिपक्व होता है। इस कीट की 3–4 पीढ़ियाँ साल भर में पाई जाती हैं।

{kfr y{k.k% इस कीट की लट अवस्था ही फसल को हानि पहुंचाती है। जब की इस की तितली फसल को किसी प्रकार से भी हानि नहीं पहुंचाती है। इस कीट की लट पती की बाहरी किनारे को खाती हुई मध्य शिरा तक पहुच जाती है। और अंत में मध्य शिरा को छोड़ कर सम्पूर्ण पत्ती को खा जाती है। यह कीट मुख्य रूप से नई पतियों को हानी पहुंचाता है। कभी कभी तो यह कोमल तनो को भी खा जाती है। यह कीट नर्सरी के छोटे पौधों को अधिक हानि पहुंचाते हैं। बहुत ज्यादा आक्रमण की स्थिति में फलों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यह कीट मार्च से नवम्बर तक सक्रिय रहता है। परन्तु यह अगस्त– सितम्बर में पौधों को अधिक हानि पहुंचाता है।

fu;=.k% (अ) इस कीट की लटों की लंबाई करीब 35–40 मिमी होती है अतः इन्हें हाथ से इकट्ठा कर के कीटनाशक मिले पानी में डाल कर मारा जा सकता है। (ब) इस कीट के लटों के नियंत्रण के लिए 1000–1200 मि.ली. क्यूनालफॉस 25 ई. सी. की मात्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें।

2- i.k l|jxd%

नींबू का यह अत्यंत हानिकारक कीट है। इस कीट का व्यस्क बहुत ही छोटा होता है, जो स्लेटी रंग का करीब 4.2 मिमी लंबा होता है। अग्र पंखों पर भूरी धारियाँ पाई जाती हैं जब की इस के अग्र भाग पर काला धब्बा पाया जाता है। इसके पिछले पंख सफेद होते हैं। दोनों पंख बालों से सजे होते हैं। इस कीट की लटें हल्के पीले या पीले हरे रंग की होती हैं, जो करीब 5.1 मिमी लंबी होती हैं।

thou pØ% इस कीट के जीवन काल में चार अवस्थायें पाई जाती हैं, जैसे अंडा, लार्वा, प्यूपा और वयस्क। इस कीट की मादा पत्ती की निचली सतह पर मध्य शिरा के पास छोटे, चपटे पारदर्शी अंडे नई पत्ती या कोमल तनों पर देती हैं। ये अंडे 2–10 दिनों के अंदर फूटते हैं। जिसमें से पैर रहित लार्वा निकल कर पत्ती के अंदर घुस जाता है। जो करीब 5–30 दिनों तक जीवित रहता है। लार्वा पत्ती के किनारे की तरफ आ कर प्युपा में बदल जाता हैं। इसका जीवन काल 5–25 दिनों का होता है। इस प्युपा के सिर पर एक कांटा होता है, जो इसे पत्ती को फाड़ कर शलभ के रूपमें बाहर निकलने में सहायता करता है।

{kfr y{k.k% इस कीट का लार्वा नई पत्ती में घुस कर टेढ़ी मेढ़ी सफेद चमकीली सुरंग बनाता है। ये लार्वा इस सुरंग में रह कर हरे पदार्थ को खाता रहता है। दूर से देख कर ये पता लग जाता है, कि पर्ण सुरंगक कीट से पौधा ग्रसित हो गया है। यह कीट वर्षा के समय कोमल पतियों को अधिक हानि पहुंचाता है। इस के कारण से प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया बाधित हो जाती है, जिस कारण से पौधे की बढ़वार रुक जाती है। ऐसे ग्रसित पौधे पर फल बहुत ही कम लगते हैं।

fu;=.k% इस कीट के नियंत्रण हेतु डाईमीथोऐट 30 ई.सी. एक लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें।

3- uhcw dk fIYyk%

सिल्ला बहुत छोटा कीट होता है जिसकी लंबाई 3 मिमी होती है। इस के पंख अर्ध पारदर्शी तथा झिल्लीदार होते हैं। यह गुलाबी भूरे रंग का उड़ने वाला कीट होता है, जिस के पंख पीछे की तरफ उठे हुए होते है। इस कीट के निंफ चपटे व हल्के पीले रंग के होते हैं।

thou pØ% इस कीट के जीवन काल में तीन अवस्थायें पाई जाती हैं जैसे अंडा, निंफ, और वयस्क। इस कीट की मादा फरवरी–मार्च के महीने में बादाम की आक्रति के नारंगी रंग के तन्तु से जुड़े हुए अंडे कोमल पतियों व टहनियों पर देते हैं। ये अंडे एकल या गुच्छे में एक सीधी रेखा में दिये जाते हैं। इन अंडों से गर्मियों में 4–6, जबकि सर्दियों में 10–12 दिनों में निंफ निकल आते हैं। ये निंफ पत्तियों से रस चूसकर बड़े होते हैं। शुरू में ये निंफ कोमल पतियों व टहनियों पर रहते हैं, जबकि बड़े होने पर ये परिपक्व पत्ती की निचली सतह पर चले जाते हैं। निंफ पाच अवस्थाओं से हो कर 12–25 दिनों में परिपक्व हो जाते हैं। दिसम्बर–जनवरी माह में ये 34–36 दिनों में परिपक्व हो कर वयस्क में परिवर्तित हो जाते हैं।

{kfr y{k.k% इस कीट के निंफ व वयस्क पत्तियों व टहनियों से रस चूस कर पौधे को हानि पहुंचाते हैं। निंफ व व्यस्क नई पत्तियों व टहनियों पर इकठे हो जाते हैं, जिस कारण से नई पत्तियों, कलियों व टहनियों की वृद्धि रुक जाती है। पौधे से रस चूसते समय यह कीट पौधे की पत्तियों, कलियों व टहनियों में एक जहरीला पदार्थ डाल

देता है, जिस कारण से ये मुरझा कर सुख जाते हैं तथा फलों के स्वाद में कसैला पन आ जाता है। ये कीट एक प्रकार का मधु छोड़ता है, जिस कारण से पौधे की प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया बाधित हो जाती है। इस कारण पौधा अपना भोजन नहीं बना पाता और बौने रह जाते हैं। ये कीट ग्रीनिंग वाइरस बीमारी को भी फैलता है। बहुत अधिक प्रकोप की स्थिति में फल छोटे रह जाते हैं। जिन में रस बहुत ही कम होता है। ऐसे फल अंत में पेड़ से गिर जाते हैं, जिस कारण से पैदावार में कमी आ जाती है। समय पर इस कीट का नियंत्रण न करने पर पौधे सूख कर मर जाते हैं।

fu;=.k% नींबू के सिल्ला के नियंत्रण हेतु नई पत्ती आने पर छिड़काव करना अति आवश्यक है। इस कीट के नियंत्रण के लिए डाईमीथोऐट 30 ई.सी. एक लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें।

4-Qy pwl d ir±xk%

इस कीट की तीन प्रजातियाँ फलों को रस चूस कर हानि पहुचाती हैं। इस कीट के पतंगे 2.5 से. मी. लंबे होते हैं। जबकि पंख फैलाव के साथ इन की लंबाई 9 सेमी. हो जाती है। ओफिडेरेस कोनजुकता के वयस्क के अग्र पंख भूरे हरे और पिछले पंख नारंगी या पीले होते हैं। इन पर काले रंग के धब्बे पाये जाते हैं। ओफिडेरेस माटेरना के अग्र पंख गहरे भूरे रंग के और पिछले पंख नारंगी– लाल रंग के जिन पर काले धब्बे पाये जाते हैं। ओफिडेरेस एनसाईला के अग्र पंख गहरे धारियों व सफेद धब्बे के साथ पीले हरे रंग के होते हैं। इस कीट के कैटरपिलर मखमली नीले रंग के जिस के ऊपरी व पार्श्व में लाल व पीले रंग के धब्बे पाये जाते हैं। इस कीट के लार्वा को सेमी लूपर भी कहा जाता है। जो 50 से 60 मिमी लंबा व कुबड़ा होता है।

thou pØ% इस कीट की मादा जंगली पौधों पर हल्के पीले हरे रंग के गोल या अंडाकार अंडे देती है। एक मादा 200–300 अंडे अपने जीवन काल में देती है। जिन से 8–10 दिनों के अंदर कैटरपिलर बाहर निकल आते हैं। कैटरपिलर जंगली पौधों व फलों के पौधों की पत्तियों को खाने लगते हैं। यह कैटरपिलर पाँच अवस्थाओं से गुजरते हुये 12–21 दिनों में परिपक्व हो जाते हैं। कैटरपिलर पतियों व मिट्टी के कणों को लपेट कर प्युपा खोल बनाते हैं। इस में ये लाल भूरे रंग के प्युपा में बदल जाते हैं। अंत में प्युपा पतंगे में बदल जाता है।

{kfr y{k.k% इस कीट का पतंगा फलों से रस चूस कर हानि पहुंचाता है। ये पतंगा समान्यतया पके हुये फलों में छेद कर रस चूसता है। छेद वाले स्थान पर जीवाणु व फफूंद का आक्रमण होने से फल सड़ कर जमीन पर गिर जाता है। ऐसे फलों को दबाने से छेद वाले स्थान से रस निकलने लगता है। ऐसे फलों की बाजार में कीमत न मिलने के कारण किसानों के बगीचे के फलों में 20–40 प्रतिशत की हानि होती है।

fu;=.k%

(1) बगीचे के खरपतवारों को नष्ट कर के बगीचे को साफ सुथरा रखना चाहिए।

(2) बगीचे में प्रकाश पास का प्रयोग कर के रोशनी द्वारा इस कीट को आकर्षित कर के मारा जा सकता है।

(4) एक लीटर पानी में 100 ग्राम चीनी घोल कर इस में 10 मिली लीटर मेलाथियॉन डाल कर प्रलोभक बना कर इस की 100 मिली लीटर मात्रा मिट्टी के प्याले में डाल कर पेड़ों पर कई स्थानो पर टांग देते हैं। पतंगा इसे पी कर मर जाता है।

(5) मेलाथियॉन 50 ई.सी. की 1200 मिली लीटर मात्रा को पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

5- lQsn eD[kh% यह अत्यंत छोटा कीट होता है। जिसकी लंबाई करीब 1–1.5 मिमी होती है। इस कीट का सिर नुकीला होता है तथा नर मादा से छोटा होता है। इस के शरीर व पंखों पर मोम जैसे पाउडर होता है। जब की इस की आँखों का रंग लाल होता है। इस कीट के निंफ हल्के पीले रंग के जब की आँखें बैगनी रंग की होती हैं।

thou pØ% सफेद मक्खी मार्च के महीने में प्रकट होती है तथा यह साल भर सक्रिय रहती है। इस कीट की मादा हल्के पीले रंग के अंडाकार अंडे तन्तु नुमा संरचना से जोड़ कर पती की निचली सतह पर देती है। ये अपने जीवन काल में 200 या इस से अधिक अंडे देती है। जो 10–20 दिनों में फूटते हैं और इन में से निंफ निकल आते हैं। निम्फ अंडाकार व चपटे होते हैं। निंफ पौधे के कोमल भाग में अपने मुखांग को घुसा कर वही पर चिपक जाते हैं। यहीं से ये रस चूस कर 25–71 दिनों में परिपक्व हो जाते हैं इस के बाद ये प्युपा में बदल जाते हैं। इनकी अवधि करीब 114–159 दिनों की होती है। प्युपा अंत में व्यस्क में बदल जाता है, जो पती की निचली सतह पर बैठ कर रस चूसता है।

{kfr y{k.k% इस कीट के निंफ व वयस्क दोनों ही पौधे से रस चूस कर हानि पहुंचाते हैं। इस कारण पत्ती भूरे रंग की हो कर टेढ़ी मेढ़ी हो जाती है और अंत में गिर जाती है। यह कीट एक प्रकार का मधु छोड़ता है, जिस कारण से पौधे की प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया बाधित हो जाती है। पौधे अपना भोजन नहीं बना पाते और बौने रह जाते हैं। देखने पर पौधे भद्दे नजर आते हैं। ऐसे पौधों पर फूल फल कम लगते हैं अथवा झड़ जाते हैं, जिस कारण से पैदावार में कमी आ

जाती है।

fu;=.k:

(1) पौधों को दूरी पर लगाना। बगीचे में जल भराव को रोकें।

(2) पौधों को आवश्यकता से अधिक पानी देना न देना। ज्यादा नत्रजन युक्त उर्वरक का प्रयोग नहीं करें। कीटनाशकों का अंधा धुंध प्रयोग नहीं करें।

(3) डाईमीथोऐट 30 ई.सी. या ऑक्सी डिमेंटोन मिथाईल 25 ई.सी की एक लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें।

6- jM LikbMj ekbV ¼o#Fkh½ % यह बहुत ही छोटा पेस्ट (हानिकारक जीव) होता है, जिसकी लम्बाई करीब 0.33 मिमी होती है। इस कीट का वयस्क फूला हुआ, नारंगी रंग का जिसके प्रष्ठीय भाग पर भूरे रंग के धब्बे पाये जाते हैं। इस के शरीर पर कांटे नुमा संरचना पाई जाती है। यह कीट साल भर सक्रिय रहता है। मई–जून माह में इसकी सक्रियता अधिक बढ़ जाती है।

thou pØ % मादा वरुथी करीब 50 छोटे अंडाकार नारंगी रंग के अंडे मध्य शिरा व अन्य शिराओं के पास पत्ती की निचली भाग पर पत्ती में घुसा कर देती है। अंडे एक सप्ताह में फूटते हैं। इनमें से तीन जोड़े पैर वाला लार्वा निकलता है। यह हल्के पीले भूरे रंग का होता है। लार्वा पौधे से रस चूस कर तीन से चार दिनों में प्रोटोनिंफ में परिवर्तित हो जाते है। प्रोटोनिंफ 3–4 दिनों के बाद डीयूटोनिंफ में परिवर्तित हो जाते हैं। इस अवस्था में भी चार जोड़ी पैर पाये जाते हैं। डीयूटोनिंफ 4–5 दिनों के बाद चार पैर वाली वयस्क वरुथी में परिवर्तित हो जाते हैं। इस कीट का जीवन काल 17–20 दिनों में पूरा हो जाता है।

{kfr y{k.k% इस कीट की सभी अवस्थाएँ पौधे से रस चूस कर हानि पहुंचाती हैं। यह कीट पौधे की पतियों कोमल फलों व हरे छाल की रस चूसने के साथ साथ क्लोरोफिल को भी खाती है। जिस से नर्सरी के पौधे की पातियाँ टेड़ी मेड़ी हो कर झड़ जाती हैं। इस से संक्रमित फल पीले पड़ कर छोटे व बदरंग हो जाते हैं।

fu;=.k% ईथियोन 50 ई.सी. 1.5 लीटर या डाईमीथोऐट 30 ई.सी. 1.7 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव कर के इस कीट का नियंत्रण किया जा सकता है।

''राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की एकता और उन्नति के लिए आवश्यक है''।

–महात्मा गांधी

बैंगन फसल के कीटों का एकीकृत प्रबंधन

;kxUæ dekj feJk[1] vfer dekj 'kekZ[1] ,- d- oek[2] vkj iyd nc[1]

बैंगन की फसल में हरा तेला, सफेद मक्खी, रेड स्पाइडर माइट, हड्डा बीटल, प्ररोह व फल छेदक कीटों का आक्रमण अधिकतर मई से अक्टूबर तक होता है। उपरोक्त सभी कीटों में से बैंगन की फसल को सबसे अधिक हानि करने वाला कीट प्ररोह (शीर्ष शाखा) व फल छेदक है, क्योंकि यह कीट पहले प्ररोह (शीर्ष शाखा) पर आक्रमण कर क्षति पहुँचाता है व इसके बाद बैंगन के फलों में छेद करके नुकसान पहुँचाता है, जिसके कारण ऐसे बैंगन फल विक्रय योग्य नहीं रहते है।

çkg o Qy c/kd

इस कीट की छोटी सूण्डी (इल्ली) का रंग गंदला सफेद होता है परंतु पूर्ण विकसित सूण्डी हल्के गुलाबी रंग वाली करीब 2 मि. मी. लम्बी होती है। प्रौंढ़ तितली का रंग सफेद होता है।

gkfu %& इस कीट की सूण्डियां (इल्लियां) बैंगन की फसल मे नुकसान करती है। मादा द्वारा दिये गए अण्डों से 3–6 दिन में छोटी –छोटी सूण्डियां निकलते ही पौधे की नई टहनियों के बढनें वाले मुलायम भाग, फूलों की कलियां व फल के अंदर घुसकर कर इन्हे खाती है। सूण्डी से ग्रसित भाग मुरझा कर नीचे लटककर सूख जाता है। यदि पौधें पर फल लगे हो तो सूण्डी अन्य भागों की बजाय फल खाना ज्यादा पसंद करती है।

gjk rsyk

इस कीट के शिशु तथा प्रौढ़ दोनों ही छोटे–छोटे पीलापन लिये हरे रंग के होते है। प्रौढ़ करीब 3 मि. मी. लम्बेहोते है। ये कीट दोनों अवस्थाओं में पत्तो के नीचे की ओर मिलता है। शिशु तिरछे चलते है तथा प्रौढ़ उड़कर दूसरी जगह चले जाता है। ऐसे तेले का शरीर पीछे की ओर नुकीला व सिर की तरफ से चौड़ा होता है। इस कीट के शिशु तथा प्रौढ़ के चूसने वाले मुखांग होते है।

gkfu %& यह पत्तों से रस चूसकर फसल को हानि पहुचाते है। प्रौढ़ की बजाय शिशु अधिक नुकसान करते है क्योंकि एक ही जगह बैठे – बैठे रस चूसते रहते है। इसके अतिरिक्त ये कीट पत्तो मे एक विषाणु छोड़कर भी हानि करते है। अधिक आक्रमण होने पर पत्तियो का रंग नीला होकर आखिर मे वे जंगनुमा रंग की हो जाती है तथा पौधे सूख जाते है।

lQn eD[kh

इस कीट के शिशु तथा प्रौढ़ का रंग सफेद होता है। शिशु पूर्ण विकसित होने पर 2 मि. मी. लम्बे तथा प्रौढ़ 2–3 मि. मी. लम्बे होते है।

gkfu %& शिशु तथा प्रौढ़ दोनो अवस्थाओ मे कीट फसल की पत्तियो के नीचे से रस चूसता है जिसके कारण पत्तियो का रंग पीला होकर वे कमजोर हो जाती है। इसके अलावा यह कीट विषाणु रोग को बीमार पौधे से स्वस्थ पौधे पर पहुंचाने का कार्य भी करता है जिसके कारण फसल को काफी नुकसान होता है।

gìk chVy

इस कीट के प्रौढ़ (भृंग) 8–9 मि.मी. है जिनके शरीर का रंग तांबे जैसा होता है। शरीर के उपर जो सख्त पंख होते है उनमें उपर के प्रत्येक पंख पर 6 से 14 काले गोल निशान होते है जिनसे इस कीट को पहचाना जा सकता है। दूर से देखने पर इस कीट का पौढ़ चने की दाल जैसा दिखाई देता है व इसी कारण कई जगह किसान इसे "दाल" भी कहते है। इस कीट के ग्रब 6 मि.मी. लम्बे हल्के पीले रंग के होते है तथा इनके शरीर पर छः लकीरे सिर से पीछे के हिस्से तक फैली होती है।

gkfu %& इस कीट की इल्ली (ग्रब) तथा प्रौढ़ दोनों ही पौधों की पत्तियों के उपर का भाग खाकर नुकसान करते हैं। ये पत्तियो के हरे पदार्थ को खाकर उन पर लम्बी–लम्बी कई धारिया बना देते हैं जिससे ग्रसित पत्तिया सूखकर नीचे गिरने लगती है। यह कीट टमाटर के अलावा बैंगन तथा आलू को भी हानि पहुचाते हैं।

jM LikbMj ekbV ¼yky v"Vinh½

अष्टपदी एक कीट न होकर चार जोड़ी पैर वाला

[1]जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश
[2]भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान

जन्तु होता है। इसके शिशु पूरे बडे होने पर करीब 0.3 मि. मी. तक लम्बे हल्के भूरे रंग के चंचल जन्तु होते हैं। प्रौढ़ करीब 0.05 मि.मी. लम्बा लाल जंगनुमा रंग वाला होता है।

gkfu %& शिशु व प्रौढ़ दोनों ही हानि पहुचाते है। ये पत्तो के नीचे की तरफ जाले बनाते है व उन जालों के नीचे रहकर पत्तों का रस चूसते हैं। प्रकोपित पत्तियाँ सूखने लगती हैं एवं कीट से ग्रसित पौधों में बैगन फल कम लगने के कारण पैदावार बहुत घट जाती है।

fu;=.k dh mik;

1. सफेद मक्खी आदि के लिए पीले चिपचिपे फंदे (यलो स्टिकी ट्रैप) या डेल्टा फंदे (ट्रैप) 2–3 प्रति एकड़ की दर से लगाएं।
2. चूसक नाशीजीवों तथा पत्ती मोड़क कीट को नियंत्रित करने के लिए एक–एक सप्ताह के अंतराल पर नीम बीज अर्क (एन एस के ई) के 5 प्रतिशत घोल का 2–3 छिड़काव करें।
3. यदि सफेद मक्खी तथा अन्य चूसक कीट नाशीजीवों का प्रकोप अब भी आर्थिक क्षति स्तर से अधिक हो तो 1000 मिली प्रति हे. की दर से 500 लीटर पानी मे पाइरीप्रॉक्सीफेन 10 प्रतिशत अथवा बिफेन्थ्रिन 10 प्रतिशत ईसी का घोल बनाकर 10–15 दिन के नियमित अंतराल पर छिड़काव करें।
4. भेदक शलभों को बड़े पैमाने पर फिरोमोन ट्रैप में फंसाने के लिए 8–10 ट्रैप प्रति हेक्टेयर की दर से लगाए जाने चाहिए। प्रत्येक 15–20 दिन के अन्तराल पर पुराने ल्यूर के स्थान पर ताजा ल्यूर लगाएं।
5. आरंभिक अवस्थाओं में समय–समय पर क्षतिग्रस्त प्ररोहों को काट देना चाहिए।
6. नीम बीज अर्क (एनएसकेई) एनएसकेई के छिड़काव से भी भेदक कीटों का प्रकोप बहुत कम हो जाता है। नीम के तेल (1 प्रतिशत) का प्रयोग करना भी भेदक कीटों के प्रकोप को कम करने में सहायक सिद्ध होता है, यद्धपि यह कम प्रभावी पाया गया है।
7. प्ररोह तथा फल बेधक के लिए एक–एक सप्ताह के अंतराल पर पर 4–5 बार टी. ब्रेसीसलयेण्न्सस के 1–1.5 लाख अंडा परजीव्याभ को प्रति हेक्टेयर की दर से छोड़ें।
8. सूत्रकृमियों तथा भेदक से होने वाली क्षति को कम करने के लिए रोपाई के 25 और 60 दिन बाद पौधों की कतारों के साथ–साथ मिट्टी में 250 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से नीम की खली का उपयोग (दो खुराकों में) करें । यदि हवा की गति तेज हो तथा तापमान 30 डिग्री सैल्सियस से अधिक हो तो नीम की खली का उपयोग न करें ।
9. प्ररोह तथा फल बेधक के प्रभावी नियंत्रण के लिए 15 दिन के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार क्लोरएंट्रानीलीप्रोल 18.5 एससी का 200 मिली प्रति हेक्टेयर अथवा ईमामेकटीन बेन्जोएट 5 एससी का 200 ग्राम अथवा थियामेथोक्सम 12.6 प्रतिशत लेम्बडा सायहेलोथ्रिन 9.5 प्रतिशत जेडसी का 375 मिली प्रति हे. की दर से 500–600 लीटर पानी में 10–15 दिन के नियमित अंतराल पर छिड़काव करें।

ड्रैगन फ्रूटः शुष्क क्षेत्र हेतु एक विदेशी फल

[1]vfdr fl g] [1]f'kojkt dekj oek ,o [2]dey'k dekj

विभिन्न तरह के फलों को हम सभी अपने आहार में सेवन करते हैं जिनके अनेकों स्वास्थ्य लाभ होते हैं। यद्धपि, आप तरह–तरह के फलों से परिचित होगें, किन्तु यहां हम जिस फल की बात करने जा रहे हैं, उसके संबन्ध में बहुत कम लोग जानते हैं। इस फल का नाम Mixu ÝV है। इसका वैज्ञानिक नाम हाइलोसेरस अंडेटस जो कैक्टेसी कुल से संबधित है। इसको पिताया फल के नाम से भी जाना जाता एवं इसको सुपरफ्रूट माना जाता है। यह देखने में बहुत आकर्षक लगता है। ड्रैगन फ्रूट कमल जैसा दिखता है, इसलिए भारत में अब इस फ्रूट का नाम संस्कृत शब्द ''कमलम'' (गुजरात सरकार ने) कर दिया गया है। विगत कुछ वर्षों में यह जन–मानस के बीच काफी लोकप्रिय फल बन गया है। पहले लोग ड्रैगन फ्रूट को इसके अनोखे रूप–रंग, आकर व स्वाद के लिए खाते थे, परन्तु इसके अनेकों स्वास्थ्य लाभ भी हैं। इसका उपयोग शेक, मुरब्बा, जेली एवं सलाद बनाकर किया जा सकता है।

यह फल महत्वपूर्ण पोषक तत्वों से भरपूर होता है। यह कैलोरी में कम तथा आवश्यक विटामिन, खनिज और खाद्य फाइबर से भरपूर होता है। ड्रैगन फ्रूट प्रोटीन, फाइबर, आयरन, मैग्नीशियम, विटामिन–सी और ई का बेहतरीन स्रोत होता है। एक ड्रैगन फ्रूट में 60 कैलोरी ऊर्जा व 2.9 ग्राम रेशा और किसी भी तरह का हानिकारक वसा नहीं पाया जाता है। इसलिए इसे आहार में शामिल करना फायदेमंद होता है।कई अन्य पोषणयुक्त फलों की तरह, ड्रैगन फ्रूट में भी कई स्वास्थ्य लाभ की संभावनाएं विधमान हैं। इसके सेवन से कई प्रकार के स्वास्थ्य लाभ होते हैं। नये मुलायम तने के साथ ही साथ ताजे फूलों की कलियों को सब्जियों के रूप में खाया जाता है। इसके आलावा जूस, जैम, सलाद के रूप में भी उपयोग होता है। इसके फल विभिन्न प्रकार के एंटीऑक्सिडेंट में समृद्ध होते हैं जो शरीर को मुक्तकणों से बचाने में मदद करते हैं, ये मुक्तकण पुरानी बीमारियों को जन्म दे सकते हैं और उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को भी तीव्र कर सकते हैं। अतः त्वचा को स्वस्थ और जवान बनाने में भी सहायक होता है। इसके फलों के नियमित सेवन से डायबिटीज, हृदय रोग, कैंसर, का कोलेस्ट्राल, गठिया, डेंगू, हड्डियों एवं दाँत, अस्थमा, गर्भावस्था, त्वचा, पेट संबन्धी विकारों से निपटने में मदद मिलती है।

इसमें प्रतिउपचायक, रेशा एवं विटामिन सी काफी मात्रा में पाया जाता है जिससे अनेक प्रकार की बीमारियों को ठीक करने में लाभ मिलता है। इसके फल को समय समय पर खाते रहने से शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र मजबूत होता है, साथ ही साथ पेट संबंधी विकार भी दूर करने मे लाभकारी पाया गया है। ड्रैगन फ्रूट का सेवन शरीर में लौह तत्व की कमी को भी संतुलित करता है अतः महिलाओं, बच्चों एवं बुजुर्गों के लिए यह काफी लाभप्रद फल है। ड्रैगन फलों को उच्च फाइबर (रेशा) सामग्री के लिए भी जाना जाता है, जो पाचन स्वास्थ्य को बनाए रखने और अस्वास्थ्यकर वजन बढ़ने से रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके उच्च पोषण मूल्य के कारण, ड्रैगन फल प्रतिरक्षा तंत्र को भी मजबूत करता है। यदि आपको कोरोनावायरस से खुद को बचाए रखना है, तो भी ड्रैगन फल खाना एक बेहतर विकल्प हो सकता है, क्योंकि यह फल प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत करता है। इसमें मौजूद विटामिन सी कैंसर होने के खतरे को कम करता है। इसमें बीटा कैरोटीन और लायकोपीन होता है, जो कैंसर और हृदयघात होने का खतरा कम कर सकता है। ड्रैगन फल में मौजूद विटामिन सी और कैरोटीनॉयड मनुष्य शरीर में प्रवेश करने वाले संक्रमण को रोककर बीमारियों को दूर रखता है।

इसकी उत्पत्ति स्थान को मध्य अमेरिका माना जाता है। यह एक किस्म की बेल (लता) पर लगने वाला फल है। इसके तने गूदेदार, रसीले होते है। इसके फूल बहुत ही सुगंधित होते हैं, जो रात में ही खिलते हैं और सुबह होने तक गिर जाते हैं। इसको अन्य उपनामों 'नोबल वुमन' या 'क्वीन आफ द नाइट', 'स्ट्राबेरी पीयर' एवं 'रात में खिलने वाले सेरेम', इत्यादि से भी जाना जाता है। इसके फलों पर सहपत्र लगे होने के कारण इसको पिताया/पिथैया भी कहा जाता है। फल बड़े, गुलाबी व लाल रंग के, काटने पर गूदा सफेद और काले रंग के बहुत ही छोटे व खाने योग्य मुलायम बीज होते हैं।

इसकी खेती के लिए उष्णकटिबंधीय जलवायु क्षेत्र उपयुक्त होता है। इसके पौधे को न्यूनतम वार्षिक वर्षा 50

[1]उद्यान विज्ञान विभाग, उदय प्रताप कालेज, वाराणसी (उ0प्र0)– 221002
[2]भाकृअनुप– केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर–334006

से.मी. तथा तापमान 20 से 30 डिग्री सेल्सियस की आवश्यकता होती है। सर्वोत्तम विकास और फल उत्पादन के लिए ड्रैगन फ्रूट अच्छी तरह से रोशनी वाले खुले क्षेत्र में लगाया जाना चाहिए। इस फल को लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है। बलुई मिट्टी जिसमें सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो इसकी खेती हेतु अच्छी रहती है। अच्छी फसल उपज के लिए मिट्टी का पी.एच. 5.5 से 6.5 के बीच होना चाहिए। यह भी देखा गया है कि कम उपजाऊ व कम पानी वाली भूमि पर भी ड्रैगन फ्रूट अच्छा पनपता है। इस फल की व्यावसायिक खेती विश्व के कुछ देशों जैसे इजराइल, वियतनाम, ताइवान, निकारगुआ, आस्ट्रेलिया एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में हो रही है। अगर हम अपने देश के संदर्भ में देखे तो इसकी खेती महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश व पश्चिम बंगाल के कुछ भाग में की जा रही है। वही राजस्थान में भी विगत कुछ वर्षो से इसकी खेती प्रायोगिक तौर पर जयपुर, गंगानगर, कोटा व कुछ अन्य जिलो में भी की जा रही है। इस फसल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे एक बार लगाये जाने के बाद लगभग 20 वर्षो तक फल मिलते रहते हैं।

इसके फलों का वर्गीकरण गूदे व त्वचा के रंग के आधार पर किया जाता है। ड्रैगन फ्रूट की किस्मों को रंग के आधार पर मुख्यतः तीन प्रकारों में बाँटा गया है– (1) सफेद रंग के गूदे के साथ लाल रंग का फल, (2) लाल रंग के गूदे के साथ लाल रंग का फल एवं (3) सफेद रंग के गूदे के साथ हल्के नारंगी रंग का फल। इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख किस्में इस प्रकार हैं– वल्दिवा रोजा, असुंता, कोनी मेयर, डिलाईट, अमेरिकन ब्यूटी, परपल हेज, एस–8 सुगट, औसी गोल्डन यलो वियतनाम व्हाइट, रायल रेड, सिंम्पल रेड, इत्यादि।

इसका प्रवर्धन सामान्यतः कलम विधि से होता है। जैसे ही ड्रैगन फ्रूट का तना जमीन को स्पर्श करता है, उसको काट कर कलम बना लेते है, जिससे तैयार पौधे से लगभग 14–15 माह बाद फल आने लग जाते हैं। हालांकि विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के लिए अवधि भिन्न–2 हो सकती है। प्रवर्धन हेतु कलम की लम्बाई लगभग 50–60 सेमी. रखी जाती है। इसका बीज से भी प्रवर्धन किया जा सकता है, परन्तु बीजू पौधे से फल आने में लगभग तीन वर्ष लग जाते हैं। ड्रैगन फ्रूट के पौध की रोपाई मुख्यतः दो विधियों से की जाती है। उर्ध्वाधर सहारा विधि एवं क्षैतिज सहारा विधि। उर्ध्वाधर सहारा विधि मे रोपण कतार के बीच 2–3 मी. की दूरी पर एवं सहारे 3 कलम को लगाते है, जो 2000 से अधिक कलम प्रति हेक्टेयर समायोजित करते है। वही क्षैतिज सहारे के साथ पौधे का धनत्व बहुत अधिक होता है जिसमें प्रति हैक्टेयर कलम का समायोजन उर्ध्वाधर विधि से अधिक होता है। पोधों का अच्छा ढाँचा विकसित करने के लिए कटाई–छटाई की क्रियाएँ आवश्यक होती हैं। पोधों की बात करें तो यह प्रारम्भिक चरण में अधिक घने होते हैं। पार्श्व की कलियों और शाखाओं को सहारे (पोल) की तरफ बढ़ने के लिए छटाई आवश्यक होती है। फिर पोल के ऊपर शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है और मुख्य तने के ऊपरी भाग को काट दिया जाता है जिससे नई कलिकाएँ निकलती है जो चक्रपथ पर चढ़ कर छाता जैसा संरचना बनाती हैं जहाँ फूल निकलेगें और फल में विकसित होगें जो पार्श्व शाखाओं को भी बनने के लिए प्रेरित करेगें। अच्छी तरह से विकसित बेल (शाखा) एक वर्ष में 30–40 शाखाए पैदा करती है जिसकी छटाई करके एक निश्चित अनुपात में रखते हैं। भारत में ट्रेलिस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है जिसमें एकल पोल प्रणाली एवं रिंग प्रणाली प्रमुख है।

एकल पोल प्रणाली

रिंग प्रणाली प्रमुख

अच्छी फल उपज के लिए उचित पोषक तत्व की आवश्यकता होती है। ड्रैगन फ्रूट के पौधे की जड़े छिछली व सतह पर ही होती हैं जिससे थोड़ा सा भी पोषक तत्व देने पर आसानी से अवशोषित कर लिया जाता है। समान्य तौर पर एक परिपक्व पौधे को 450 ग्राम नाईट्रोजन, 350 ग्राम फास्फोरस एवं 350 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। इन पोषण तत्वों को विभाजित मात्रा में निर्धारित समय के अन्तराल पर दिया जाता है। ड्रैगन फ्रूट के पौधे बहुत कम वर्षा व सूखे के कई महीनों तक जीवित रह सकते हैं। परन्तु अच्छी गुणवत्ता वाले फलों के लिए एक नियमित जल आपुर्ति की आवश्यकता होती है। अत्यधिक सिचाई से फफूंद रोग लगने लगते हैं। इसलिए बरसात के मौसम में उचित जल निकास प्रबंधन किया जाना चाहिए। शुष्क दिनों के दौरान सिंचाई सप्ताह में दो बार लगभग 2–4 लीटर पानी प्रति पौधा पर्याप्त होता है। शुष्क मौसम में ड्रिप सिंचाई प्रणाली के माध्यम से पौधे की सिंचाई सप्ताह में दो बार की जाती है। सामान्यतः फल तोड़ने के लिए 12–15 महीनों के बाद तैयार हो जाता है। फल तोड़ने के लिए फलों के बाहरी आवरण के रंग के आधार पर फल की परिपक्वता मापते है। पौधे जून से सितम्बर के महीनों में फल देते हैं। जिसका वजन 300–800 ग्राम/फल के बीच रहता है। तीन साल के पौधे से लगभग 30–35 किलोग्राम फल उपज मिल जाती है।

ड्रैगन फ्रूट का बगीचा, पुष्पन, फलन, तोड़े हुए फल एवं श्वेत तथा लाल गूदे वाले फल

राजस्थान में जैतून की खेती व इसका महत्व

vfuy dekj] dkey 'k[kkor ,o Lo.kyrk dekor

ifjp;

जैतून/औलीव (ओलिआ यूरोपिया एल.) एक सदाबहार बहुवर्षीय वृक्ष है जिसकी लम्बाई लगभग 4–10 मीटर होती है। यह वृक्ष मुख्य रूप से भूमध्य सागर की गर्म जलवायु वाले राष्ट्रों–पुर्तगाल, इटली, मिश्र, इजरायल, तुर्की, मोरक्को, टयूनीशिया, जॉर्डन, सीरिया में उगाया जाता है। समृद्धि व शान्ति के प्रतीक जैतून को इजरायल में एक पवित्र वृक्ष के रूप में जाना जाता है। वानस्पतिक विधि द्वारा उत्पादित जैतून के वृक्ष में 4–5 वर्ष में पुष्प आने लगते हैं। जैतून के फल 15–25 गुच्छों के रूप में आते हैं, चिकने, मुलायम होते हैं। इसके फल प्रारम्भ में हल्के हरे–पीले रंग के होते हैं, परन्तु पकने पर गहरे लाल व बैंगनी रंग के हो जाते हैं। जैतून के फल पकने में लम्बा समय (6–7 माह) लेते हैं। जैतून के फलों से निकलने वाला तेल (12–15 प्रतिशत) बहुत ही अच्छा गुणकारी होता है तथा इसके काफी उपयोग हैं। जैतून के तेल का बाह्य व आंतरिक उपयोग औषधि के रूप मे किया जाता है। साथ–साथ यह भरपूर पोषक तत्वों के रूप में भी जाना जाता है।

गमले में लगा
जैतून का पौधा

vk"k/kh; mi;kx

जैतून के तेल में, मौजूद एंटी ऑक्सीडेन्टस तथा विटामिन ई त्वचा की चमक के लिये, चेहरों की झुर्रियों को समाप्त करने, धब्बों को समाप्त करने तथा उम्र का प्रभाव कम करने के लिए जाना जाता है, बालों के लिए भी लाभकारी हैं, हड्डियों को मजबूत करने तथा दिल संबंधी

जैतून के फल

रोगों को दूर करने के लिय भी यह जाना जाता है। इसके बाहा प्रयोग से त्वचा चमकदार तथा मुलायम रहती है। खाने के लिये यह अच्छा गुणकारी माना जाता है। इसका उपयोग कोलेस्ट्रोल कम करने, शर्करा से बचाव, तनाव कम करने, कैंसर से बचाव, हाइपरटेंशन से बचाव, पाचन में सुधार व कब्ज दूर करने, माइग्रेन के सर दर्द का इलाज, त्वचा के लिये, बालों के लिये, जोड़ो के दर्द को कम करने में भी होता है। जैतून के तेल में ढेर सारे विटामिन (ए, डी, ई, के) व एंटीऑक्सीडेन्टस (पौलीफीनोल, (पौलीफीनोल, सायटोस्टेरोल, शायरोसोल, ओलियो कैथोल) सक्रिय पाये जाते हैं। इसमें उपस्थित पोलीफीनोल, विटामिन ई, सायटोस्टोरोल, कोशिकाओं को नष्ट होने से बचाते हैं। जैतून का तेल अल्ट्रावायलेट किरणों से भी बचाता है।

vU; mi;kx

चेहरे पर जैतून व नारियल का तेल सप्ताह में 2–3 बार लगायें। बालों पर रात को सोते समय लगायें, अगली प्रातः हर्बल सैम्पू से धोयें, दर्द में हल्का गर्म कर के दर्द की जगह पर लगायें व मालिश करें।

tSru rsy ds çdkj

1. एक्स्ट्रा वर्जिनः खाने का उच्च कोटि का तेल एसिडिटी कम करता है, सलाद ड्रैसिस व सब्जियों के तलने में काम आता है।
2. वर्जिन आयलः धीमी आंच में भोजन बनाने के काम आता है, रिफाइंड जैतून का तेल पोपेस जैतून का तेल।

अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, कृषि महाविद्यालय,
स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविधालय, बीकानेर, 334006

जैतून का तेल

jk t LFkku e: t:ru dh [k:rh

वर्ष 2007 में 19 अप्रैल को राजस्थान सरकार द्वारा निजी व सरकारी भागीदारी में राजस्थान ओलीव कल्टीवेशन लिमिटेड का गठन किया गया था। जैतून की सात किस्मों (बरनिया, अरबिक्युना कोरटिना, फिशोलिन, पिकवाल, कोरनियकी तथा प्रोन्टोय) का आयात कर वर्ष 2009–2010 के बीच 182 हेक्टेयर में रोपण किया गया। राजस्थान में 6 स्थानों पर जैतून के फार्म सथापित किये गये हैं तथा उनकी खेती की जा रही है यथा–ढिढोल, बस्सी, जयपुर (20.6 हेक्टेयर), वास, विसना, झंझुनु (30 हेक्टेयर), श्रीगंगानगर (30 हेक्टेयर), बाकलिया, नागौर (30 हेक्टेयर), साथू, जालौर (30 हेक्टेयर) व तिनकुरूड़ी, लवर (30 हेक्टेयर)। इसका तेल संशोधन संयंत्र, लूणकरणसर में है।

t yok;| rFkk Hkkfe

जैतून के लिये सर्दियों में पर्याप्त ठंड (1.5–10 डिग्री सेन्टीग्रेड) व गर्मियां काफी शुष्क गर्म (20–25 डिग्री सेन्टीग्रेड) मौसम उचित रहता है। इसके फल को पकने के लिये लम्बी गर्मी का मौसम चाहिये। आद्रर्ता कम होनी चाहिये। चिकनी व भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों में की बेड बनाकर पौधों का रोपड़ किया जाता है। जैतून के पौधों को 7 x 4 या 6 x 4 मीटर के फासले पर रोपा जाता है।

f l:pkbl 0;oLFkk

एक वर्ष तक प्रतिदिन या हर तीसरे दिन पर 0.3–0.5 दैनिक पैन वाष्पीकरण के आधार सिंचाई दी जानी चाहिये, प्रति पौधा 4–5 लीटर जल प्रतिदिन की आवश्यकता होती है। बाद में वृक्षों को ड्रिप तंत्र से जोड़ दिया जाना चाहिये। इस अवस्था में जल अधिक खारा नहीं होना चाहिये।

x ìk dk cukuk

जैतून की रोपाई के लिये 60 x 60 x 60 से.मी. आकार के गड्ढे पर्याप्त रहते हैं। प्रत्येक गड्ढे में 10 किलो कम्पोस्ट व 3 किलो वर्मीकम्पोस्ट डाल कर पौधे रोपित किये जाते हैं।

mo:j d 0;oLFkk

एक वर्ष के पौधों के लिये 25: 20: 20: 25 किलोग्राम नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश व कैल्शियम की क्रमशः आवश्यकता होती है। घुलनशील उर्वरकों का हर सिंचाई बाद प्रयोग करें। सर्दियों में उर्वरक ना दे। उर्वरक व्यवस्था पहले 3 वर्ष तक आवश्यक है तथा निम्न तालिका के अनुसार दें।

उर्वरक	प्रथम वर्ष (कि.ग्रा./हे.)	द्वितीय वर्ष (कि.ग्रा./हे.)	तृतीय वर्ष (कि.ग्रा./हे.)
नत्रजन	25	75	150
फॉस्फोरस	20	100	190
पोटेशियम	20	100	300
कैल्शियम	25	50	120
मैग्निशियम	–	–	60
जिंक	–	–	15
बोरोन	–	–	15

dVkbl&NVkbl

यह आवश्यक है कि पौधों से अधिक उत्पादन के लिये उनकी नियमित कटाई–छंटाई की जाये। पौधों को कप का आकार देने के लिये 70 से.मी. ऊँचाई होने पर ही शाखाएँ आनी चाहिये। पहले वर्ष में कटाई–छंटाई कम की जाती है तथा मुख्य तने के चारों ओर शाखाएँ आने दी जाती है। बाद में आवश्यकतानुसार कटाई–छंटाई की जाती है।

[kj i rokj fu;=.k

पौधों/वृक्षों के बीच की पट्टी में हाथ से या मशीन से या ग्लायफोसेट रसायन से खरपतवार निकालना

चाहिये। यह रसायन सभी हरे पौधों को मार देता हैं। अतः ग्लायफोसेट का प्रयोग सावधानी से करें।

Qyk e r y dh çfr 'kr rk

रोपण के 4–5 वर्ष बाद फल आने लगते हैं। प्रारम्भ में तेल की मात्रा कम (10–12 प्रतिशत) परन्तु 7–8 वर्ष की अवधि में लगभग 13–15 प्रतिशत तक तेल प्राप्त हो सकता है। लगभग 2000–2500 किलोग्राम जैतून का तेल प्रति हेक्टेयर प्राप्त किया जा सकता है। अतः किसान को जैतून की शुद्ध फसल से रूपये 2.50–3.0 लाख हेक्टेयर प्रति वर्ष बचत हो सकती है। इसके साथ–साथ अन्तर फसलें उगाकर इस लाभ को बढ़ाया जा सकता है।

fo'k"k

जैतून का तेल कोशिकाओं को नष्ट होने से बचाता है। इसके प्रयोग से चेहरे पर चमक आती है। झुर्रियाँ समाप्त होती है तथा उम्र का प्रभाव कम करने के लिये भी इसे जाना जाता है। हड्डियों को मजबूत करने के साथ ही दिल सम्बन्धी रोगों को भी दूर करता है। कोलेस्ट्रोल एवं शर्करा कम करना इसके दूसरे स्वास्थ्य फायदे हैं।

हिन्दी को आप जिस तरह से बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसी तरह लिखा भी कीजिए। भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिए।

– महावीर प्रसाद द्विवेदी

कलौंजी की खेती एवं उसका औषधीय महत्व

jkgrk'k flag Hknkfj;k[1]] KkuUn iırki frokjh[1]] lo'k f=ikBh[1] ,o ,- d- oek[2]

कलौंजी के दाने एण्टीऑक्सीडेण्ट से भरपूर होते है। जो कि शरीर की विभिन्न कोशिकाओं को नुकसान पहुचाने वाले नुकसान दायक मुक्त रेडीकल्स (तत्वरूप) से बचाते है। जो कि भारीर में विभिन्न प्रकार के कैंसर उत्पन्न करने वाले कारकों का भी उत्पादन रोकता है। साथ ही साथ कलौंजी का तेल जोड़ो के दर्द निवारक के रूप में काम करता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि यह शरीर के रक्त में उपस्थित कॉलेस्ट्राल को कम करता है, जो कि व्यक्ति को ह्रदयघात से बचाता है। कलौंजी के बीजों से एक प्रकार का सुंगधित तेल प्राप्त होता है, जिसमें निगेलोन तथा 2 मिथाईल 1 – 4 आइसाप्रोपिल, क्विनोन होते है।

Hkfe

आमतौर पर कलौंजी की उत्तम खेती हेतु कॅंकरीली, पथरीली ऊसर भूमियों को छोड़कर सभी की प्रकार की भूमि में सर्वोत्तम ढंग से उगाया जा सकता है। परंतु मटियार, दोमट, बलुई तथा दोमट भूमि जिसकी जलधारण क्षमता उत्तम है तथा जीवांश पदार्थो से भरपूर होने के साथ–साथ उचित जल निकास की व्यवस्था हो। इसकी खेती के लिए भूमि का पी.एच. मान 6.5 – 7.5 होना सर्वोत्तम माना गया है।

tyok;q

आमतौर पर बीजीय मसाला फसलों की उत्तम खेती के लिए शुष्क एवं ठण्डा मौसम (26–27 डिग्री सेल्सियस औसत तापमान) उत्तम उत्पादन के लिए सर्वोत्तम रहता है, साथ ही साथ बीजीय मसाला फसलों के लिए पाला रहित मौसम होना आवश्यक है। जिन क्षेत्रों की वार्षिक वर्षा 450–700 मिली मीटर तक होती है उनमें सफलतापूर्वक खेती की जा सकती है ।

[ksr dh rS;kjh

जिन खेतों में कलौंजी की बुवाई की जानी है उनमें खरीफ की फसल कटाई उपरांत दो से तीन जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करके एवं प्रत्येक जुताई उपरांत पाटा लगा कर भूमि को अच्छी प्रकार से समतल एवं भुरभुरी कर ले जिसे सुविधाजनक आकार की क्यारियों में विभाजित किया जा सकता है। ताकि कलौंजी के बीज भूमि में उचित गहराई पर डाले जा सके एवं उनका अंकुरण भली प्रकार से हो। बुवाई के समय भूमि में नमी की पर्याप्त मात्रा होना चाहिए, यदि नहीं है तो, खेत में पलेवा करके उचित नमी स्तर पर ही बुवाई करें ताकि खेत में पर्याप्त संख्या में पौधों का अंकुरण हो एवं उत्पादन अधिक प्राप्त करने में सहायता मिले।

cht nj

कलौंजी की उचित बुआई हेतु सीडड्रिल द्वारा बुआई करने पर 8–10 किलो/हेक्टेयर तथा छिड़काव विधि से बुवाई करने पर 16–17 किलो/हेक्टेयर बीज की मात्रा पर्याप्त होती है। कंलौजी की बुआई का समय नवंबर माह सर्वाधिक उपयुक्त होता है ।

cht ksipkj

बीज जनित रोग जैसे जड़ गलन एवं मिट्टी से पैदा कीटों से बचाव के लिए बीज को 2.5 ग्राम इफकोकागुया कार्बेंडाजिम 12 प्रतिशत + मैनकोज़ेब 63 प्रतिशत डब्ल्यू पी फफूॅंदनाशी, क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. 2.5 मिली एवं स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 10 मिली. प्रति किग्रा. की दर से उपचारित करना चाहिए। साथ ही खेत की अंतिम जुताई के समय ट्राइकोडरमा नामक फफूंद की 300 मिली. मात्रा को 100 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद या केंचुआ खाद में मिलाकर 3 दिन के लिए छायादार स्थान पर ढेरी बना दें एवं उसके ऊपर मोटा कपड़ा या जूट का बोरा डाल दें ताकि समान रूप से ट्राइकोडरमा बढ़ जाए एवं 3 दिन पश्चात अब इस मिश्रण को खेत में अंतिम जुताई के समय मिला देवें ताकि भूमि में उपस्थित हानिकारक कवक का नियंत्रण किया जा सके ।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, जावरा, जिला रतलाम (म.प्र.),
[2]केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

उन्नत किस्में

dykSath fdLe	idus dh vofèk ¼fnuksa e½	vkSlr mit ¼d- çfr-gs-½	fo'ks"krk;sa
एन.एस. 44	140 से 150	4.5 – 6.5	यह किस्म जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा विकसित की गई है
कालाजीरा	135–145		4 – 5
एन.एस. 32	140 से 150	4.5 – 5.5	यह किस्म जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा विकसित की गई है
ए.एन.– 1	135	8	सिंचित परिस्थितियों में अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है पौधे 30–35 सेमी ऊंचाई के होते हैं इस किस्म के पौधे जड़ सड़न के प्रति प्रतिरोध होता है इसके प्रत्येक कैप्सूल में 65 बीज होते हैं।
ए. एन. 20	140–150	10–12	इसे भाकृअनुप–राष्ट्रीय बीज मसाले अनुसंधान केंद्र, अजमेर द्वारा बड़े पैमाने पर चयन के माध्यम से विकसित किया गया है। इस किस्म में 28 प्रतिशत कुल तेल और 0.3 प्रतिशत वाष्पशील तेल होता है।
राजेंद्र श्यामा	140–150	8	बागवानी विभाग, कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर, आरएयू ढोली बिहार से किया गया था। यह किस्म पश्चिम बंगाल और बिहार राज्यों के लिए अनुशंसित है।
पंत कृष्णा	140	10	इस किस्म को गोविंद बल्लभ पंत कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, इस किस्म के पौधे मध्यम, मोटे बीज वाले होते हैं। उत्तर प्रदेश में खेती के लिए उपयुक्त होते हैं।
अजाद कलौंजी	135–145	10	यह किस्म चंद्रशेखर आजाद कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, कल्याणपुर, कानपुर में विकसित की गई है।

cqokÃ dh fofèk

कलौंजी की बुवाई छिटकवां विधि से या लाईनों में की जाती है, परन्तु लाईनों में बुवाई करना अधिक उपयुक्त है। अतः सीडड्रिल से लाईन की दूरी 30 सेंटीमीटर व पौधे से पौधे 15 सेंटीमीटर दूरी रखकर बीजों को 1.5–2.0 सेंटीमीटर की गहराई पर बुवाई करें। अन्यथा बीज के जमाव पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अंकुरण के पश्चात् 15 से 20 दिन पौधों की दूरी 15 सेंटीमीटर कर देवें। बुवाई के समय यदि खेत में नमी कम हो तो हल्की सिंचाई बुवाई के उपरान्त की जा सकती है। छिटकवां विधि से बुवाई करने पर बीज को समतल क्यारियों मे समान रूप से बिखेर कर मिट्टी में मिला दिया जाता है। भारी भूमि मे पलेवा देकर खेत को तैयार करके बुवाई करनी चाहिए लाइन बुवाई बेहतर है क्योंकि यह अंतर–सस्य क्रियाओं और पौध संरक्षण उपायों की सुविधा प्रदान करती है। बीज बोने के 10 दिनों के भीतर अंकुरित हो जाते हैं। सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि क्यारियों में पानी बहुत तेजी से न बहे अन्यथा बीज दूर ले जाकर मेड़ों की ओर एकत्रित हो सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप पौधों का असमान वितरण हो सकता है।

[kkn ,o moj d

आमतौर पर कलौंजी की उत्तम खेती हेतु मृदा परीक्षण के आधार पर ही खाद एवं उर्वरक की मात्रा का उपयोग करें। सामान्य तौर पर खेत की तैयारी से पहले 20 टन अच्छी प्रकार से विघटित हुई गोबर की खाद या 2–3 टन वर्मी कम्पोस्ट एवं 40:20:20 कि.ग्रा. नत्रजन, स्फुर एवं पोटाश की मात्राओं की प्रति हेक्टेयर जरूरत होती है। इसके लिए पहला विकल्प 69.90 कि.ग्रा. यूरिया, 43.50 किग्रा., डाई अमोनियम फास्फेट एवं 33.30 कि.ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश की जरूरत होती है। या दूसरे विकल्प के रूप में 87.00 किग्रा. यूरिया, 125.00 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट एवं 33.30 किग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश की प्रति हेक्टेयर जरूरत होती है। साथ ही यूरिया की आधी मात्रा बुवाई के पूर्व अंतिम जुताई के समय आधार खाद के रूप में दें। यूरिया की शेष आधी मात्रा को खड़ी फसल में फूल आने की अवस्था पर हल्की सिंचाई उपरांत समान रूप से खेत में बिखेर कर करें ताकि पौधों को उचित पोषण मिल सके एवं रस चूसने वाले कीटों का आक्रमण कम हो।

fl pkbZ

कलौंजी की खेती सिंचित एवं असिंचित दोनों प्रकार की भूमियों में की जा सकती है। आमतौर पर सिंचित क्षेत्र में तीन सिंचाई की आवश्यकता होती है। जो कि कलौंजी बुवाई के 30, 60 एवं 90 दिन बाद देकर अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए फसल को फूल आने और बीज बनने की अवस्था में पानी कमी का सामना नहीं करने देना चाहिए।

fuMkbZ ,o xqMkbZ

कलौंजी के खेत में खरपतवार होने की स्थिति में बुआई के 25 दिन के बाद हाथ से प्रथम निंदाई गुड़ाई एवं आवश्यकता होने पर दूसरी निंदाई गुड़ाई बुआई के 45 दिन बाद अवश्य करें। इनमें से किसी एक खरपतवार नाशक दवा ऑक्साडियार्गिल शाकनासी 0.075 किग्रा प्रति हेक्टेयर या पेंडीमेथालिन 0.750 से 1.0 किग्रा प्रति हेक्टेयर मात्रा को 400–500 लीटर पानी में घोलने के बाद फसल बीज अंकुरण से पूर्व या बुवाई के 72 घंटे के अंदर मुख्य खेत में छिड़काव कर खरपतवार का नियंत्रण किया जा सकता है ।

Qly lqj{kk

dVok bYyh& यह इल्ली पौधो को जमीन के पास से काट कर नुकसान पहुंचाती हैं। कटवा इल्ली आमतौर पर संध्याकालीन एवं रात्रिकालीन समय में पौधों के अंकुरण पश्चात जब उनके मुख्य भाग जैसे तना अत्यंत कोमल होता है, उस समय यह इल्ली उनको काटकर हानि पहुंचाती है। सामान्यतया इल्ली दिन में मुख्य क्षेत्र में दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि यह पौधों के आसपास मिट्टी के नीचे छिपा रहता है। इसकी रोकथाम के लिए एमामेक्टिन बेंजाएट 1.5 प्रतिशत + फिप्रोनिल 3.5 प्रतिशत एस.एसी. दवा 1.5 मिली लीटर मात्रा प्रति लीटर पानी के हिसाब से मिलाकर छिड़काव करें।

nhed& यह भूमिगत कीट सबसे ज्यादा फसल को हानि पहुंचाता है इस कीट की मादा खेत में कच्चे गोबर की खाद का प्रयोग करने एवं पुरानी फसल की अवशेषों मैं विशेष रूप से पैदा होता है एवं इस कीट की माता हजारों की संख्या में अंडे देती है जिन से निकले शिशु फसल के कोमल भागों जैसे जड़ आदि को काटकर हानि पहुंचाते हैं इसकी रोकथाम के लिए क्लोरोपाइरीफॉस 50 प्रतिशत ईसी. दवा की 2.0 मिली लीटर मात्रा प्रति लीटर पानी के हिसाब से मिलाकर छिड़काव करें। दीमक से अधिक प्रभावित क्षेत्रों में प्राथमिक उपचार के रूप में 50 किलोग्राम नीम की खली प्रति हेक्टेयर 100 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ मिलाकर अंतिम जुताई से पूर्व भूमि में अच्छी प्रकार से मिलाएं।

ekgw& हरे एवं काले रंग कीट 1 मिमी से लेकर 10 मिमी लम्बाई तक होती है। इस शर्करा द्रव को मधु–रस कहते हैं। यह कोमल कीट पौधों के विभिन्न भागों जैसे जड़ तना शाखाएं पत्तियां पुष्प कलिका फूलों से एवं फलों की सतह से सभी स्थानों से रस चूस कर पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को बाधित करते हैं साथ ही यह कीट बहुत अधिक चूसने वाला होने के कारण कम मात्रा में ही रस को पचा पाता है शेष अपच भोजन मधु–रस के रूप में बाहर निकालता है जिससे एक प्रकार की कवक विकसित होती है जोकि रोग उत्पन्न करने में सहायक होती है। प्राथमिक छिड़काव के रूप में नीम तेल 1500 पीपीएम दवा की 4 से 5 मिलीलीटर मात्रा को प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोलकर छिड़काव करें या डाइमेथोएट 30 ई.सी 1–1.5 मिलीलीटर मात्रा या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 3–5 मिलीलीटर मात्रा प्रति 15 लीटर पानी में घोलकर प्रातः कालीन समय में छिड़काव करें एवं आवश्यकता पड़ने पर पुनः 15 दिन उपरांत दूसरा छिड़काव करें। इंडोक्साकार्ब 14.5 एस. सी. 1.0 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर प्रातः कालीन समय में छिड़काव करें एवं आवश्यकता पड़ने पर पुनः 15 दिन उपरांत दूसरा छिड़काव करें ।

dSIlwy Hksnd& यह कीट कलौंजी के फूल से फल बनने की अवस्था पर आक्रमण करता है एवं कैप्सूल के अंदर के भाग को खाकर उसे खोखला कर देता है जिससे प्रति पौधा बीज उत्पादन प्रभावित होता है साथ ही उपज कम प्राप्त

होती है एमामेक्टिन बेंजाएट 1.5 प्रतिशत + फिप्रोनिल 3.5 प्रतिशत एस.एसी. दवा 1.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर प्रातः कालीन समय में छिड़काव करें एवं आवश्यकता पड़ने पर पुनः 15 दिन उपरांत दूसरा छिड़काव करें। एमेमेक्टिन बेंजोएट 5 प्रतिशत एस जी 5 ग्राम प्रति 15 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें ।

tM xyu%& कलौंजी की मुख्य समस्या है, इसके लिए रोग रहित बीज प्रयोग करें, बीज को उपचारित करके बोयें। जड़ गलन से समस्या ग्रस्त खेतों में कलौंजी ना लगाएं। 2. 50 कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा की मात्रा प्रति 100 किलो कम्पोस्ट के साथ मिलाकर छिड़काव कर देना चाहिये तथा हल्की सिंचाई करनी चाहिये। बीज को कार्बेंडाजिम 12 : + मैनकोज़ेब 63 : डब्ल्यू पी फफूँदनाशी द्वारा 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

Qly dVkÃ

कलौंजी की फसल लगभग 120–155 दिन मे पक कर तैयार हो जाती है। कटाई के लिए तैयार फसल से पूरे पौधे को हसिये से काट लिया जाता है, और खलिहान में 5–6 दिन तक के लिए सुखाने के लिए रखते हैं। सुखाने के पश्चात् डंडे से पीटकर बीजों को अलग कर लिया जाता हैं। एक हेक्टेयर से औसतन 8–10 क्विंटल की उपज प्राप्त की जा सकती हैं।

कलौंजी

पोषण वाटिका : मरु भूमि में आजीविका का एक बेहतर विकल्प

j[kk jkuh] ,l- vkj- ehuk] vkj- lh- cykbZ ,oa vuhrk eh.kk

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जो विभिन्न जलवायु और वातावरण की वजह से होने वाली फसलों की विविधता और विशेषता के लिए पूरे विश्व में प्रख्यात है। वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं, किसानों तथा अन्य हितधारकों के अथक प्रयासों के फलस्वरूप, आजादी के बाद से, भारत के खाद्यान्न उत्पादन में पांच गुना वृद्धि दर्ज की गई है, जिसका 2019–2020 में 292 मिलियन टन का रिकॉर्ड देखा गया है। देश ने बड़े पैमाने पर आत्मनिर्भरता हासिल की है और पिछले 70 वर्षों में न केवल खाने के लिए पर्याप्त खाद्यान्न का उत्पादन किया है, बल्कि उसका निर्यात भी किया है। वहीं दूसरी ओर अगर बागवानी की बात करें तो, कम क्षेत्रफल होने के बावजूद भी अनुपातन इसका उत्पादन खाद्यान्न से ज्यादा ही रहा है। अभी पिछले एक दशक से तो बागवानी का कुल उत्पादन भी खादयान्न उत्पादन से ज्यादा है, जो इस बात का प्रमाण है कि आने वाले समय में जागरूक उपभोक्ता के पोषण की पूर्ति की दृष्टि से बागवानी का भविष्य उज्जवल है। पिछले दो दशकों की खादयान्न एवं बागवानी के क्षेत्रफल और उत्पादन के आंकड़ों का विवरण तालिका 1 में दिया गया है।

rkfydk 1% Hkkjr esa [kk|kUu ,oa ckxokuh Qlyksa dk {ks=Qy vkj mRiknu

o"kZ	{ks=Qy ¼fe- gs-½		mRiknu ¼fe- Vu½	
	[kk|kUu	ckxokuh	[kk|kUu	Ckxokuh
2001–02	122.8	16.6	212.9	145.8
2002–03	113.9	16.3	174.8	144.4
2003–04	123.5	19.2	213.2	153.3
2004–05	120.1	18.5	198.4	166.9
2005–06	121.6	18.7	208.6	182.8
2006–07	123.7	19.4	217.3	191.8
2007–0	124.1	20.2	230.8	211.2
2008–09	122.8	20.7	234.5	214.7
2009–1	121.3	20.9	218.1	223.1
2010–11	126.7	21.8	244.5	240.5
2011–12	124.8	23.2	259.3	257.3
2012–13	120.7	23.7	257.1	268.9
2013–14	126.0	24.2	265.1	277.4
2014–15	122.0	23.4	252.0	281.0
2015–16	123.2	24.5	251.5	286.2
2016–17	129.2	24.9	275.1	300.6
2017–18	127.5	25.4	285.0	311.7
2018–19	124.8	25.7	285.2	311.1

स्रोत :– कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार

भारत के खेत खलिहानों में विभिन्न प्रकार की क्रांति तो आ गयी परन्तु अभी भी दुनिया के एक तिहाई से अधिक कुपोषित बच्चे भारत में रहते हैं। कुपोषण ने अभी भी अपनी साख पूरे देश में फैलाई हुई है। यूनिसेफ की "द स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स चिल्ड्रन 2019" की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में पांच साल से कम उम्र के बच्चों की 69

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

प्रतिशत मौतों के पीछे कुपोषण ही प्राथमिक कारण था। ग्लोबल न्यूट्रिशन रिपोर्ट–2018 ने भी देश में कुपोषण के संकट की पुष्टि की है, और यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत, अविकसित अथवा नाटे कद (उम्र के हिसाब से छोटा कद) वाले बच्चों की सूची में, 46.6 करोड़ की संख्या के साथ सबसे ऊपर है। कई अध्ययनों और शोधों से साबित हुआ है कि एक स्वस्थ महिला की स्वस्थ बच्चे को जन्म देने की संभावना ज्यादा है। अगर बात करें, देश में महिलाओं के स्वास्थ्य की तो, भारत में लगभग आधी महिलाओं, विशेष रूप से गर्भवती महिलाओं में कुपोषण और रक्ताल्पता की व्यापकता देश की खाद्य सुरक्षा पर गंभीर संकट पैदा कर सकती है। इस परिस्थिति में फल और सब्जियां एक रामबाण औषधि की तरह है जो नाना प्रकार के पोषक तत्वों का खजाना अपने अन्दर लिए हुए हैं। उदाहरण के तौर पर राजस्थान की मरुभूमि में उगाई जाने वाली कुछ प्रमुख फल एवं सब्जियों में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक तत्वों का विवरण तालिका 2 में दिया जा रहा है।

rkfydk 2 % çfr 100 xke [kk| Hkkx e: ik, tku okys çe[k ik"kd rRo

फल / सब्जी	प्रोटीन (ग्रा.)	कार्बोहाईड्रेट (ग्रा.)	वसा (ग्रा.)	रेशा (ग्रा.)	केल्शियम (मि.ग्रा.)	फोस्फोरस (मि.ग्रा.)	लौह (मि.ग्रा.)
बेर	0.8	17.0	0.1	0.6	25.6	26.8	1.8
बेल	1.8	31.8	0.4	2.9	85.0	50.0	0.6
अनार	6.0	18.7	1.2	5.1	14.5	70.0	0.3
आंवला	0.5	21.8	0.1	3.4	0.1	––	1.2
लसोड़ा	2.0	92.0	2.0	2.0	55.0	275.0	6.0
सांगरी	23.2	56.0	2.0	20	414.0	400.0	19.0
काचरी	0.3	7.5	1.3	1.2	0.1	––	0.2
फूट ककड़ी	0.4	15.6	1.1	1.3	0.8	––	0.8
टिंडा	1.4	3.4	0.2	1.0	25.0	24.0	0.9
ग्वार फली	3.2	10.8	0.4	3.2	130	57	1.1

हमारे देश में 80 प्रतिशत से ज्यादा छोटे और सीमान्त किसान हैं। छोटे और सीमान्त किसानों में बागवानी एक अच्छा विकल्प है जो कि कम भूमि और कम संसाधनों में भी परिवार के आहार की जरूरतों को पूरा करते हुए अच्छी आय दे सकता है। भारत में सभी राज्यों में फल एवं सब्जियों की खेती की जाती है। देश के पश्चिमी भाग में राजस्थान राज्य की अगर बात करें तो यह राज्य अपनी प्रतिकूल जलवायु की बदोलत, बागवानी के लिए अपार सम्भावनायें रखता है। राजस्थान राज्य का लगभग 61 प्रतिशत भाग विश्व प्रसिद्ध थार मरुस्थल के अंतर्गत आता है जिसका विस्तार राजस्थान के 12 जिले– बाड़मेर, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, श्री गंगानगर, हनुमानगढ़, ,जालौर, पाली, नागौर, चुरू, झुंझुनू और सीकर में हैं। थार मरूस्थल में वर्षा बहुत कम होती है और अनिश्चित भी है। यहां पर गर्मी के मौसम में तापमान 50 डिग्री सेल्सी. को भी पार कर जाता है और तेज हवाएं चलती है। यहाँ पर पानी की उपलब्धता के अभाव को मद्देनजर रखते हुए अनाज फसलों की तुलना में फल एवं सब्जियों की खेती, जिसमे पोषण वाटिका भी शामिल है, ज्यादा उपयुक्त एवं लाभकारी पायी गयी है।

ik"k.k okfVdk

वर्तमान समय में पोषण वाटिका बहुत प्रचलन में है जो, मनुष्य संसाधनों में मुख्य रूप से महिलाओं में होने वाली पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के साथ–साथ एक लाभकारी रोजगार के रूप में कारगर सिद्ध हो रहा है। पोषण वाटिका, रसोई वाटिका का उन्नत रूप है जिसमें सब्जियों के साथ फल, जड़ी–बूटीं, मसाले और अन्य उपयोगी पौधे जैसे औषधीय पौधे भोजन और आय के पूरक स्रोत के रूप में उगाये जाते हैं। घरों में रहने वाली महिलाएं अपने घरेलु कार्य के साथ–साथ इन वाटिकाओं में अपना समय और श्रम निवेश करके अपनी आर्थिक व्यवस्था सुधार सकती है और इस के साथ ही सदियों से चली आ रही देश में कुपोषण जैसी समस्या का निवारण भी कर सकती हैं।

ik"k.k okfVdk d fy, Qy ,o lfCt ;k dk pquko

पोषण वाटिका में फलों एवं सब्जियों के चुनाव के समय विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। उन्ही फसलों का चयन करें जो परिवार के लोगों को विशेषतः बच्चों एवं महिलों को पसंद हों। प्रत्येक फल एवं सब्जी अपने आप में अलग अलग प्रकार के पोषक तत्वों का खजाना है, तो

कोशिश करें कि विभिन्न प्रकार की फल एवं सब्जियां आपकी वाटिका में लगी हों। उन्ही फसलों का चयन करें जो उस क्षेत्र के वातावरण के अनुकूल हों और आपके परिवार के साथ–साथ स्थानीय रूप में प्रचलित हों और जिनकी बाजार में मांग भी अच्छी हो। राजस्थान की मरू–भूमि में निश्चित रूप से मिट्टी कम उपजाऊ है और साथ ही साथ पानी की गुणवत्ता (लवणीय/क्षारीय) भी एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने पर बदल जाती है। अतः पानी की लवणता को ध्यान में रखते हुए उन्ही फसलों का चुनाव करें जो अच्छे उत्पादन की क्षमता रखती है । अधिक बाजार योग्य अधिशेष के लिए उत्तम किस्म की प्रजातियां लगायें। खरीफ के मौसम में बेंगन, मिर्च, भिन्डी और कद्दूवर्गीय सब्जियां और रबी के मौसम में टमाटर, मटर, प्याज, गोभी, ग्वार फली, हरी पत्तेदार सब्जियां इत्यादि कुछ प्रमुख सब्जियां हैं जिन्हें पोषण वाटिका में लगाया जा सकता है। फलों में बेर, बेल, अनार, केर, करोंदा, फालसा, खेजड़ी, इत्यादि के पौधे भी लगाये जा सकते हैं।

ik"k.k okfVdk d mRiknk dk foi.ku

फलों एवं सब्जियों की खेती में सबसे बड़ी समस्या इनके विपणन की है। चूँकि ये जल्दी नष्ट होने वाले उत्पाद है। अतः इनका अधिक समय तक भण्डारण नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा बाजार में होने वाली मांग एवं पूर्ति की गतिविधियों की वजह से इनकी कीमतों में काफी उतार–चढ़ाव बना रहता है। इन परिस्थितियों में उत्पादकों को पारिश्रमिक मूल्य पाने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है:–

d½ उन्नत तकनीकियों का प्रयोग करते हुए अगेती फसलों को उगायें जिससे समय से पूर्व सब्जियां मिल सकें और बाजार में पूर्ति के अभाव में उनकी अच्छी कीमत मिल सके।

[k½ अगेती फसलों का चयन करके, साल में एक से ज्यादा बार फसल को लिया जा सकता हैं एवं आय में वृद्धि की जा सकती है।

x½ इसके अलावा उन्नत किस्मों का प्रयोग करें जिससे सामान्य प्रजातियों की तुलना में प्रति क्षेत्रफल उत्पादन अधिक हो और बाजार योग्य अधिशेष ज्यादा मिले।

?k½ फसल उत्पादों, मुख्य रूप से फल एवं सब्जियों को अच्छे दाम दिलाने में उनके स्वाद के साथ–साथ उनकी दिखावट का भी बराबर का योगदान होता है। वर्तमान समय का ग्राहक अपने और अपने परिवार के स्वास्थ्य के लिए जागरूक है। आज के समय में फल और सब्जी जितनी ताजा और बेदाग होगी, उपभोक्ता उतने ही आकर्षित होंगे और अपनी क्षमता के अनुसार कीमत भी चुकाने के लिए तैयार होते हैं। अतः फल एवं सब्जियों की तुड़ाई के बाद भी उनके रख–रखाव में सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

p½ फसलों की गुणवत्ता और रूप–रंग को ध्यान में रखते हुए कम से कम रसायनों का उपयोग करें और कीट एवं रोग प्रतिरोधी प्रजातियों को उपयोग में लायें।

N½ फल एवं सब्जियों का विभिन्न रूप में सेवन किया जा सकता है। इनका प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन करके अलग–अलग उत्पाद बनाये जा सकते हैं जो की अलग अलग उपभोक्ताओं द्वारा उनकी रुचि के अनुसार सेवन किये जाते हैं। इस तरह बाजार को अलग अलग उपभोक्ताओं में विभाजित करके, उनकी क्षमता के हिसाब से दाम लगाकर अधिक मुनाफा प्राप्त किया जा सकता है।

t½ बाजार में ले जाने से पहले उत्पाद की ग्रेडिंग और छँटाई अत्यन्त आवश्यक है । समय चाहे कितना भी लगे किन्तु फल एवं सब्जियों को उनके आकार, रंग अथवा किसी और मानक के अनुसार अलग–अलग हिस्सों में बाँट लें और तभी बाजार में लायें। इस तरह ग्राहक पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा और अच्छे फल एवं सब्जियों में होने वाला फायदा सुनिश्चित हो जायेगा ।

>½ किसान यदि एक साथ मिलकर संगठन के रूप में काम करें तो किसान उत्पादक संगठन (एफ. पी. ओ.) जैसी संस्था स्वयं बनाकर अथवा अन्य संगठनों में शामिल होकर अनेक सुविधाओं का लाभ उठा सकते हैं। किसान उत्पादक संगठन का मुख्य उद्देश्य उत्पादकों के लिए बेहतर आय सुनिश्चित करना है।

ik"k.k&okfVdk dh ykHkçnrk

अनाज फसलों की तुलना में, फलों एवं सब्जियों की खेती कम संसाधनों में भी संभव है। राजस्थान के प्रमुख फल वृक्षों में बेर, बेल, अनार, खजूर, लसोड़ा, जामुन, केर, फालसा और खेजडी इत्यादि हैं। इन फसलों को शुरुआती वर्षों में, खाद, पानी इत्यादि का अधिक ध्यान देना होता है। पौधों की अलग अलग संरचना के अनुसार 3–5 वर्ष में ये फल देने लगते हैं। उदाहरण के तौर पर प्रजाति एवं बाग प्रबंध के अनुसार बेर के पूर्ण विकसित पौधे से 40–200 किलोग्राम फल उपज प्राप्त होती है। औसतन 20 रुपया प्रति किलोग्राम के दर से कुल 800–4000 रूपये तक की सकल आय एक बेर के विकसित पौधे से प्राप्त की जा सकती है। फल वृक्षों की खेती में शुरुआती वर्षों में ज्यादा खर्चा रहता है। परन्तु धीरे–धीरे यह कम होने लगता है और समय–समय पर खाद और कटाई–छटाई वगैरह का खर्चा ही मुख्य रहता है। फल वृक्षों में केवल फल ही नहीं अपितु

लकड़ी और पत्तियां भी आर्थिक मूल्य रखती हैं जो कि ईंधन और पशुओं के चारे के काम आती है। खेजडी थार मरुस्थल का कल्पवृक्ष माना जाता है। यह जमीन में नाइट्रोजन स्थिरीकरण का काम करती है जिससे इसके नीचे होने वाली फसलों की उपज बढ़ जाती है। प्रत्यक्ष रूप से तो खेजडी का पूरा वृक्ष ही आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है इसके अतिरिक्त इससे होने वाली अन्य फसलों की उपज में वृद्धि रेगिस्तान के किसानों के लिए बोनस का काम करती है।

पश्चिमी राजस्थान में उगाई जाने वाली सब्जियों में लौकी, तोरई, मतीरा, खरबूजा, तर ककरी, खीरा, छप्पन कद्दू, काचरी, फूट ककड़ी, ग्वार फली, सांगरी, इत्यादि प्रमुख फसलें हैं। सब्जियों की खेती में लगने वाली परिवर्तनीय लागत में, मुख्यतः कद्दूवर्गीय फसलों में, बीज और मजदूरी की लागत मुख्य है। चूँकि इन फसलों में एक से ज्यादा बार सब्जियों की तुडाई होती है, अतः इनका बुआई से लेकर फसल के पकने और तुडाई तक अच्छे से देखभाल करनी होती है। इन सब्जियों की मांग इत्यादि को ध्यान में रखते हुए राजस्थान से बाहर के राज्यों में मुख्यतः पंजाब में भी इन्हें बेचा जाता है। अतः अन्तर्राज्यीय विपणन में परिवहन लागत, जो कि दो स्थानों की दूरी और उत्पाद की मात्रा पर निर्भर करती है, भी कुल लागत में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। उदहारण के तौर पर एक हेक्टेयर से लौकी की 150–200 क्विंटल तक उपज प्राप्त की जा सकती है, जिसे औसतन 15 रूपये प्रति किलोग्राम की दर से बेचने पर 2,25,000 –3,00,000 रूपये तक सकल लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

lkjk'k

गत वर्ष से विश्वभर में अपनी साख जमाये कोरोना महामारी ने ग्राहक को अब अपने स्वास्थ्य के प्रति ओर अधिक चिंतित एवं जागरूक कर दिया है। पूरा देश अब रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने की होड़ में लगा हुआ है। इस स्थिति में फल एवं सब्जियां एक मुख्य नायक की भूमिका अदा कर रहे हैं। जहाँ इस महामारी ने हमें अपने स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही का अच्छा सबक सिखलाया है तो वही एक और बात निश्चित है कि इससे फल एवं सब्जियों के बाजार को भी ईंधन मिला है। किसान पोषण वाटिका लगा कर निश्चित तौर पर एक अच्छी आय कमा कर अपनी आजीविका का निर्वाहन कर सकते हैं। इसकी खेती में अगर वैज्ञानिक तरीका और आधुनिक तकनीकियों का प्रयोग करें तो अनावश्यक होने वाले खर्चे को भी बचा सकते हैं। इसके अलावा, बीज बाजार से न खरीदकर स्वयं उनका उत्पादन करें तो अपनी लागत को प्रभावशाली रूप से कम करके अधिक मुनाफा प्राप्त कर सकते हैं। तपते मरुस्थल में बागवानी ना सिर्फ जीवन को संभव करती है बल्कि आजीविका का भी एक महत्वपूर्ण संसाधन है।

ik"k.k okfVdk

ग्रामीण महिलाओं का बागवानी के माध्यम से सशक्तिकरण

[1]vuhrk eh.kk] [2]uh: iek flag] [2]ek/kjh ehuk ,oa [2]uhru ehuk

बागवानी कृषि के सबसे तेजी से बढ़ते क्षेत्रों में से एक है। पिछले ढाई दशकों के दौरान इस क्षेत्र की वृद्धि लगभग 5.5 प्रतिशत थी। बागवानी में फसलों से अधिक रोजगार और आय प्रदान करने की क्षमता होती है। रोजगार सृजन और आय में वृद्धि के अलावा बागवानी क्षेत्र में मूल्य वृद्धि का बहुत बड़ा क्षेत्र है, जो न केवल खेती को रोजगार प्रदान करता है बल्कि भूमिहीन महिलाओं के लिए रोजगार प्रदान करता है।

बागवानी भारत में कृषि के सबसे बड़े क्षेत्रों में से एक है। कुल कृषि क्षेत्र में बागवानी क्षेत्र का योगदान 1970–71 में 15.3 प्रतिशत से बढ़कर 2001–02 में 29.5 प्रतिशत हो गया है। पिछले कुछ दशको में इन फसलों के अंतर्गत आने वाले फसल क्षेत्र में बड़ी वृद्धि हुई है। 1950–51 में बागवानी फसलों का उत्पादन 0.76 मिलियन हेक्टेयर था जो 2007–08 में बढ़कर 20.08 मिलियन हेक्टेयर हो गया। बागवानी फसलों का उत्पादन 1991–92 में 96 मिलियन टन से बढ़कर 2007–08 में 207 मिलियन टन हो गया है।

कुल शुद्ध क्षेत्र 142 मिलियन हेक्टेयर है। बागवानी फसलें 23 मिलियन हेक्टेयर में उगायी जाती हैं। विभिन्न फसलों में, फल और सब्जी की फसलें कुल उत्पादन में 31 प्रतिशत और 61 प्रतिशत योगदान देती है, जबकि 6 प्रतिशत वृक्षारापेण फसलों और फलों, मसालों और औषधीय पौधों सहित अन्य फसलों द्वारा योगदान दिया जाता है। यह अनुमान लगाया जाता है कि 70 प्रतिशत वास्तविक कृषि कार्य करती हैं और कृषक समुदाय में 60 प्रतिशत भाग महिलाओं का है। बागवानी में महिलाओं की भूमिका को अभी तक सही से नहीं परखा गया है।

महिलाएं देश की 50 प्रतिशत आबादी का गठन करती हैं और घर या उद्योगों में कृषि से संबंधित 90 प्रतिशत गतिविधियों में महत्वपर्ण योगदान देती है। सामान्य रूप से महिलायें जीवन के हर क्षेत्र में सक्षम हैं। बड़े स्तर पर परिवार और समाज के बेहतर कामकाज के लिए सभी स्तरों पर महिलाओं की प्राकृतिक बहुमुखी मांग है। इसलिए महिलाओं के लिए उन कौशलों को चुनना और विकसित करना महत्वपूर्ण हो जाता है जो उनकी प्राकृतिक लय के अनुरूप हों ताकि वह बिना तनाव के अपनी बहुमुखी प्रतिभा को कुशलता से कर सकें।

महिलायें बागवानी फसलों की विभिन्न उत्पादन और बाद की गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाती है। पिछले दो–तीन दशकों में कृषि में लगी महिलाओं की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है, क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों जैसे शहरी क्षेत्रों में पुरुषों का पलायन, निर्माण और अन्य क्षेत्रों में श्रम बल की मांग में वृद्धि हुयी है। बागवानी क्षेत्र में शामिल महिलाओं के आंकड़े बहुत कम हैं, लेकिन खेती और फसल कटाई के बाद के सचांलन और भडांरण में महिलाओं की भागीदारी बहुत अधिक है। बागवानी फसलें उनकी खेती के तरीकों के संबधं में क्षेत्र की फसलों से भिन्न होती हैं। अधिकाशं फल, सब्जियां, सजावटी और वृक्षारोपण फसलें सीधे बीज द्वारा नहीं होती हैं। उन्हें नर्सरी में अंकुर उत्पादन और उसके बाद मुख्य क्षेत्रों में रोपण के माध्यम से उठाया जाता है। महिलाओं द्वारा बीज की सफाई, बीज की तैयारी और खेत में बुवाई की जाती है। इन गतिविधियों में उनकी भागीदारी 80 प्रतिशत से अधिक है।

भूमि तैयार करने की गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी जैसे कि मल संग्रह, खाद का उपयागे और नर्सरी में और मैदान की सफाई 60 प्रतिशत से अधिक है। सब्जियों की रोपाई में महिलाओं की भागीदारी 80 प्रतिशत से अधिक है। लगातार लगाए गए रोपों में लगातार पानी और उचित पोषण में महिलाओं की भागीदारी बहुत अधिक है। सिंचाई, निराई गुड़ाई, फसल चक्र, निराई जैसे विभिन्न कृषि क्रियाएं महत्वपूर्ण है। बागवानी फसलों में 80 प्रतिशत से अधिक निराई का काम महिलाओं द्वारा किया जाता है। महिला कार्यकर्ता विशेष रूप से फसलों, सब्जियों, फूलों और मसालों की कटाई में शामिल हैं। सब्जियों मटर, मिर्च, भिंडी, टमाटर, बैंगन, आलू, प्याज, मसालों की कटाई मुख्य रूप से महिला श्रमिकों द्वारा की जाती है। फसल की कटाई के बाद इसकी सफाई, उपचार, ग्रेडिंग और अन्य विभिन्न कार्य भी महिला मजदूरों द्वारा किए जाते हैं। किसान एवं व्यापारियों के स्तर पर सब्जियों और मसालों की सफाई और ग्रेडिंग करने का कार्य महिलाओं द्वारा किया जाता है।

बागवानी फसलों की खेती में महिलाओं की

[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भागीदारी जाति, क्षेत्र, सामाजिक कारक, परिवार की सामाजिक स्थिति जैसे कई कारकों से प्रभावित होती है। परिवार के स्वामित्व वाली भूमि का आकार के अनुसार बागवानी में महिलाओं की भागीदारी से पता चला कि बागवानी फसलों के उत्पादन और फसल कटाई के बाद के कई मुद्दे हैं। परंपरागत रूप से महिलाओं से खेत संचालन करने की अपेक्षा की जाती है, जिसमें स्वयं द्वारा किये जाने वाले कार्य शामिल होते हैं, जिनमें अधिक शारीरिक शक्ति की आवश्यकता नहीं होती है। महिलाओं की कौशल प्रशिक्षण और सूचना तक पहुंच नहीं है। आमतौर पर महिलाओं को प्रौद्योगिकियों को डिजाइन करने और परीक्षण करने में भदेभाव किया जाता है। उपकरणों को महिलाओं के अनुरूप नहीं बनाया गया है। महिलाओं की शारीरिक क्षमता पुरूषों के अनुरूप नहीं होती है अतः उनके लिए तकनीकी कार्य पुरूषों से भिन्न होने चाहिए।

अध्ययनों से पता चला है कि महिलाओं ने आधुनिक और नव प्रौद्योगिकियों पर स्थानीय रूप से उपलब्ध उपायों की कम लागत को प्राथमिकता दी है। नव प्रौद्योगिकी के कार्यरूप में परिणित होने पर महिलाएं पारंपरिक रोज गार के अवसरों से विस्थापित हो जाती हैं। महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन मिलता है आरै भूमि, उपकरण, बाजार और ऋण जैसे संसाधनों तक उनकी पहुँच सीमित है। बागवानी में लिंग भूमिकाओं पर पैटर्न से पता चलता है कि गरीबी के साथ बागवानी में महिलाओं की श्रम भागीदारी बढ़ जाती है। फल की खेती की तुलना में सब्जी की खेती में महिला पारिवारिक श्रम अधिक है। महिला पारिवारिक श्रम क्षेत्र की गतिविधियों की तुलना में उच्च कटाई के बाद का कार्य है पुरुषों और महिलाओं के बीच फसल के चयन और बागवानी फसलों की किस्मों में लिंग अंतर है। सब्जियों में फसलों की पैदावार और अवधि दोनों पुरुषों और महिलाओं को पसंद किया जाता था। पुरुषों द्वारा पसंद की जाने वाली फसलों की विशेषताओं में बीमारियों, कीटों और अन्य जैविक और अजैविक तनाव और कुछ गुणवत्ता विशेषताओं के प्रतिरोध थे। जबकि महिलाएं फसलों या उन किस्मों को पसंद करती हैं जिनमें खेत के संचालन को आसानी से किया जा सकता है।

बागवानी फसलों में लिंग के मुद्दे खेत की फसलों से कुछ अलग हैं। लेकिन तथ्य यह है कि महिलायें दोनों प्रकार की फसलों के उत्पादन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। चूंकि बागवानी फसलें अपने वाणिज्यिक, पोषण और निर्यात क्षमता के कारण महत्व प्राप्त कर रही हैं, महिलाओं की भूमिका में बदलाव होने की संभावना है और अधिक से अधिक मुद्दों के उभरने की उम्मीद है।

xkeh.k efgykvk dk lkenkf;d uljh e Hkkxhnkjh

सफल व्यावसायिक सब्जी के लिए गुणवत्ता वाले रोपण की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक है। किसान महिलाये आमतौर पर निजी रूप में अपने घर के पिछवाड़े में छोटी नर्सरी तैयार करती हैं। हालांकि यह अक्सर गांवों में देखा जाता है कि शुरुआती चरणों में फसल कीट और रोग के कारण नष्ट हो जाती है। रोग या प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखा, अत्यधिक बारिश, बाढ़ के कारण किसान के पास नई नर्सरी स्थापित पर्याप्त संसाधन नहीं जुटा पाता है। इन स्थितियों में किसान को पूरे मौसम में नुकसान होने का खतरा होता है। ऐसी स्थितियों को प्रबंधित सामुदायिक नर्सरी द्वारा हल किया जा सकता है। वाणिज्यिक स्तर पर उच्च गुणवत्ता वाले पौधशाला के लिए साधन संपन्न किसान–समूहों द्वारा पॉलीहाउस जैसी संरक्षित संरचनाएं स्थापित कर अधिक लाभ लिया जा सकता है। इस तरह की पौधशाला वांछित गुणवत्ता और मात्रा के नियमित और आकस्मिक स्रोत के रूप में काम कर सकती है।

lkenkf;d uljh dk xBu vkj vkipkfjdrk

1- efgyk fdlku Lo;a lgk;rk lengk dh tkx:drk

बीज बैंकों के विपरीत सामुदायिक नर्सरी में ग्राहकों की संख्या कम हो सकती है। इस जागरूकता का निर्माण सामुदायिक नर्सरी के गठन की दिशा में एक प्रमुख कदम है। एक बार महिला किसान समूह उस उपक्रम को लेने के लिए तैयार हैं जिसके लिए उन्हें विभिन्न गतिविधियों के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। नर्सरी प्रबंधन संसाधनों में व्यक्ति या प्रौद्योगिकी प्रदाताओं को समूह का मार्गदर्शन करना होता है। पौधशाला की भूमि अथवा पॉलीहाउस के निर्माण के लिए प्रबंधन का स्रोत, प्रौद्योगिकी के लिए कम लागत वाले पॉलीहाउस, गमलों का मिश्रण, गुणवत्तापूर्ण बीजों, कीट और बीमारी का स्रोत प्रबंधन, आदि पर महिला किसानों को प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण में भाग लेने वाले महिला किसानों को गुणवत्ता वाले उत्पादन के मूल सिद्धांतों पर प्रारंभिक अभिविन्यास और प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। उन्हें बेहतर नर्सरी प्रबंधन में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

2 efgyk fdlku }kjk ljf{kr lajpukvk ,o i,yhgkml dk fuekZ.k

राज्य सरकारों की विभिन्न योजनाएं जो सब्सिडी के साथ विभिन्न आकारों के पॉलीहाउस के निर्माण की सुविधा प्रदान करता है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड ऐसे

उपक्रमों के लिए सहायता भी प्रदान करता है। वैकल्पिक रूप से किसान बांस का उपयोग करके कम लागत वाले पॉलीहाउस तैयार कर सकते है। निर्माण के लिए चयनित स्थल में जल भराव नहीं होना चाहिए। नियमित जल आपूर्ति के लिए भी उसमें उचित प्रावधान होना चाहिए।

3- lkdj mRiknu vkSj foi.ku

अंकुर उत्पादन में महिला किसानों को स्थानीय बीजों को प्राथमिकता देनी चाहिए। पौध की आपूर्ति को नियमित बनाने के लिए बुवाई समुचित तरीके से की जानी चाहिए। पौधों की जड़ों को जैव–एजेंट के साथ उपचारित किया जाना चाहिए। रोग और कीटों के उपचार के द्वारा पौधों की मृत्यु दर को कम किया जा सकता है।

lkeqnkf;d cht cSad vkSj uljh esa efgykvksa dh Hkkxhnkjh

गांवों के विकासात्मक कायर्क्रम में महिलाएं मुख्य आधार होती हैं जैसा कि पहले बताया गया है कि महिला स्वयं सहायता समूह आत्मनिर्भर होने के लिए फल और सब्जी की वाणिज्यिक पौधशाला स्थापना, कटाई उपरांत प्रसंस्करण, आदि खेती से जुड़े व्यवसायों में बैंक की सहायता से पहल कर आगे बढ़ सकते हैं। यह देखा जाता है कि स्वयं सहायता समूह परिवार में महिलाओं ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न कार्यो के द्वारा यागेदान दिया हैं।

efgyk fdlkuksa ds fy, ;kstuk,¡%&

क) महिला समूहों की पहचान जो बागवानी समर्थन को कड़ीगत करने के लिए नेटवर्क रूप में कार्य करेगी।

ख) महिला किसानों की आवश्यकता, बागवानी समर्थन, इनपुट, तकनीकी और विस्तार के संदर्भ का आकलन।

ग) महिला समूहों की गतिविधियों का आवश्यकता आधारित मूल्यांकन कर व्यक्तिगत प्राथमिकता देना।

घ) महिला समूहों को पर्याप्त संगठनात्मक और वित्तीय सहायता प्रदान करना।

च) महिला किसानों को बागवानी और संबद्ध क्षेत्रों में तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करना।

छ) कृषि और संबद्ध क्षेत्रों में लिंग के मुद्दे पर बुनियादी, रणनीतिक और अनुप्रयुक्त अनुसंधान करने के लिए उचित प्रौद्योगिकियों और नीतियों के परीक्षण।

ज) शोधन के माध्यम से फसल उत्पादन और उत्पादन के बाद की प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका के गुणात्मक और मात्रात्मक मूल्यांकन के लिए अध्ययन शुरू कराना।

इस प्रकार ग्रामीण महिलाओं का सशक्तीकरण आर्थिक और पोषण सुरक्षा के उचित माध्यम से किया जा सकेगा और आवश्यकता आधारित प्रौद्योगिकियों के विकास के माध्यम से बागवानी फसलों के उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

विटामिन 'सी' का महत्व एवं शुष्क क्षेत्रीय फलों एवं सब्जियों में उपलब्धता

ujæ flag[1]] lgkuk d- ih-[2] ,o HkkuJh ,u[2]

शरीर के संतुलित विकास के लिए, भोजन के सभी घटकों (प्रोटीन, वसा, कार्बोहाईड्रेट, विटामिन व मिनरल) का समुचित समावेश किया जाना आवश्यक है। इनमें से किसी भी एक घटक में असुंतलन शारीरिक अथवा मानसिक विकार का कारण बन सकता है। विटामिन्स इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण, कार्बनिक यौगिक होते है, जो की अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में शरीर की संतुलित वृद्धि, विकास तथा उपापचय के लिए आवश्यक होते हैं। इनका हमारे शरीर में या तो संश्लेषण नहीं होता है, अथवा आवश्यक मात्रा में नहीं हो पाता है। अतः भोजन के माध्यम से ही इनकी पूर्ति करनी होती है।

हमारे शरीर के लिए आवश्यक विटामिन्स की संख्या 13 है, जिन्हें इनकी विलेयता के आधार पर, वसा विलेय व जल विलेय विटामिन में वर्गीकृत किया गया है। विटामिन 'ए', विटामिन 'डी', विटामिन 'ई' व विटामिन 'के' वसा में घुलनशील विटामिन हैं, ये हमारे शरीर में सुगमता से संचित किए जा सकते है। विटामिन 'बी' एवं विटामिन 'सी' जल विलेय विटामिन है, सामान्यतः ये शरीर में संचित नहीं होते है, अतः इनकी आवश्यक मात्रा भी वसा विलेय विटामिन्स से अधिक होती है। साथ ही साथ आवश्यक्ता से अधिक मात्रा में सेवन करने पर भी वसा विलेय विटामिन्स की तरह, इनके ज्यादा दुष्परिणाम नहीं होते है क्योंकि, इन्हें मूत्र के साथ सरलता पूर्वक उत्सर्जित कर दिया जाता है।

विटामिन 'सी' (एस्कोर्बिक एसिड या एस्कोर्बेट), इनमें से एक प्रमुख एवं सबसे महत्वपूर्ण विटामिन है। खाद्य पदार्थों में यह सोडियम एस्कोर्बेट अथवा कैल्शियम एस्कोर्बेट के रूप में पाया जाता है। इस विटामिन की जानकारी 17 वीं शताब्दी से है, जब लम्बी समुद्री यात्राओं पर जाने वाले सैनिकों एवं यात्रियों को नींबू का रस सेवन करने की सलाह दी जाती थी, परन्तु इसकी पहचान 1912 में, नींबू के रस में चर्म सम्बन्धी विकार 'स्कर्वी' के बचाव कारक के रूप में हुई। हमारे शरीर के लिए इसका स्रोत खाद्य पदार्थ ही है क्योंकि, ये हमारे शरीर में संश्लेषित नहीं होता है। यह माना जाता है, कि उद्विकास के दौरान प्रचुर मात्रा में फलों व वनस्पतियों को शामिल करने की वजह से चयनात्मक दबाव के परिणामस्वरूप मानव शरीर ने इन्हें संश्लेषित करने की क्षमता दी। यह शाकाहारी भोजन (ताजे फल और सब्जियों) में प्रचूर मात्रा में पाया जाता है, इसलिए इन्हें आहार में सम्मिलित करना आवश्यक है। राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद की अनुशंसा की अनुसार संतुलित आहार की दृष्टि से एक वयस्क को प्रतिदिन कम से कम 45 मिग्रा तक विटामिन सी का सेवन करना चाहिए। विश्व स्वास्थ संगठन ने इसे 20 आवश्यक औषधियों में भी शामिल किया है तथा, सबसे सुरक्षित और प्रभावी औषधि की श्रेणी में रखा है।

foVkfeu ^lh^ dk egRo

- यह कोलेजन नामक तंतु प्रोटीन के संश्लेषण में भाग लेने वाले कई महत्वपूर्ण एन्जाइम्स की सक्रियता तथा आयरन के अवशोषण के लिए आवश्यक है ।
- घाव भरने वाले कारकों की सक्रियता में सहायक।
- टायरोसिन अमीनो अम्ल की उपापचय में आवश्यक भूमिका।
- तंत्रिका तंत्र के संदेश वाहक रसायनों (डोपामाइन व एपिनेफ्रीन) के संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका
- प्रति ऑक्सीकारक (एंटी ऑक्सीडेंट) का महत्वपूर्ण कार्य जो कि, धुम्रपान तथा मांसाहार से उत्पन्न होने वाले हानिकारक क्रियाशील ऑक्सीजन तत्वों को निष्क्रिय करके कोशिकाओं की रक्षा करता है ।
- जुकाम तथा संक्रमण को कम करने में भी लाभकारी है।
- कोशिका विभाजन के नियामक तंत्र की सक्रियता में भी एस्कॉर्बेट की महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसमें विकार से कैंसर का खतरा बढ़ता है। अतः यह कैंसर जैसी खतरनाक बीमारियों के खतरे को भी कम करता है।

Ldohl& विटामिन 'सी' की कमी की स्थिति में कोलेजन प्रोटीन के संश्लेषण तथा एंजाइम निर्भर क्रियाओं में बाधा से स्कर्वी नामक विकार होता है। त्वचा पर गहरे नीले धब्बों का बनना, मसूड़ों में सूजन तथा रक्तस्राव, घाव भरने में देरी इत्यादि, इसके प्रमुख लक्षण हैं। विटामिन 'सी' रहित खानपान से लगभग 25 से 28 दिन में इसके लक्षण शुरू हो जाते हैं। पुनः भोजन में पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'सी'

---

[1]फल एवं उद्यानिकी प्रौद्योगिकी संभाग एवं [2]सब्जी विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

खाने से यह ठीक हो जाता है ।

यद्धपि सामान्य तापमान पर स्थाई होने की वजह से, कटे हुए फल व सब्जियों में से इसका खास नुकसान नहीं होता है, परंतु पानी में अत्यधिक घुलनशीलता तथा उच्च तापमान व प्रकाशीय ऑक्सीकरण के प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता के कारण प्रसंस्कृत उत्पादों में इसकी अधिकांश मात्रा (60 प्रतिशत तक) नष्ट हो सकती है। भोजन में उपस्थित अन्य यौगिकों, जैसे की फ्लवोनोइड्स इत्यादि से रासायनिक क्रिया भी एस्कॉर्बिक एसिड की उपलब्धता को कम कर सकती है। खाद्य पदार्थों (फल व सब्जियों) में इसकी कुल उपलब्ध मात्रा के साथ साथ सेवन के तरीके पर ध्यान देना भी आवश्यक है। फलों एवं सब्जियों को काटकर ज्यादा समय तक खुले में नहीं रखना चाहिए, तथा थोड़े पानी में पकाने चाहिए। यदि इनको सलाद के रूप में सेवन किया जाए तो, इस विटामिन की प्रचुर मात्रा शरीर को मिलती है ।

पादपों में इसका मुख्य कार्य, एस्कॉर्बेट पर–ऑक्सीडेस एंजाइम के माध्यम से विषाक्त पर–ऑक्साइड को निष्प्रभावी करने में होता है, जो कि उच्च सौर विकिरण की स्थिति में प्रकाश संश्लेषण (फोटो ऑक्सीडेशन) के दौरान उत्पन्न होते है, अतः शुष्क मरुस्थल की विपरीत परिस्थितियों (अत्यधिक तापमान एवं सौर विकिरण में) पाई जाने वाली वनस्पति तथा फसलों में सामान्य से अधिक मात्रा में संश्लेषित व संचित किए जाते हैं, क्योंकि यह अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होते हैं, अतः खाद्य पदार्थो में इनकी मात्रा में आंशिक वृद्धि भी कारगर साबित हो सकती है। फलों व सब्जियों को शुष्क वातावरण में उगाने पर विटामिन 'सी' की मात्रा में सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। साथ ही, फल और सब्जियों की उच्च विटामिन 'सी' युक्त किस्में तैयार करने की दिशा में भी प्रयास किए जा रहे है। जिन फल एवं सब्जियां इसकी मात्रा, 12 मिग्रा / 100 ग्राम अथवा इससे अधिक पाई जाती है, उन्हें उच्च विटामिन 'सी' युक्त खाद्य पदार्थो की श्रेणी में रखा गया है।

'k"d {k=k dk Qyk e foVkfeu ^lh^

मरुस्थलीय फल जैसे की आंवला, केर, सांगरी, बेर, पीलू (जाल) इत्यादि इसके प्रचूर स्रोत है। फलों में विटामिन 'सी' की तुलनात्मक अधिक मात्रा का होना संभवतया उच्चा शर्करा का परिणाम है, क्योंकि फलों के पकने के समय पर इनमें उपस्थित 6 कार्बन वाली शर्करा (ग्लूकोज अथवा फ्रक्टोज) की कुछ मात्रा एस्कॉर्बिक एसिड में रूपांतरित हो जाती है। आंवले में सर्वाधिक मात्रा में विटामिन 'सी' (600–1500 मिग्रा) पाया जाता है, जो कि चार संतरों से भी अधिक है। साथ ही अपवाद के तौर पर आंवला के प्रसंस्कृत उत्पादों यथा– मुरब्बे (100–151 मिग्रा / 100 ग्राम) व कैंडी (43–78 मिग्रा / 100 ग्राम) में इसकी अधिक मात्रा पाए जाने में टैनिन की महत्वपूर्ण भूमिका है, जो कि इसके ऑक्सीकरणीय विघटन को रोकते हैं। एक मध्यम आकार के अमरूद में भी इसकी मात्रा (200–300 मिग्रा /100 ग्राम) संतरे (60–130 मिग्रा /100 ग्राम) से अधिक होती है। शुष्क क्षेत्रों में पाए जाने वाले प्रमुख फलों में विटामिन 'सी' की मात्रा तालिका में दी गयी है।

rkfydk - 'k"d ckxokuh dk ieq[k Qyk e foVkfeu ^lh^ dh ek=k

Qy dk uke	foVkfeu ^lh^ dh ek=k ¼fexzk@100xzke½	Qy dk uke	foVkfeu ^lh^ dh ek=k ¼fexzk@100xzke½
आंवला	600.1500	केर	26.133
बेर	66.103	सांगरी	156.523
पीलू (जाल)	52.83	जंगल जलेबी (मनीला टेंरिंड)	138
इमली	44.48	जामुन	30.3–40.7
हिंगोटा	35.46	अनार	22
बेल	8.23	खजूर	3.17–5.1
करोंदा	9.11	कैथ (वुड एप्पल)	3.11
फालसा	22.0	शहतूत	12
खिरनी	15–19.0	सीताफल	12.20–35.9
महुवा	51.72	चिरौंजी	5–9.0
नागफणी (केक्टस पीअर)	20.40		

'k"d {k= dh lfct ;k e foVkfeu ^lh^

यद्धपि फलों की अपेक्षाकृत सब्जियों में औसतन इसकी मात्रा कम होने के कारण इन्हें एस्कॉर्बेट के मध्यम स्रोतों के रूप में माना जाता है। परंतु फलों की तुलना में अत्यधिक खपत होने की वजह से, सब्जियां इस विटामिन की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन सुगमता पूर्वक उब्लब्ध होने वाली सब्जियों में इसकी आंशिक वृद्धि भी उनके पोषण मूल्य के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि विटामिन 'सी' अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होता है। साथ ही मरुस्थल का शुष्क वातावरण भी विटामिन 'सी' के संश्लेषण को बढ़ाता है। टमाटर और कुछ अन्य सब्जियों में अनुवांशिक तरीकों से उच्च विटामिन युक्त जैव संवर्धित किस्मों के विकास की दिशा में प्रयास किये जा रहे है। शुष्क प्रदेश में कुछ सामान्य तौर पर खायी जाने वाली देशी सब्जियों में विटामिन 'सी' की मात्रा तालिका में प्रदर्शित की गयी है।

rkfydk - 'k"d ckxokuh dh izeq[k n'kh lfct ;k e foVkfeu ^lh^ dh ek=k

lCth dk uke	foVkfeu ^lh^ dh ek=k ¼fexk@100xke½	lCth dk uke	foVkfeu ^lh^ dh ek=k ¼fexk@100xke½
काचरी	29.81	तोरई	5
ग्वारफली	49	परवल (कुंदरू)	29
सहजन (मोरिंगा)	फली.120, पत्तियां 220, पत्ती चूर्ण.17.3	फूटककड़ी	18.6
सांगरी (खेजड़ी फली)	156–523	टमाटर	23
करेला	88	मतीरा	6
खेलरा (सूखा टिण्डा)	10.30	टिण्डा	18
ग्वारपाठा (एलोविरा)	53		

वर्तमान समय में विटामिन सप्लीमेंट का प्रचलन बढ़ा है, जो कि हमारी सेहत के लिए नुकसान दायक भी हो सकते हैं। इसके लिए अपने भोजन में विटामिन 'सी' से प्रचूर देशी फलों एवं सब्जियों को शामिल करना अत्यंत सुगम तथा प्रभावी विकल्प है। इनका भोजन में समावेश तथा इनमें विटामिन 'सी' की मात्रा वृद्धि से मानव पोषण में एक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा तथा मानव मात्र में कुपोषण को हटाने के क्षेत्र में एक आयाम साबित हो सकेगा।

भारतवर्ष की राजभाषा चाहे जो हो और जैसी भी हो, पर इतना निश्चित है कि भारतवर्ष की केन्द्रीय भाषा हिन्दी है। लगभग आधा भारतवर्ष उसे अपनी साहित्यिक भाषा मानता है, साहित्यिक भाषा अर्थात् उसके हृदय और मस्तिष्क की भूख मिटाने वाली, करोड़ों की आशा-अकांक्षा, अनुराग-विराग, रुदन-हास्य की भाषा। उसमें साहित्य लिखने का अर्थ है करोड़ों के मानसिक स्तर को ऊंचा करना, करोड़ों मनुष्यों को, मनुष्य के सुख-दुख के प्रति संवेदनशील बनाना, करोड़ों को अज्ञान, मोह और कुसंस्कार से मुक्त करना।

-हजारी प्रसाद द्विवेदी

मेथी के पोषक मूल्य एवं औषधीय गुण

çKk flag[1]] vfdrk 'kek[2]] o`dV'oj tYykjQ[3] ,o ,-d- oek[4]

मेथी एक औषधीय वार्षिक पौधा है जिसकी पत्तियां हरी और फूल छोटे और सफेद रंग के होते हैं। इस पौधे का वैज्ञानिक नाम ट्राईगोनेल्ला फोएनम–ग्रैकुम है। इसकी खेती भूमध्य क्षेत्र, दक्षिण यूरोप और पश्चिम एशिया में बहुतायत में होती है। भारत एक प्रमुख उत्पादक देश है, भारत में मेथी का उत्पादन कई राज्यों से होता है। भारत के उत्पादन में राजस्थान का हिस्सा 80 प्रतिशत से अधिक है। मध्य प्रदेश में राजगढ़, इन्दौर, जबलपुर, मंदसौर, छतरपुर आदि मुख्य मैथी उत्पादक जिले हैं। भारत में मेथी को अलग–अलग नामों से जाना जाता है। इसे हिंदी, गुजराती, मराठी, बंगाली और पंजाबी में मेथी कहते हैं, वहीं संस्कृत में इसका नाम मेथिका है। कन्नड़ में मेन्तिया, तेलुगु में मेंतुलु, तमिल में वेंडयम, मलयालम में वेन्तियम और अंग्रेजी में फेनुग्रीक के नाम से जाना जाता है।

भारत की अधिकतर रसोइयों में मेथी का इस्तेमाल किया जाता है। मेथी का उपयोग एक जड़ी बूटी (सूखे या ताजे पत्ते), मसाले और अचार (बीज), और सब्जी (ताजी पत्तियां, अंकुरित अनाज और माइक्रोग्रेन) के रूप में किया जाता है। मेथी की विशिष्ट मेपल सिरप की गंध के लिए सोतोलोन रसायन जिम्मेदार है। मेथी के बीजों का सबसे ज्यादा उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है और पत्तों का उपयोग सब्जी के रूप में, आलू की सब्जी में, पराठे बनाने में आदि बनाने में किया जाता है। खाद्य पदार्थों में मनमोहक सुगंध प्रदान करने वाले मसालों में मैथी का विशेष महत्व है। भारत में सदियों से मेथी पत्ते और दानों को आयुर्वेदिक औषधि के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। इसका सेवन पेट के कई विकारों में फायदेमंद रहता है। इसके बीजों को रातभर पानी में भिगोकर प्रातःकाल सेवन करने से शुगर की बीमारी में काफी आराम मिलता है। मेथी में प्रोटीन, सूक्ष्म तत्व समेत अन्य विटामिन्स भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। मैथी में कड़वापन उसमें उपस्थित ओलियारेटिन के कारण होता है। मैथी की जड़ों में राइजोबियम नामक जीवाणु होता है। जो कि वातावरणीय नत्रजन को भूमि में स्थिर करके पौधे को उपलब्ध कराता है। अतः इसकी खेती भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में भी सहायक होती है।

ikf"Vd rRo

मेथी के दानों में प्रचुर मात्रा में विटामिन्स एवं मिनरल्स पाए जाते हैं। इसमें विटामिन्स मुख्यतः फोलिक एसिड, थायमिन, नियासिन, विटामिन सी, विटामिन ए और राइबोफ्लेविन तथा मिनरल्स में जिक, सेलेनियम और मैग्नीशियम आदि पाए जाते हैं।

çfr 100 xke eFkh e ikf"kd rRok dh ek=k

e[; rRo	ik"kd eY;
ऊर्जा	323 कि. कैलोरी
कार्बोहाइड्रेट	58.35 ग्राम
प्रोटीन 23 ग्राम	
टोटल लिपिड (फैट)	6.41 ग्राम
फाइबर24.6 ग्राम	
विटामिन्स	
फोलेट	57 माइक्रो ग्राम
नियासिन	1.640 मिग्रा.
पैरिडॉक्सिन	0.600 मिग्रा.
राइबोफ्लेविन	0.366 मिग्रा.
थायमिन	0.322 मिग्रा.
विटामिन ए	60 आई.यू.
विटामिन सी	3 मिग्रा.
इलेक्ट्रोलैटेस	
सोडियम	67 मिग्रा.

[1]उद्यानिकी विभाग, रा.वि.सि.कृ.वि.वि., ग्वालियर
[2]उद्यानिकी विभाग, ज.ने.कृ.वि.वि., जबलपुर, [3]आई.सी.ए.आर., अटारी जोन–9, जबलपुर
[4]भा.कृ.अ.प.–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

पोटैशियम	770 मिग्रा.
feujYl	
कैल्शियम	176 मिग्रा.
कॉपर	1.110 मिग्रा.
आयरन	33.53 मिग्रा.
मैग्नीशियम	191 मिग्रा.
मैंगनीज	1.228 मिग्रा.
फास्फोरस	296 मिग्रा.
सेलेनियम	6.3 माइक्रो ग्राम
जिंक	2.50 मिग्रा.

स्त्रोतः (यू.एस.डी.ए. नेशनल नुट्रीएंट डाटा बेस)

vk"k/kh; x|.k

cgrj ikpu r= dk fy,

मेथी कई प्रकार के पाचन से सम्बंधित समस्याओं जैसे– पेट में दर्द, कब्ज, पेट में सूजन, एसिडिटी को कम करता है, क्योंकि मेथी में पानी में घुलनशील फाइबर की मात्रा अधिक होती है, जो कब्ज से राहत दिलाने में मदद करता है। अल्सरेटिव कोलाइटिस के उपचार के लिए मेथी बेहतरीन प्रकृतिक उपाय है जो पाचन तंत्र को स्वस्थ रखता है।

e/keg l: jkgr

एक वैज्ञानिक शोध में पाया गया कि मेथी के बीज का सेवन करने से रक्त में शुगर की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकता है। मेथी के पत्तों में घुलनशील फाइबर होते हैं जो पाचन शक्ति को धीरे कर देते हैं। जिससे ब्लड शुगर लेवल सामान्य बना रहता है। यह टाइप–2 मधुमेह के रोगियों में इंसुलिन प्रतिरोध को भी कम करने का काम कर सकता है। मेथी में मौजूद हाइपोग्लिसेमिक का प्रभाव मधुमेह में लाभदायक हो सकता है। इसे रक्त में शुगर की मात्रा को कम करने के लिए जाना जाता है।

dkyLV'y dk fy,

एक वैज्ञानिक शोध से पता चला है कि, मेथी के दानों में नारिंगेनिन नामक फ्लेवोनोइड होता है जो रक्त में लिपिड के स्तर को कम करने का काम कर सकता है। इसके अलावा इसमें एंटीऑक्सीडेंट गुण होते हैं, जिससे उच्च कोलेस्ट्रॉल कम किया जा सकता है। मेथी फाइबर का भी एक समृद्ध स्रोत है, जो शरीर के धमनियों और रक्त वाहिकाओं में अतिरिक्त कोलेस्ट्रॉल को तोड़ देता है। मेथी कम घनत्व वाले लिपोप्रोटीन (एलडीएल कोलेस्ट्रॉल) के स्तर को कम करने में मदद करता है, जो एथरोस्क्लेरोसिस, दिल के दौरे और स्ट्रोक जैसी विभिन्न स्थितियों को बढाते है।

ân; ¼dkfM;koLdyj½ jkx dk fy,

मेथी के बीजों में 25 प्रति   ात गलाक्टोमनान कार्बोहाईड्रेट होता है जो विशेषतः प्राकृतिक घुलनशील फाइबर है जिसका उपयोग कार्डियोवैस्कुलर बीमारियों को कम करने में होता है। मेथी कोलेस्ट्रॉल एवं ग्लूकोज स्तर को सामान्य बनाए रखने में मदद करता है। हृदय रोग ज्यादातर ब्लड कोलेस्ट्रॉल और ग्लूकोज लेवल के बढ़ने से होती है। हृदयघात के दौरान ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस की स्थिति जानलेवा साबित हो सकती है। मेथी ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस को पैदा होने से रोकने का काम कर सकती है। साथ ही मेथी के बीज शरीर में रक्त प्रवाह को संतुलित रखने में सहायक होते हैं, जिससे धमनियों में किसी भी प्रकार की रुकावट पैदा नहीं हो सकती।

fL=;k dk ekfld /ke e Qk;nen

मेथी के दाने मासिक धर्म से जुड़ी अन्य समस्याओं से राहत दिलाने में भी मदद कर सकते हैं। मेथी के दानों में एंटीइंफ्लेमेटरी, एनाल्जेसिक, एंटीस्पास्मोडिक व ड्यूरेटिक गुणकारी तत्व पाये जाते हैं जो मासिक धर्म में होने वाली हर तरह की पीड़ा से राहत दिलाने का काम कर सकते हैं, जिसे मेडिकल भाषा में डिसमेनोरिया कहा जाता है।

dkl j

एक मेडिकल रिसर्च के अनुसार, मेथी में एंटी कैंसर प्रभाव पाए जाते हैं, जो कैंसर की समस्या को दूर रखने में मदद करते हैं।

fyoj dk LoLFk j[krk g

पानी में भिगोये हुए मेथी के बीजों को खाने से लिवर स्वस्थ रहता है क्योंकि इससे खाना अच्छे से हजम होता है और पेट म्यूकोसा या श्लेष्मा को स्वस्थ रखता है।

Lru n/k c<ku e

प्रसव के बाद नवजात के लिए मां के दूध से बेहतर कुछ नहीं होता है। जिन महिलाओं को प्रसव उपरांत दूध में कमी आती है तो मेथी या मेथी के बीज से बनी हर्बल चाय का सेवन करना चाहियेे ऐसे लोगों के लिए मेथी गैलेक्टैगॉग के रूप में काम आता है। एनसीबीआई की वेबसाइट पर प्रकाशित एक शोध में कहा गया है कि मेथी का सेवन स्तन दूध की गुणवत्ता व मात्रा को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

otu ?kVku dk fy,

वजन कम करने का मतलब होता है कैलोरी का सेवन कम करना। अगर कोई वजन कम करना चाहता है, तो मेथी बहुत ही कारगर सिद्ध हो सकता है क्योंकि यह शरीर में वसा को जमा होने से रोकने का काम कर सकती है। मेथी में फाइबर की अच्छी मात्रा पाई जाती है, जो आहार को पचाने के साथ–साथ भूख को भी शांत रखने का

कार्य करता है। इससे वजन को बढ़ने से रोका जा सकता है। इसके अलावा, मेथी में विभिन्न प्रकार के पॉलीफेनॉल्स पाए जाते हैं, जो वजन को कम करने में मदद करते हैं।

jäpki dh l/kkj e

वैज्ञानिक शोध के अनुसार, मेथी में एंटीहाइपरटेंसिव प्रभाव पाया जाता है, जो रक्तचाप की समस्या को कम करने का काम करता है। उच्च रक्तचाप कई प्रकार की बीमारियों का कारण बन सकता है, जिनमें से हृदयरोग की समस्या मुख्य है। मेथी में मौजूद औषधीय गुण इस समस्या को कम करने में मदद करते हैं।

fdMuh LoLFk e ennxkj

कई वैज्ञानिक शोधों में इस बात का दवा किया गया है कि किडनी के लिए मेथी फायदेमंद है। एनसीबीआई के एक शोध से पता चला है कि मेथी के दानों में पॉलीफेनोलिक फ्लेवोनोइड पाया जाता है, जो किडनी को बेहतर तरीके से काम करने में मदद करता है। साथ ही यह किडनी के आसपास एक रक्षा कवच का निर्माण करता है, जिससे इसके सेल नष्ट होने से बच जा सकते हैं।

l tu dk de dju d fy,

मेथी के बीज सूजन और इससे होने वाली समस्या को दूर करने में फायदेमंद होते हैं क्योंकि, मेथी के बीज में लिनोलेनिक और लिनोलिक एसिड पाया जाता है। इस एसिड के पेट्रोलियम ईथर के अर्क में एंटीइंफ्लेमेटरी गतिविधि पाई जाती है, जो सूजन से छुटकारा दिलाने का काम करती हैं। मेथी शरीर के आंतरिक घाव एवं सुजन जैसे – मुहं के छाले, फोड़े, ब्रोंकाइटिस, त्वचा संबंधी संक्रमण, लम्बी खांसी, या गुर्दे की बिमारियां आदि को कम करने का काम करता हैं।

VLVkLVjku dk c<ku d fy,

एक शोध के मुताबिक, मेथी में हार्मोनल के रेगुलेशन के गुण पाए जाते हैं जो टेस्टोस्टेरोन की वृद्धि में सहायक होते हैं। यह शरीर में एस्ट्रोजन के उत्पादन को रोककर टेस्टोस्टेरोन के स्तर को बढ़ाती है। पुरुष के शरीर में टेस्टोस्टेरोन का स्तर बढ़ने से मांसपेशियों का विकास होता है और शारीरिक क्षमता में वृद्धि होती है।

Ropk d fy,

एनसीबीआई में प्रकाशित एक वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि मेथी में एंटीऑक्सीडेंट, एंटीरिंकिल, मॉइस्चराइजिंग और स्किन स्मूदिंग गुण पाए जाते हैं जो त्वचा के लिए लाभकारी होते हैं।

ckyk d fy,

एक मेडिकल रिसर्च के मुताबिक, मेथी के बीजों में प्रोटीन के भरपूर मात्रा पाई जाती है, जो बालों को झड़ने से रोकता है। गंजेपन और बालों को पतला होने से रोकता है। इसके अलावा, मेथी में लेसिथीन पाया जाता हैं, जो बालों को प्राकृतिक रूप से मजबूत बनाने के साथ–साथ मॉइस्चराइज करने का काम करता है। यह रूसी को भी दूर रख सकता है।

eFkh l udlku

मेथी के दानों का सेवन गलत तरीके से और गलत मात्रा में करने से इसके नुकसान भी हो सकता है। वैसे मेथी के दानों का नुकसान उससे होने वाले फायदो से कम हैं जो कि निम्न हैं–

nLr gkuk

मेथी के दाने पाचन तंत्र के लिए अच्छे होते हैं, लेकिन कई बार यह दस्त का कारण भी बन सकते हैं। अधिक मात्रा में सेवन से पेट खराब हो सकता है और दस्त लग जाता है। अगर स्तनपान कराने वाली महिलाओं को इसे खाने से पेट खराब होता है, तो उससे शिशु को भी दस्त लग सकता हैं।

xHkk'k; ldpu

मेथी के दानों की तासीर गर्म होती है। अगर गर्भवती महिला इसका अधिक सेवन करती है, तो समय से पहले गर्भाशय संकुचन जैसी समस्या का सामना करना पड़ सकता है क्योंकि मेथी के दानों में ऑक्सीटोसिन होता है, जो गर्भाशय संकुचन का कारण बनता है।

CyM Xydkt Lrj dk de gkuk

मेथी के दानों का सेवन ब्लड ग्लूकोज लेवल सामान्य बनाये रखता है परन्तु इसका सेवन अधिक मात्रा में कर लिया जाए तो यह ब्लड ग्लूकोज के लेवल को बहुत कम कर देता जो शरीर के लिए खतरनाक साबित हो सकता है। कम रक्त शुगर के लोगों को मेथी के सेवन से बचना चाहिए, क्योंकि इसमें हाइपोग्लिसेमिक प्रभाव होता है। जिनके लोगों के शरीर का रक्तचाप कम है, उन्हें इसके सेवन से बचना चाहिए क्योंकि इसमें एंटीहाइपरटेंसिव प्रभाव पाया जाता है, जो रक्तचाप को कम कर करता है।

,y th ;k vLFkek dk dkj.k

कुछ लोगों को मेथी दाने के सेवन से एलर्जी हो सकती है। यह एलर्जी चेहरे पर सूजन के तौर पर नजर आ सकती है और वहीं, कुछ लोगों के शरीर पर रैशेज हो सकते हैं। मेथी के दानों का अत्यधिक सेवन सांस लेने में तकलीफ का कारण बन सकता है जो आगे चलकर अस्थमा का रुप ले सकती है।

शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में बेल की आधुनिक खेती

jkt'k tkVo] ih- d- ,l- xtj] jkt'k y[kh ,o iKk flg

बेल भारत में उगाये जाने वाले प्रमुख प्राचीन फलों में से एक जो कि अपने औषधीय गुणों के लिए काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके फलों में विभिन्न प्रकार के एल्कलॉइड सेपोनिन्स फ्लेवेनॉइडस फिनोल्स व कई प्रकार के फाइटोकेमिकल्स पाये जाते हैं। तथा इसके फलों के गूदे में अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा, प्रोटीन, फाईबर, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज एवं ऐन्टीऑक्सीडेन्ट पाया जाता है। इसके फलों से परिलक्षित पदार्थ जैसे शरबत एवं मुरब्बा आदि भी बनाये जाते हैं एवं इसके फल पेट से संबंधित बीमारी को दूर करने में भी सहायक होते हैं। बेल पतझड़ वाला पौधा है, जिसकी ऊँचाई 6–8 मीटर तक होती है।

t yok;

बेल सामान्यत: उपोष्णकटीयबंधीय जलवायु का पौधा है। फिर भी इसको समस्त प्रकार की जवायु में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। बेल की बागवानी 1200 मीटर ऊँचाई तथ 10 से 44 डिग्री सेल्सियस तापमान तक आसानी से भी की जा सकती है। शुष्क जलवायु में फलों की खेती के लिए बेल का पौधा उपयुक्त होता है।

feVVh

बेल का वृक्ष बहुत ही सहनशील किस्म का होता है। सामान्यत: इसकी खेती के लिए जल निकास युक्त रेतीली दोमट, मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। परन्तु इसकी कम उपजाऊ एवं समस्या ग्रस्त क्षेत्रों जैसे ऊसर, बंजर, कंकरीली खादर एवं बीहड़ आदि क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है। मृदा जिसका पी.एच. मान 5 से 8.5 तक हो उसमें बेल की खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है।

fdLe

ujUn cy 1 o 2 :– यह बेल सबसे ज्यादी उगायी जाने वाली एवं उपयोगी किस्में हैं। इसके फलों की उपज अच्छी होती है।

ujUn cy 5 %& इस किस्म के पौधों की ऊँचाई मध्यम होती है तथा इसमें फलन पौधा रोपण के 4–5 वर्ष पश्चात् आरंभ हो जाता है। इसके फलों का भार औसतन (1.5 से 2.0 कि.ग्रा.) तक होता है। लगभग सात वर्ष पश्चात् प्रति पौधा फलों की संख्या 35–40 व 45–50 किलोग्राम तक हो जाती है। इसके फलों में ठोस घुलनशील पदार्थ 41 प्रतिशत तक होता है एवं किस्म में फलों के फटने से समस्या बहुत कम होती है।

ujUn cy 7%& इस किस्म के फलों का आकार बहुत बढ़ा समतल एवं गोलाकार होता है।

ujUn cy 9 %& इस किस्म पौधों की ऊँचाई मध्यम होती है तथा इसमें फलन 4–5 वर्ष बाद प्रारंभ होता है। इसके फल नाशपाती के समान होते हैं, जिनका औसतन भार 1.5 से 2 कि.ग्रा तक होता है। इसके पौधे सात वर्ष के होनेपर फलों की औसतन संख्या 25–30 एवं उत्पादन 45–50 कि.ग्रा. प्रति पौधा तथा ठोस घुलनशील पदार्थ 38 प्रतिशत तक है। इसके फलों में भी फटने की समस्या कम होती है।

lhvkbi, l ,p cy&1 %& यह बेल की एक मध्यम समय में फलन देने वाली किस्म है जो कि अप्रैल–मई के महीने में तैयार हो जाती है। इसका पौधा आकार में बढ़ा ओजस्वी सघन एवं सीधा बढने वाला एवं अधिक फलन वाला होता है। फलों का वजन 1.0 कि.ग्रा. तक होता है। यह किस्म डिब्बाबंदी के लिए उपयुक्त है।

lhvkbi, l ,p cy&1 %& इस किस्म का पौधा छोटा तथा मध्यम आकार का एवं फैलने वाला होता है। इसके पौधों में नियमित फलन होता है। फल गोलाकार एवं अण्डाकार होते हैं। यह किस्म प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

ilk molh %& यह मध्यम समय में फलन देने वाली किस्म है। इसके पौधे बड़े फैलने वाले तथा अधिक फल देने वाले होते हैं। फलों का वजन 1.5 – 2..5 कि.ग्रा. तक होता है।

उद्यान विभाग, कृषि महाविद्यालय
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर–474002

ujUn cy 16½& यह एक उत्कृष्ट किस्म है। इसके फल अण्डाकार तथा फलों का गूदा पीछे रंग का होता है एवं रेशे की मात्रा कम होती है।

ujUn cy 17½& इस किस्म की पैदावार भी बेहतरीन होती है, जिसके फल औसतन आकार होता है रेशे की मात्रा भी कम होती है।

iUr vi.kk ½& यह उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश के लिये उपयुक्त किस्म है। इसके फल वृक्ष बोने आकार के साथ फैलने वाले एवं कांटों से रहित होते हैं। जिनमें फलन अधिक होता है। फल गोलाकार होते हैं। जिनका वजन लगभग 1 किलोग्राम प्रतिफल होता है।

iUr f'kokuh ½& यह एक मध्यम समय में फल देने वाली किस्म हैं। इसके फल वृक्ष लम्बे सघन एवं सीधे बढ़ने वाले होते हैं तथा फलन अधिक होता है। इसके फलों का वजन 2 से 2.5 किग्रा. के लगभग होता है।

iUr l|tkrk ½& इस किस्म के फल वृक्ष मध्यम ऊँचाई वाले सघन एवं फैलने वाले होते हैं। फलन अधिक होता है। फलों का आकार 1–1.5 कि.ग्रा. के लगभग होता है।

xkek ;'kh ½& इस किस्म क फल बड़े आकार के साथ–साथ अच्छी गुणवत्ता वाले होते हैं। फल अण्डाकार हरे पीले रंग के होते हैं तथा गूदे का रंग भूसे के समान होता है। यह किस्म राजस्थान में उगाने के लिये उपयुक्त मानी जाती है।

Fkkj fn0; ½& यह किस्म चयन विधि द्वारा विकसित एक अगेती किस्म है। शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में इस किस्म में अच्छी वृद्धि, विकास एवं उत्तम फलन होता है। इसके साथ–ही साथ यह किस्म विभिन्न गुणों से भी भरपूर होती है। इसके फल वृक्षों कांटे बहुत ही कम होते हैं। इसके फलों का औसत वजन 1.51 से 2.00 किग्रा तक होता है। फलों का आकार गोल एवं आकर्षक तथा रंग पीला होता है। इसके फले के गूदे का टीएसएस 38° ब्रिक्स से अधिक होता है। फलों में बीज की मात्रा बहुत कम तथा फलों में गूदा लगभग 72–74 प्रतिशत तक एवं छिल्का पतला होता है। यह किस्म शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों की सभी किस्मों में सबसे पहले पककर (लगभग 260 दिन में) तैयार हो जाती है।

Fkkj uhydB ½& यह किस्म भी विभिन्न प्रजातियों से चयन विधि द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के वृक्ष मध्यम आकार के होते हैं जिन पर कांटे बहुत कम होते हैं। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में भी यह किस्म अच्छी वृद्धि, विकास एवं उपज प्रदान करती है। फलों का आकार गोल, आकर्षक एवं पकने पर रंग पीला हो जाता है। फलों में टीएसएस 41° ब्रिक्स से अधिक होता है। फलों में बीज बहुत कम होता है एवं गूदा लगभग 75 प्रतिशत तक होता है। फल सुवासयुक्त एवं बहुत मिठासयुक्त होते है। एक 10 वर्ष आयु वाले वृक्ष से लगभग 101.60 किग्रा तक फल प्राप्त होते हैं।

io/ku

बेल के पौधे का प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक दोनों विधियों द्वारा किया जा सकता है। लेकिन साधारणतः इसका प्रवर्धन बीज द्वारा ही किया जाता है। बीज के द्वारा तैयार किये गये पौधों में भिन्नता आ जाती है। इसके लिए बीज द्वारा तैयार किये गये मूलवृंत के पर कलिकायन व ग्राफ्टिंग के द्वारा रोपण के लिए पौधे तैयार किए जाते हैं। बेल के पौधे पर लगने वाले फल मई से जून के महीने में पकने लगते हैं। पके हुए फलों के बीजों को निकालकर नर्सरी में जो कि 15–20 सेमी ऊँची एवं 1 मीटर चौड़ी एवं 10 मीटर लंबी (1X10) आकार वाली होती है। बीज को 1–2 सेमी की गहराई पर बो दिया जाता है। बीजों को बोने से पहले 12–24 घंटे तक के लिए पानी में भिगोया जाता है। फिर हवा में सुखाने के पश्चात् नर्सरी बोया जाता है। बेल के बीजों की बुवाई का उत्तम समय मई–जून ही माना जाता है।

जब पौधा 20 सेमी का हो जाये तो उसे दूसरी क्यारियों में 30 सेमी की दूरी पर रोपित कर देना चाहिए। व्यवसायिक स्तर पर बेल की खेती करने के लिए पौधे चश्मा विधि से ही तैयार करना चाहिए। चश्मा की विभिन्न विधियों में पैबंदी चश्मा विधि से जून–जुलाई में पौधे तैयार करने पर 80–90 प्रतिशत तक सफलता देती है तथा सांकुर डाली की वृद्धि भी अच्छी होती है। पौधे जब 1–2 वर्ष पुराने हो जाते हैं तब कलिकायन के लिए उपयुक्त होते हैं। चश्मा बांधने के लिए जिस पेड की कलम लेना चाहते हैं। स्वस्थ, तथा कॉटों से रहित अधपकी टहनी से आँख का चुनाव करना चाहिए, टहनी से 2–3 सेमी के आकार का छिलका आँख से निकालकर 1–2 वर्ष पुराने बीजू पौधे के तने पर 10–12 सेमी की ऊँचाई पर इसी प्रकार के हटाये हुए छिलके के खाली स्थान पर बैठा देना चाहिए। इसके बाद इस पर अलकायीन की 1 सेमी चौडी तथा 20 सेमी लंबी पट्टी में कसकर बांध देना चाहिए। इस क्रिया के 15 दिन पश्चात् बंधे हुए चश्मों के 8 सेमी ऊपर से बीजू पौधे के

शीर्ष भाग को काटकर अलग कर देना चाहिए। जिससे कली सूखने न पाये।

ik/kk jki.k

बेल के पौधों का रोपण वर्षा के प्रारंभ में करना चाहिए जब भूमि में पर्याप्त नमी है। भूमि में पर्याप्त नमी होने से पौधों को नर्सरी से उखाड़ने में सुविधा होती है और साथ ही साथ पौधे आसानी से रोपित भी हो जाते हैं। उद्यान में पौधों को स्थाई रूप से रोपित करने के लिए गड्डों को गर्मी के महीनों में ही खोदना चाहिए। जिससे उनमें पर्याप्त धूप जा सके।

xMM dh [knkb ,o r;kjh

पौधे रोपित करने के लिए गडडों की खुदाई गर्मी के दिनों में ही कर ली जाती है। गड्डों का आकार 90 X 90 सेमी तथा गड्डे से गड्डे अथवा पौधे से पौधे की दूरी 8 मीटर रखी जाती है। जबकि सघन बागवानी के लिए अथवा टपक सिंचाई अपनाने के लिए गड्डे से गड्डे की दूरी 5X5 मीटर रखी जाती है। भूमि में किसी भी प्रकार के कंकड़ पत्थर ढ़ेले हैं तो उनको हटा देना चाहिए। गर्मी के दिनों में खोदे गए गड्डों को 20–30 दिनों तक खुला छोड़कर वर्षा के आरंभ होते ही बाग की मिट्टी एवं 25 किलो रूडी की खाद 1 किलो नीम तेल केक और 1 किलो हड्डियों के चूरे का मिश्रण गड्डों में डालें। जबकि ऊसर भूमि में प्रति गड्डे के हिसाब से 20–25 किलोग्राम बालू तथा मृदा पी.एच. मान के हिसाब से जिप्सम पाइराइट को भी मिलाकर 5–6 इंच ऊँचाई तक गड्डों को भर देना चाहिए। इसके बाद एक दो वर्षा हो जाने पर गड्डे की मिट्टी जब सही तरीके से बैठ जाये तो इनमें पौधे को रोपित कर देना चाहिए।

[kk| ,o moj d

पौधों की अच्छी वृद्धि, विकास, फलन एवं पौधें का स्वस्थ बनाये रखने के लिए प्रत्येक पौधे में खाद्य एवं उर्वरक निम्नानुसार देना चाहिए।

o"k	u=tu ¼xke½	QkLQkj l ¼xke½	ikVk'k ¼xke½	xkcj dh [kkn ¼fd-xk- ifr ik/kk½
प्रथम वर्ष	50	25	50	20
द्वितीय वर्ष	100	50	75	40
तृतीय वर्ष	150	75	100	60
चतुर्थ वर्ष	200	100	125	80
पॉचवे वर्ष	250	125	150	100
छटे वर्ष	300	150	175	100
सातवें वर्ष	400	175	200	100
आठवें वर्ष	500	200	250	100
नवें वर्ष	00	250	300	100
दसवें वर्ष	700	300	500	100

चूँकि बेल के पोधे में जिंक की कमी के लक्षण पत्तियों पर दिखाई देते हैं। अतः जिंक की पूर्ति के लिए 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट प्रति पौधे के हिसाब से क्रमशः जुलाई, अक्टूबर और दिसंबर माह में पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। बेल के बागों में फलों के कटने की समस्या भी पायी जाती है। जिन बागों में यह समस्या पायी जाती है उनमें खाद्य एवं उर्वरकों के साथ बोरेक्स (सुहाना को प्रयोग 100 ग्राम/पौधे के हिसाब से बेल की जड से 0.75 से 100 मीटर दूर चारों ओर डालना चाहिए। खाद की मात्रा को दो बार, एक बार जुलाई में तथा दूसरी बार फरवरी में देना चाहिए।

fl pkb

सामान्यतः बेल के पौधे के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है क्योंकि यह बहुत ही सूखा सहनशील पौधा होता है। बिना सिंचाई के भी रह सकता है। फिर भी अच्छी बढवार के लिए शुरू के एक दो वर्ष तक सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है। इसकी सिंचाई के लिए टपक सिंचाई एवं मटका सिंचाई विधि से करने पर नये पोधे सिंचाई जल का अच्छे से उपयोग कर लेते हैं और पौधों पर समान रूप से पानी का वितरण होता है। बेल का पौधा गर्मी के महीनों में सुसुप्तावस्था में चला जाता है और वर्षांत का मौसम आने पर फलन प्रारंभ हो जाता है, जो कि सर्दियों तक चलता है और इस प्रकार यह सूखे को सहन कर लेता है। सिंचाई के पानी की उपलब्धता होने पर मई–जून में नई पत्तियां आना आरंभ होने पर 20–30 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई कर देना चाहिए।

[kjirokj fu;=.k

बेल के पौधों में ज्यादा निदाई गुड़ाई की जरूरत नहीं होती है। फिर भी शुरूआत में पौधों के एक निंदाई गुडाई करें तथा दूसरी निंदाई गुडाई 02 वर्ष की अवस्था में करना चाहिए।

l/kkb ,o dVkb NVkb

बेल के पौधों का मजबूती प्रदान करने और अच्छी आकृति प्रदान करने के लिए शुरू में 4–5 वर्षों तक सधाई की आवश्यकता होती है। पौधों की शुरूआत में ही 0.75 सेमी तक की शाखा काटकर तना रहित कर देना चाहिए। इसके बाद 4–6 मुख्य शाखाओं को चारों ओर बढने दिया जाताहै। बेल के पौधों में ज्यादा कटाई–छंटाई की आवश्यकता नहीं होती है। फिर भी अनावश्यक सूखी, कीट एवं बीमारियों से ग्रसित टहनियों को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए।

vUrorh; Qly

बेल के पौधों में 4–5 वर्षों के बाद फलन शुरू होता है जिसमें पौधों की बढवार के समय में खाली जगह में कम समय में तैयार होने वाले फसलों को उगाया जाता है। जिससे की 4–5 वर्षों तक कुछ अतिरिक्त आय मिल सके। परन्तु अन्तवर्तीय फसलें लेते समय ऐसी फसलों को न उगाये जिन्हें अधिक पानी की आवश्यकता हो और वह बेल का फसल को किसी भी तरह से प्रभावित करे।

Qyu

बीज के द्वारा तैयार किये गये पौधे 8–9 वर्ष बाद फलने लगते हैं। जबकि वानस्पतिक या चश्मा विधि से तैयार किए गए पौधे 4–5 वर्ष में ही फल देने लगते हैं। जब बेल का पौधा 10–15 वर्ष पुराना हो जाता है तो उसमें पूरी तरह फलन होने लगता है और प्रति पौधा लगभग 150–175 फल प्राप्त होते हैं। बेल के पेड का फलन अवधि अधिक होती है इसमें फल जून–जुलाई में आते हैं और अगले वर्ष अप्रैल मई में पककर तैयार हो जाते हैं ।

Qyk dh rqMkb

बेल के पौधे में जून–जुलाई में फल लगना प्रारंभ होते ही और अगले वर्ष जनवरी माह में जब पौधे पीले–हरे दिखने लगते हैं तब फलों की तुडाई करते हैं। इन तोडे हुए फलों को 08 दिनों तक के लिए रखते हैं जिससे उनका पीला हरा रंग चला जाये। फलों की तुडाई के पश्चात सावधानीपूर्वक रखना चाहिए क्योंकि फलों के गिरने पर इसमें दरार पड सकती है जिससे नुकसान की संभावना बढ़ जाती है।

mit

बेल के फल आकार में बड़े होते हैं तथा पेड पर इनकी संख्या कम होती है। पूर्णरूप से फलन आये हुए बेल से लगभग 1–1.5 क्विंटल फल प्रति पौधा उपज प्राप्त होती है।

J.khdj.k vkj ifdx

बेल के फलों की अधिक कीमत प्राप्त करने के लिए उनके, आकार एवं अन्य आधार पर उनका श्रेणीकरण किया जाताहै। फलों की पैकिंग उनके बाजार की दूरी पर निर्भर करती है। फलों की जूट के बारों में भी पैक कर सकते हैं। लेकिन वायुरोधी थैले इनके लिए उपयुक्त माने जाते हैं। पैकिंग अच्छी तरह से होने पर परिवहन के समय चढाते उतारते समय फलों की क्षति नहीं होती है और फल खराब होने से बच जाते हैं।

Hk.Mkj.k %& सामान्य परिस्थितियों में बेल के पौधों को लगभग 15 दिन तक सुरक्षित रख सकते हैं। परन्तु फलों की कृत्रिम रूप से पकाकर 100 से 150 पी.पी.एम. ईथरॉल का उपयोग करके 30° सें. तापमान पर 18–24 दिन तक सुरक्षित रख सकते हैं। अधिक समय तक भण्डारित करने के लिए फलों को सूखी जगह पर रखना चाहिए।

ifjogu

बेल के फलों का परिवहन बाजार की पूरी पर निर्भर करता है। किसान सामान्यतः बैलगाडी और ट्रेक्टर के द्वारा बाजार ले जाते हैं। जबकि अधिक दूरी पर ले जाने के ट्रेक्टर ट्रॉली और रेल आदि का उपयोग करते हैं।

dhV ,o jkx

ie[k dhV

iRrk dh [kku okyh lMh ;k bYyh %& यह बेल की सुडी नये पौधे निकलते समय अधिक हानि पहुँचाती है। इसकी रोकथाम के प्रोपेनोफॉस 35 ईसी का पर्णीय छिड़काव करें।

cy dh frryh %oDVk lja tkukVk% %& यह बेल की फसल को नुकसान पहुँचाती है। इसकी रोकथाम के लिए पौधों पर स्पिनोसेड / 60 मिली का छिडकाव 10–15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

ie[k jkx

cy dk dddj%& बेल का यह रोग जैन्थामोनास बिल्वी नामक बैक्टीरिया के द्वारा होता है। इससे बीमारी से प्रभावित पौधे के भागों पर धब्बे बन जाते हैं जो बाद में बढ़ कर भूरे रंग के हो जाते हैं।

इस बीमारी की रोकथाम के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (200 पी पी एम) का पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर छिडकाव करना चाहिए।

Mkb cd ½& यह बीमारी लेसिया डिव्लोडिया नामक फफूँदी के द्वारा होती है। इस बीमारी के कारण पौधे की टहनियाँ ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती है।

jkdFkke½& इस बीमारी की रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लाराइड (0.3 प्रति ात) का दो छिडकाव सूखी टहनियों की कटाई छंटाई के बाद 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

Qyk dk fxjuk vkj Qyk QVuk ½& बेल की यह बीमारियाँ फलों की आकार और बनावट को बिगाड़ देती है। तथा फल फटने लगते हैं। इस बीमारी की रोकथाम के लिए बोरेक्स 0.1 प्रतिशत दो बार फूल के खिलने पर फलों के गुच्छे बनते–बनते समय छिड़काव करना चाहिए।

फलाच्छादित बेल वृक्ष

ई–नाम पोर्टल : राष्ट्रीय कृषि बाजार योजना

ekxh yky tkV[1] ,o vfer Lokeh[2]

D;k gS b&uke iksVZy

14 अप्रैल 2016 में प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई–नाम) योजना की शुरुआत की गई। इस योजना का उद्देश्य किसानों को घर बैठे अपनी उपज बेचने की सुविधा उपलब्ध करवाना है। योजना के तहत देश की अलग–अलग मंडियों को ऑनलाइन जोड़ा जा रहा है। साथ ही पिछले वर्ष कोरोना काल में सरकार ने किसानों को ट्रांसपोर्टेशन के साधन उपलब्ध करवाने के लिए किसान रथ ऐप की शुरुआत की है जिससे किसानों को घर बैठे उपज बेचने में किसी तरह की समस्या का सामना न करना पड़े।

ई–नाम एक ऑनलाइन कृषि पोर्टल है। इसका मुख्य कार्य भारत भर में सभी कृषि उत्पाद विपणन समितियों को एक सिंगल नेटवर्क से जोड़ना है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर कृषि उत्पादन के लिए एक बाजार उपलब्ध कराना है। इसके माध्यम से देश के किसान अपनी फसलों को कही से भी ऑनलाइन अपनी फसल भेज सकते है। और ऑनलाइन बेचीं गयी फसलों का भुगतान अपने बैंक अकाउंट में प्राप्त कर सकते है। राष्ट्रीय कृषि बाजार(ई–नाम) विभिन्न कृषि, कृषि उपजो को बेचने के लिए ऑनलाइन ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म है। बाजार किसानों, व्यापारियों और खरीदारों को उपजो कि ऑनलाइन ट्रेडिंग की सुविधा प्रदान करता है। यह किसानों को बेहतर कीमत पाने में मदद करता है। और उनकी उपज की बेहतर मार्केटिंग के लिए सुविधा प्रदान करता है।

jk"Vªh; —f"k cktkj iksVZy ls tqMs fdlku vkSj O;kikjh

राष्ट्रीय कृषि बाजार से 21 राज्यों कि 1,000 कृषि उपज मंडी जुडी हुई हैं। इन 1000 मंडी से 1 लाख 63 हजार 391 व्यापारी तथा 90 हजार 980 कमिशन एजेंट जुड़े हुए हैं। इसके अलावा एफपीओ (किसान उत्पादक संगठन) की संख्या 1 हजार 841 है। जो ई– नाम मंडी से जुड़े हुए हैं। व्यक्तिगत किसान जो ई–मंडी में पंजीकृत है। उनकी संख्या 1 करोड़ 70 लाख 25 हजार 393 किसान है। व्यापारी, किसान एजेंट तथा किसान उत्पक संगठन को मिलाकर 1 करोड़ 72 लाख 81 हजार 605 लोग इससे जुड़े हुए हैं।

jk"Vªh; —f"k cktkj iksVZy esa la'kks/ku

b&uke esa xksnkeksa ls O;kikj dh lqfo/kk gsrq os;jgkml vk/kkfjr VsfMax e,Mîwy

वेयर हाउसिंग विकास और विनियामक प्राधिकरण (डब्लूडीआरए) से पंजीकृत वेयर हाउस में भुगतान की सुविधा शुरू की गई है। इस सुविधा से छोटे और सीमांत किसान अपने उत्पादों का व्यापार सीधे प्राधिकरण से पंजीकृत वेयरहाउस से कर सकेंगे। वेयर हाउसिंग विकास और विनियामक प्राधिकरण से पंजीकृत गोदामों में किसान अपने उत्पाद को रख सकेंगे।

ykHk

d½ जमाकर्ता लॉजिस्टिक खर्चों को बचा सकते हैं जिससे उनकी आय में वृद्धि होगी।

[k½ किसान बेहतर मूल्य पाने हेतु देशभर में उत्पाद बेच सकते हैं तथा मंडी में जाने से बच सकते हैं।

x½ यदि आवश्यक हो तो किसान अपने उत्पाद को डब्लूडीआरए से पंजीकृत गोदामों में रखकर ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

?k½ आपूर्ति और मांग के अनुसार, उत्पाद का मूल्य निर्धारित करने में आसानी होगी।

fdlku mRiknd laxBu VsfMax e,Mîwy

किसान उत्पादक संगठन ट्रेडिंग मॉड्यूल लॉन्च किया गया है ताकि एफपीओ अपने संग्रह केंद्रों से उत्पाद और गुणवत्ता मानकों की तस्वीर अपलोड कर खरीददारों को बोली लगाने में मदद कर सकें।

ykHk

d½ यह न केवल मंडियों में लोगों के आवागमन को कम करेगा बल्कि मंडियों में परेशानी मुक्त व्यापार करने में लोगों की मदद करेगा।

[k½ यह एफपीओ को लॉजिस्टिक खर्च कम करने एवं मोल–भाव करने में सहायता करेगा।

x½ एफपीओ को व्यापार करने में आसानी हेतु ऑनलाइन

[1]प्रसार शिक्षा विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, (मध्यप्रदेश)
[2]कृषि व्यवसाय प्रबंधन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, (मध्यप्रदेश)

भुगतान की सुविधा प्रदान की गई है।

y,f tfLVd e,Mîy

वर्तमान में ई–नाम पोर्टल व्यापारियों को व्यक्तिगत ट्रांसपोर्टरों की जानकारी प्रदान करता है। लेकिन व्यापारियों द्वारा लॉजिस्टिक की जरूरत के मद्देनजर एक बड़ा लॉजिस्टिक एग्रीगेटर प्लेटफार्म बनाया गया है, जो उपयोगकर्त्ताओं को विकल्प प्रदान करेगा। लॉजिस्टिक एग्रीगेटर प्लेटफॉर्म के माध्यम से उपयोगकर्त्ताओं तक कृषि उत्पाद को शीघ्रता से पहुँचाया जा सकेगा।

ykHk

d½ यह दूर के खरीदारों के लिये ऑनलाइन परिवहन सुविधा प्रदान करके ई–नाम के तहत अंतर–राज्य व्यापार को बढ़ावा देगा।

jk"Vh; —f"k cktkj ikVZy d e[; mnn' ; \

1. किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य दिलाना सरकार का प्रमुख उधेश्य है।
2. राज्यों की मुख्य–मुख्य किसान मंडियों को इस योजना मे लाना है जिससे भारी मात्रा मे किसान उत्पादों को दूसरे शहरों/उपभोग स्तर तक पहुंचाया जा सके।
3. राष्ट्रीय कृषि बाजार पोर्टल से किसानों को बीचोलियों की ठगी से बचाना है।
4. बड़े शहरों और क्षेत्रो मे बढ़ती प्याज, टमाटर जैसे कृषि उत्पादों के भावों को स्थिर रखा जा सके।
5. भारत में कृषि बाजार का महत्व को बढ़ावा मिलेगा।
6. ई–नाम मंडी योजना से भारतीय कृषि को मिलेगी एक देश, एक बाजार सुविधा।
7. किसान को केवल पंजीयन कराके ई–नाम मंडी मे देश की प्रमुख मंडियों के भाव देखकर कही भी बेच सकता है।
8. इस राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई–नाम) योजना का सीधा लाभ किसानों और ग्राहकों को मिलेगा। जैसे दिल्ली मे टमाटर 60 रुपये किलो है और मध्यप्रदेश मे 35, तो पोर्टल के माध्यम से किसान को मध्य प्रदेश में 42–45 मिल सकेंगे और दिल्ली में 50–52 में मिल जाएगा। मध्य प्रदेश से दिल्ली, उत्पाद को लाने ले जाने का काम मंडी का होगा।

jk"Vh; —f"k cktkj ikVZy d e[; ykHk

1. ई–नाम पोर्टल सभी ए.पी.एम.सी से संबंधित सूचना और सेवाओं के लिए एक ही स्थान पर सेवा प्रदान करता है। इसमें अन्य सेवाओं के बीच उपज के आगमन और कीमतों, व्यापार प्रस्तावों को खरीदने और बेचने, व्यापार प्रस्तावों पर प्रतिक्रिया के लिए प्रावधान शामिल हैं।
2. इस ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से देश के किसान ऑनलाइन आवेदन करके अपनी फसल को ऑनलाइन बेच सकते है और अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है।
3. इस योजना के जरिये देश के किसानो को अधिकतम लाभ प्रदान करना।
4. ई–नाम ऑनलाइन मार्केट प्लेटफॉर्म पारदर्शी नीलामी प्रक्रिया के माध्यम से बेहतर कीमत की खोज प्रदान करते हुए कृषि वस्तुओं में अखिल भारतीय व्यापार की सुविधा प्रदान करेगा।
5. अब वे बिचौलियों और आढ़तियों पर निर्भर नहीं हैं । सरकार ने अब तक देश की 1000 मंडियों को ई–नाम के तहत जोड़ा है।
6. व्यापार और मूल्य पर वास्तविक समय की जानकारी।
7. बेहतर मूल्य खोज के माध्यम से व्यापार में पारदर्शिता।
8. राज्य भर के बाजारों तक विस्तारित पहुंच।
9. वस्तुओं की गुणवत्ता की जानकारी।
10. पारदर्शी ई–बोली प्रक्रिया।
11. सीधे ऑनलाइन भुगतान।

fdlku bZ&uke ikVZy ij dSls n[k çfrfnu dk rktk Hkko

किसान ई–नाम मंडी पर प्रतिदिन का मंडी भाव देख सकते हैं। ई मंडी पर 21 राज्यों एक 1000 कृषि उपज मंडी का मूल्य ऑनलाइन देखे जा सकते हैं। इसके लिए किसान को ई–नाम मंडी के वेबसाइट पर जाना होगा। वेबसाइट खुलने पर ऊपर के लाइन में डेशबोर्ड लिखा होगा। उसमें जाने पर व्यापार का सीधा प्रसारण के आप्शन पर क्लिक करना होगा। इसके बाद आप को देश भर के मंडी का अपडेट मिल जाएगा। आप अपनी सुविधा के अनुसार राज्य, जिला तथा फसल का चयन करें।

jk"Vh; —f"k cktkj ikVZy dh fo'k"krk,

ई नाम पोर्टल के माध्यम से दो राज्यों के बीच काम किया जाना संभव हो गया है। इस साल सरकार द्वारा ई नाम में 200 मंडियों को जोड़ा जाएगा और अगले साल 215 और मंडियों को भी शामिल किया जाएगा। ई–नाम का कार्यान्वयन लघु कृषक कृषि व्यापारी संघ के द्वारा किया जाता है। इस पोर्टल के आरंभ होने की वजह से किसानों को अब बिचौलियों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा और किसान

मंडियों में अपनी फसलें सीधे भेज सकेंगे। इस पोर्टल की शुरूआत 14 अप्रैल 2016 को की गई थी। जिसके माध्यम से किसान अपनी फसल देश की किसी भी मंडी में भेज सकते हैं।

jk"Vªh; —f"k cktkj eMh l 175 —f"k mRiknk dk 0;kikj gkrk g &

ई– नाम मंडी से 175 कृषि उत्पादों का व्यापर किया जाता है। यह सभी कृषि उत्पाद अलग–अलग श्रेणी में आते हैं जो इस प्रकार है –

Ø- l-	ftlk dk çdkj	ftlk dh l[;k
1	अनाज /दलहन	26
2.	तिलहन	14
3.	फल	31
4.	साग /सब्जी	50
5.	मसाला	16
6.	अन्य प्रकार के जींस	38

jk"Vªh; —f"k cktkj Ldhe e vko';d nLrkot

इस योजना का लाभ देश के केवल किसान भाई ही उठा सकते है।

अ) आधार कार्ड

ब) पहचान पत्र

स) बैंक पासबुक

द) मोबाइल नंबर

क) पासपोर्ट साइज फोटो

jk"Vªh; —f"k cktkj ikVy ij v,uykbu jftLV'ku dl dj\

देश के जो इच्छुक लाभार्थी किसान इस ऑनलाइन पोर्टल पर अपना पंजीकरण करना चाहते है तो वह नीचे दिए गए तरीके को फॉलो करें।

क) सर्वप्रथम आवेदक को इ नाम को ऑफिसियल वेबसाइट (https://enam.gov.in) पर जाना होगा। ऑफिसियल वेबसाइट पर जाने के बाद आपके सामने होम पेज खुल जायेगा।

ख) इस होम पेज पर आपको पंजीकरण का ऑप्शन दिखाई देगा। आपको इस ऑप्शन पर क्लिक करना होगा। ऑप्शन पर क्लिक करने के बाद आपके सामने कंप्यूटर स्क्रीन पर अगला पेज खुल जायेगा।

ग) इस पेज पर आपका रजिस्ट्रेशन फॉर्म खुल जायेगा। आपको इस रजिस्ट्रेशन में पूछी गयी सभी जानकारी जैसे किसान पंजीकरण प्रकार, स्तर का चयन कर सकते हैं नाम, जन्मतिथि, आधार नंबर, बैंक विवरण आदि भरनी होगी और फिर किसानों को पासबुक की कॉपी कॉपी या रद्द किए गए चेक और आईडी प्रूफ की स्कैन कॉपी भी अपलोड करनी होगी।

घ) सभी जानकारी भरने के बाद आपको सबमिट के बटन पर क्लिक करना होगा।

च) किसानों को भविष्य के संदर्भ के लिए जमा किए गए आवेदन पत्र का प्रिंटआउट लेना होगा। पंजीकरण प्रक्रिया पूरी होने पर, किसान मंडियों में अपने कृषि उत्पादों को बेचने के लिए लॉगिन कर सकते हैं।

छ) लॉगिन करने के लिए आपको पोर्टल के होम पेज पर जाना होगा और इस होम पेज पर आपको लॉगिन के ऑप्शन पर क्लिक करना होगा। ऑप्शन पर क्लिक करने के बाद आपके सामने अगला पेज खुल जायेगा।

ज) इस पेज पर आपको यूजरनाम, पासवर्ड और कैप्चा कोड डालकर लॉगिन के बटन पर क्लिक करना होगा।

bZ&uke ekckby ,i MkmuykM dju dh çfØ;k

क) सर्वप्रथम आपको अपने मोबाइल में गूगल प्ले स्टोर खोलना होगा।

ख) अब आपको सर्च बॉक्स में ई नाम एंटर करना होगा।

ग) इसके पश्चात आपको सर्च के बटन पर क्लिक करना होगा।

घ) जैसे ही आप सर्च के बटन पर क्लिक करेंगे आपके सामने एक सूची खुलकर आएगी।

च) आपको सबसे ऊपर वाले रिजल्ट पर क्लिक करना होगा।

छ) अब आपको इंस्टॉल के बटन पर क्लिक करना होगा।

ज) जैसे ही आप इंस्टॉल के बटन पर क्लिक करेंगे ई नाम ऐप आपके मोबाइल फोन में डाउनलोड हो जाएगा।

bZ&uke jftLV'ku fdlku gYiykbu ¼Vky Ýh½ ucj

किसी भी प्रश्न या कठिनाई के मामले में ई–नाम रजिस्ट्रेशन किसानों की सहायता के लिए हेल्पलाइन टोल फ्री नंबर की सुविधा भी प्रदान कर रहा है–:

हेल्पलाइन (टोल फ्री) 1800 270 0224

ईमेल : nam@sfac.in, enam.helpdesk@gmail.com

आधिकारिक वेबसाइट : https://enam.gov.in/web/